ऐतिहासिक नाटक

जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य

श्रीमती रूपवती 'किरण', जबलपुर

प्रथम संस्करण : 3100 प्रतियाँ
(श्री दशलक्षण पर्व, दिनांक 10 सितम्बर से
19 सितम्बर 2021के अवसर पर प्रकाशित)

सहयोगी :

- स्व. श्रीमती रूपवती जी 'किरण' ध.प.स्व. श्री कोमलचन्द जी जैन की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री नरेन्द्र कुमार जैन, जबलपुर
- स्व. श्रीमती सरोज जैन की स्मृति में श्री स्वतन्त्र मोहन जैन 'कुमुद', करहल (उ.प्र.)
- स्व. श्रीमती लक्ष्मी जैन मातु श्री की स्मृति में श्री दीपक जैन, आगरा (उ.प्र.)
- श्रीमती कुसुम जैन ध. प. श्री भागचन्द जैन, अहमदाबाद (गुज.)

प्रकाशक:
श्री वर्द्धमान न्यास
(पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट)
अमायन, भिण्ड (म.प्र.)-477 227
मोबा.-98262 25580

कीमत : 30/-

Jain Samrat Chandragupta Maurya (Hindi)
by Smt. Roopwati "Kiran"
Price : ₹ 30.00

प्रकाशकीय

अखण्ड भारत के संस्थापक, जैनेश्वरी दीक्षा लेने वाले अन्तिम जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य बाल्यावस्था से ही उनकी प्रतिभा सूर्य की लालिमा की भाँति प्रगट होने लगी।

प्रभुत्व- बचपन से ही राज दरबार का खेल-खेलने और राजा का अभिनय करते समय आपकी विशेषता, शौर्य, न्याय देख गुरुदेव विप्र चाणक्य आपकी बालसभा में पहुँच गौरस हेतु गाय की याचना करने लगे, सामने के खेत में चरती हुई गायों में से कोई भी एक गाय लेने का आपने फरमान कर दिया। कृत्रिम घबराहट पूर्वक गाय के मालिक द्वारा रोके जाने की बात विप्र ने कही, तब चन्द्रगुप्त ने ढाँढस बँधाते हुए कहा- ' किसमें साहस है जो राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना कर सके।

निर्भीकता (वीरता)- अकेले अपरिचित हेलन को फिलिप्स के दुस्साहस से छुड़ा कर नारी जाति की रक्षा करना। अलक्षेन्द्र की सभा में चुनौती देना और स्वयं सभा से बाहर चले जाना। वनराज सिंह द्वारा सुषुप्त नरराज चन्द्रगुप्त के तन के स्वेद को जिह्वा से पोछना।

गुरुभक्ति- चाणक्य, चन्द्रगुप्त को सरोवर में कमल मयूर पत्रों के नीचे छिपा देते हैं और स्वयं रजक का कार्य करने लगते हैं। सैनिक को युवक चन्द्रगुप्त का पता पूछने पर सरोवर की ओर संकेत कर कहते हैं कि वस्त्र उतार कर पकड़ लो। सैनिक शस्त्र-वस्त्र उतार कर सरोवर में जैसे ही प्रवेश करने को होता है, चाणक्य उसी के शस्त्र से सैनिक को मारकर चन्द्रगुप्त को सुरक्षित बाहर निकाल लेते हैं और उसी के अश्व पर चढ़कर आगे चलते हुए चन्द्रगुप्त से पूछते हैं कि बेटा! जब सैनिक को हमने तुम्हारा पता बताया था, तब तुम्हारे मन में क्या प्रतिक्रिया हुई थी? गुरुदेव के प्रत्येक कथन में कोई न कोई रहस्य विद्यमान रहता है अत: आपके प्रति नि:शंक, निश्चिंत, इसमें भी कोई हित होगा, ऐसा अटूट विश्वास था।

दीक्षागुरु श्री भद्रबाहु स्वामी की समाधि के लिये चन्द्रगिरि गुफा में रुक कर श्री गुरु की समाधि कराना। इत्यादि प्रसंगों को पढ़कर अपने इतिहास एवं गौरव को पहिचानें।

लेखिका का अकथनीय श्रम हमारे लिये प्रेरणादायक है, शिक्षा लें! हम सभी सहयोगियों के हृदय से अभारी हैं।

मन्त्री, अखिल जैन

श्री वर्द्धमान न्यास, अमायन (भिण्ड, म.प्र.)

प्रस्तावना

–प्रो.वीरसागर जैन

जैन राजाओं का इतिहास अत्यन्त गौरवशाली रहा है। प्रारम्भ में राजा नाभिराय ने प्रजा की इतनी सेवा की कि उनके नाम पर इस देश का नाम 'अजनाभवर्ष' रखा गया। इसके बाद राजा ऋषभदेव हुए, जो प्रजा को उभयलोक कल्याणकारी उपदेश देने के कारण प्रजाप्रति, स्वयम्भू, आदिब्रह्मा आदि हजारों नामों से विश्वविख्यात हुए। इसके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत ने सम्पूर्ण षट्खण्ड वसुधा को सम्भाल कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया और उनके नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' रखा गया। भरत चक्रवर्ती का समग्र जीवन ही अद्भुत है, आदर्श है। जल में कमल की भाँति रहकर जीने की कला उन्होंने ही सिखाई।

इसके बाद प्रायः सभी तीर्थंकर ही इस देश के महान राजा हुए तथा उनके लम्बे शासनकाल में उनके अनेकानेक भक्त भी बड़े राजा हुए। यदि इन सबके बारे में जानना हो तो हमें जैन पुराणों का अध्ययन करना चाहिए, उनमें इनके जीवन एवं कार्यों की सुन्दर झाँकी देखने को मिलती है।

चौबीस तीर्थंकरों के बाद भी सैकड़ों वर्षों तक जैन राजाओं की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रही। इनमें श्रेणिक, बिम्बसार, कुणिक, अजातशत्रु, महाराज जीवन्धर, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक, कुनाल, सम्प्रति, खारवेल, विक्रमादित्य आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इनके अतिरिक्त भी हजारों जैन राजा विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न कालों में हुए हैं, जिनका विवरण अज्ञात है। इसीप्रकार गंग, पल्लव, चोल, चालुक्य, राष्ट्रकूट, कलचुरी, होयसल आदि ऐसे अनेक राजवंश हैं, जिनमें जैनधर्म की महती आराधना एवं प्रभावना होती रही।

जैन राजाओं की यह मुख्य विशेषता रही है कि ये स्वयं को प्रजा के स्वामी नहीं, सेवक मानते हैं और पूर्ण मनोयोग से उनकी सर्वोत्तम सेवा करने का प्रयास करते हैं। वे प्रजा पर किसी प्रकार की कोई जबरदस्ती नहीं करते हैं, उन्हें बलात् धर्म परिवर्तन आदि भी नहीं करवाते हैं अपितु सभी के धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार की रक्षा करते

हैं। जैन राजा सुरा-सुन्दरी में डूबे रहने वाले नहीं अपितु उच्च कोटि के आध्यात्मिक योगी होते हैं। जीवन के अंत में तो वे निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो ही जाते थे, राज्यावस्था में भी जल में कमल की तरह निर्लिप्त रहते थे।

श्रीमती रूपवती 'किरण' द्वारा रचित प्रस्तुत नाटक के नायक सम्राट चन्द्रगुप्त भी एक ऐसे ही दैदीप्यमान जैन सम्राट हैं। जैन ग्रन्थों में उनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। न केवल इस जन्म का अपितु उनके पूर्व जन्म की भी कहानी रामचन्द्र कृत 'पुण्यास्रव-कथाकोश' में मिलती है। इसके अतिरिक्त हरिषेण कृत कथाकोश, श्रुतावतार, भद्रबाहुचरित, तिलोयपण्णत्ति आदि में भी उनका वर्णन उपलब्ध होता है। तिलोयपण्णत्ति में उन्हें अंतिम मुकुटबद्ध सम्राट बताया गया है, जिन्होंने अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु से निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि दीक्षा अंगीकार करके उन्हीं के साथ दक्षिण भारत के कटवप्र या कुमारी पर्वत पर आत्मसाधना की थी। इसी कारण आज उस पर्वत से चाणक्य का भी मुनि दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

श्रीमती रूपवती 'किरण' द्वारा रचित प्रस्तुत नाटक के माध्यम से पाठकों को चन्द्रगुप्त के विषय में कुछ जानकारी मिलेगी और विशेष जानने की प्रेरणा भी मिलेगी। वर्तमान में जैन समाज को ही अपने जैन राजाओं का ज्ञान नहीं है, यह बड़े खेद का विषय है। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से इस दिशा में भी समाज में कुछ जाग्रति आएगी। अतः नाटक की लेखिका एवं प्रकाशक दोनों ही अभिनन्दन के पात्र हैं।

अन्त में, मैं निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से सभी को अपनी समाज के गौरवशाली इतिहास-पुरुषों को जानने की प्रेरणा देता हुआ अपनी बात को पूर्ण करता हूँ-

स्वजातिपूर्वजानां तु यो न जानाति सम्भवम्।
स भवेत् पुंश्चलीपुत्रसदृशः पित्रवेदकः॥

अर्थात् जो अपने पूर्वजों के इतिहास को नहीं जानता है, वह ऐसे कुलटा-पुत्र के समान है जो अपने पिता को ही नहीं जानता।

●●●

ऐतिहासिक नाटक

जैन सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य

पात्रानुक्रमणिका

चाणक्य–	तक्षशिला विद्यालय के प्रधानाध्यापक
चंद्रगुप्त–	चाणक्य के प्रमुख प्रिय शिष्य तथा भावी सम्राट
जयदेव–	चंद्रगुप्त का अभिन्न मित्र
चित्रवर्मा–	कुलूट नरेश
पुष्कराक्ष–	काश्मीर नरेश
सिंहनाद–	मलय नरेश
सिंधुषेण–	सैंधव नरेश
गणकराय–	ज्योतिषाचार्य (चाणक्य का शिष्य)
अलक्षेन्द्र सिकंदर–	यूनानी सम्राट
शैलाक्ष (सैल्यूकस)–	अलक्षेन्द्र का प्रमुख सेनाध्यक्ष
हेलन–	शैलाक्ष की पुत्री
	पालक, सैनिक, सभासद इत्यादि

[पहला दृश्य]
तक्षशिला नगर

(आँगन में दो स्त्रियाँ संभाषण कर रही हैं। जल भरने के लिए दोनों जाने वाली थीं कि जाने से पूर्व वे वहीं बैठकर अपनी बात पूरी करती हैं। एक चाणक्य पत्नी यशोमति और दूसरी उसकी सखी सुभद्रा।)

सुभद्रा– सखी यशोमति! तुम आज–कल बहुत उदास रहने लगी हो। जान पड़ता है, आर्य चाणक्य का वियोग तुम्हें संतप्त कर रहा है। (मंद–मंद मुस्कराकर) क्यों है न यही बात?

यशोमति– (दुखित हो) तुम भले ही विनोद करो सखी, पर मुझे तो उन्हीं की चिन्ता व्याकुल किये रहती है। तुम्हीं बताओ, क्या वृक्ष के बिना लता हरी–भरी रह पाई है?

सुभद्रा– ठीक कहती हो बहिन! लता की शोभा वृक्ष है। प्रियतम के अभाव में मुरझाएगी ही। हम नारियों का सुख–सुहाग पति ही तो है।

यशोमति– देखो न, उन्हें गये एक अयन[1] हो गया अभी तक नहीं लौटे। मुझे अहर्निश उनकी चिन्ता व्याकुल किये रहती है।

सुभद्रा– बहिन पाटलीपुत्र दूर भी तो है।

यशोमति– सो तो है किन्तु दुःख इस बात का है कि मेरी बात उन्हें लग गई। कुछ व्यथित–से होकर गये हैं। मैंने उन्हें बहुत रोका परन्तु वे जो ठान चुके फिर उनके ब्रह्म वाक्य ही हो जाते हैं।

सुभद्रा– तो क्या तुमने कुछ अनुचित कह दिया है?

यशोमति– हाँ सुभद्रा! बात सचमुच ऐसी ही हो गई है। दरिद्रता कभी–कभी विवेक नष्ट कर देती है। कर्तव्य भुला देती है।

सुभद्रा– (स्नेहासिक्त स्वर में) बताओगी नहीं, क्या हुआ था? मुझे तो आश्चर्य इस बात का है कि इतने दिनों तक तुमने अपने मन की गोपनीयता की गाँठ मुझसे भी न खोली। कह तो सही, क्या बात हुई?

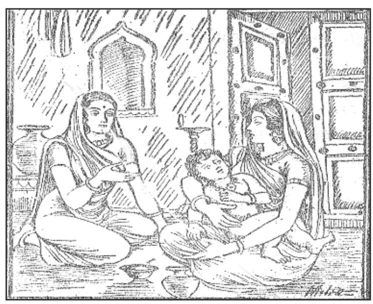

यशोमति– लाज जो लगती थी। हृदय की बात मुँह तक आकर अटक जाती थी।

सुभद्रा– अरी, अपनों से कैसी लज्जा? (आग्रह से) बात क्या हुई?

यशोमति– तुम्हें स्मरण होगा कि मैं भाई के विवाह में पीहर गई थी। वहाँ सबने मेरी दरिद्रता का खूब उपहास उड़ाया। सच बहिन, मुझे बहुत दुःख हुआ। जानती हूँ, **सांसारिक वैभव आदि सभी कर्म–जनित उपाधियाँ हैं। इनसे हमारी आत्मा का कल्याण नहीं होने वाला। न ही लोगों के उपहास करने से आत्मा की क्षति होती है,** अतः मैंने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया किन्तु जब पतिदेव के प्रति अपमान–सूचक वचन कहे जाने लगे तब मेरा धैर्य किनारा कर गया। उसी समय मैं वहाँ से चली आई।

1. छह महिने का समय

सुभद्रा– अच्छा, उनकी धृष्टता! आर्य चाणक्य जैसे मतिमान् पंडित का भी तिरस्कार!

यशोमति– यहाँ आने पर उन्होंने मेरी उदासी का कारण पूछा। मैंने कुल हाल बतला दिया। साथ ही अपने को न रोक सकी। बातों ही बातों में कह गई कि यदि आपने अन्य लोगों की तरह संपत्ति संचित की होती तो मुझे सबके वाक्बाण न सहने पड़ते। संतोष ही संतोष का उपदेश सुनते–सुनते ऊब गई हूँ।

सुभद्रा– अर्थात् तुमने भी उनका अनादर कर दिया।

यशोमति– कहने को तो कह गई सखी! पर घोर पश्चात्ताप होता है। काश! अपने वचन लौटा सकती। (आह भरकर) पर निशाना साध कर छोड़ा हुआ तीर कभी वापिस नहीं लौटा। सुभद्रा! मुझे जो आशंका थी, वही हुआ।

सुभद्रा– तो क्या तुम्हें पहिले से कुछ आभास हो गया था।

यशोमति– तुम ही बताओ भगिनी? उन जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ, उग्र स्वभावी पुरुष सुनकर कैसे चुप रह सकते थे? उसी दिन से उधेड़बुन में लगे रहे। अन्न–पान तो जैसे त्याग ही दिया हो। एक–दो ग्रास खा लिया तो बहुत है।

सुभद्रा– तुमने अच्छा नहीं किया यशोमति। बुद्धिमती होकर इतने महान् विद्वान् से मर्मभेदी वचन कहकर उनका हृदय दुखाया। धन संपत्ति तो बाह्य निधि है। तुम्हारी भी उनके आंतरिक गुणों के अक्षय कोष की ओर दृष्टि नहीं गयी?

यशोमति– बस यही भूल का शूल तो मुझे चुभ रहा है। मैंने क्षमा याचना की। बहुत–बहुत समझाया, पर वे दृढ़ प्रतिज्ञ रहे। पाटलीपुत्र प्रस्थान कर गये।

सुभद्रा– वहाँ जाकर क्या करेंगे? है बड़ा ही समृद्ध संपत्तिशाली देश। विद्या का केन्द्र है। अपनी तक्षशिला नगरी के बाद उसी का नाम लिया जाता है।

यशोमति– और भी सुना है। वहाँ के नरेश महापद्मनन्द कुशल शासक के साथ ही अहिंसाधर्मी एवं दानशीलता के लिए विश्रुत हैं। विद्याव्यसनी हैं और विद्वानों का आदर करते हैं।

सुभद्रा– (भूली हुई सी याद आती है) मगध नरेश! हाँ वे सचमुच ही महादानी हैं। क्यों यशोमति! कार्तिक पूर्णिमा के समय तुम्हारा कोई महापर्व भी होता है क्या?

यशोमति– हाँ भगिनी! आठ दिन तक अष्टाह्निका पर्व मनाये जाते हैं जो पूर्णिमा के दिन समाप्त होते हैं।

सुभद्रा– उन पर्वों में नरेश सदावर्त खोल देते हैं। सुयोग है यशोमति। समझो, तुम्हारे भाग्य का शुभोदय हुआ है।

यशोमति– जो हो, भाग्य का लिखा अमिट है। पर उनके बिना मुझे अच्छा नहीं लगता। कोई संवाद भी नहीं आया।

सुभद्रा– चिंता तो होती ही है किन्तु धैर्य–धरना होगा सखी! सुना है कुछ मागध यहाँ स्नातक बन कर आये हैं अध्ययन हेतु। कदाचित् उनसे कुछ संवाद मिल जाये।

यशोमति– (अधीर हो) चल न सुभद्रा! मेरे साथ उन तक। आर्यपुत्र के समाचार जानने की मेरी तीव्र उत्कंठा है।

सुभद्रा– चल। (दोनों का उसी क्षण विद्यालय की ओर प्रस्थान) मार्ग में–

यशोमति– क्या बताऊँ बहिन! वे बड़े संतोषी व्यक्ति रहे हैं। संतोष ही तो उन्हें माता–पिता से उत्तराधिकार में मिला है।

सुभद्रा– सो तो इस बात की सभी प्रशंसा करते हैं। वे निर्लोभी सज्जन अध्यापक हैं।

यशोमति– उनके बचपन की घटना मेरी श्वश्री[1] सुनाया करती थीं।

---

1. आदर सूचक शब्द

जन्म समय में ही आर्यपुत्र के मुख में दाँत थे। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय जैन साधु वहाँ आये तो उन्होंने बतलाया कि यह बालक बड़ा होने पर भावी राजा होगा।

सुभद्रा– तब यह मिथ्या कैसे हो गया? मैंने सुना है कि तुम्हारे जैन साधुओं के वचन अन्यथा नहीं होते।

यशोमति– साधु की बात कब मिथ्या हुई है भगिनी! सुन तो सही। मेरे श्वसुर संतोषी धर्मात्मा व्यक्ति थे। राज्य वैभव को वे पाप समझते थे। सो उन्होंने दाँत उखड़वा डाले। पुनः उन साधु ने भविष्य वाणी की कि अब यह बालक स्वयं राजपद तो न पावेगा किन्तु किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से अवश्य राज्य करेगा।

सुभद्रा– कदाचित् यह भविष्यवाणी अब सत्य हो।

यशोमति– समय आने पर ही कार्य संपन्न होते हैं। जाने वह अवसर कब आयेगा?

पटाक्षेप

[दृश्य–दूसरा]

(चाणक्य पाटलीपुत्र से निष्कासित होकर वन पथ पर–)

चाणक्य– (स्वगत क्रोधाभिभूत हो) अपमान, घोर अपमान। मैंने शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त कर पाटिलीपुत्र के पंडितों पर अपनी छाप अंकित कर दी। तदुपलक्ष्य में महाराज महापद्मनन्द ने मेरी विद्वत्ता पर मुग्ध हो दान विभाग का अध्यक्ष पद प्रदान किया किन्तु उद्दण्ड युवराज धनानन्द ने केवल मेरी कुरूपता और श्याम रंग को ही देखकर मेरा तिरस्कार किया। मैं क्यों किसी के व्यंग्य बाण सहन करूँ। मैंने भी उसे प्रत्युत्तर दिये। तिस पर उस अभिमानी ने मेरे केशों को पकड़कर मुझे सेवकों से बाहर निकलवा दिया। पर याद रख धनानन्द! जिस राज्यमद में तूने मेरा घोर तिरस्कार किया; उसी राज्य से हटाकर मैंने तेरे वंश को जड़मूल से न उखाड़ फेंका तो मेरा नाम

चाणक्य नहीं। जिन केशों को तूने खोला है, वे केश तभी बँधेंगे, जब यह भीषण प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। मुझे ऐसे पुरुष को खोजना होगा, जो राजा होने के उपयुक्त हो।

मुझे याद है, जब मातुश्री कहती थीं– पुत्र! तेरा राजयोग हमने ही भंग किया है। काश! मुझे राजपद मिलता परन्तु भवितव्यता ऐसी नहीं थी। राजा बनना होता तो बुद्धि के साथ मेरा रंग रूप निखरता। नरेशों का सुन्दर होना अनिवार्य है। प्रशस्त ललाट, सौम्य मुखाकृति वाले भूपति ही चिरकाल तक राज्य कर सकते हैं। उनकी निर्मल विचारधारा, आकर्षक व्यक्तित्व, सुन्दरता शासित वर्ग का मन लुभा लेती है। अपनी कल्पना को मूर्त्तरूप देने के लिए ये आज से मेरा अभियान प्रारम्भ हो जायेगा। चाणक्य आज प्रतिज्ञा करता है कि जब तक योग्य पुरुष न मिलेगा; तब तक चैन से नहीं बैठूँगा।

पटाक्षेप

[दृश्य–तीसरा]

मयूर नगर के राजा देवसेन का गृह

समय– प्रातःकाल, द्वितीय प्रहर

(देवसेन चिन्तित मुद्रा में विराजे हैं। चाणक्य साधु के रूप में भिक्षा हेतु उपस्थित होते हैं।)

चाणक्य– द्वार पर साधु आया है माँ! (सहसा देवसेन को देखकर) राजन् उदास प्रतीत होते हैं।

देवसेन– (साधु की अभ्यर्थना हेतु खड़े होकर उच्चासन देते हुए) अतिथि देव का स्वागत है गुरुदेव! कृपया, विराजकर कुटिया को पवित्र करें।

चाणक्य– (बैठकर) क्या कष्ट है तुम्हें? साधु से बतलाने में हानि की संभावना नहीं है।

देवसेन– नहीं महाराज! आप से हानि कैसे हो सकती है? आप ठहरे रमता जोगी। हम गृहस्थों से आपको क्या प्रयोजन?

चाणक्य– वत्स! हम किसी को कष्टमय नहीं देख सकते। तत्काल उसकी व्यथा निवारण करने का कार्यक्रम बनाते हैं।

देवसेन– धन्य है महाराज! आप जैसे साधु सन्तों का स्वभाव ही परम दयालु होता है इसीलिए तो हम लोग आपको करुणासागर कहते हैं। कहिये, आपकी क्या सेवा की जाये?

चाणक्य– गृहपति! हम स्वयं सेवक हैं। स्वस्थ होकर अन्य से सेवा कराना घृणित कर्म और अपराध समझते हैं।

देवसेन– आप लोगों की बात लोकोत्तर होती है महाराज! चलिये भोजनशाला में भोजन ग्रहण कर हमें कृतार्थ करें।

चाणक्य– भद्र! प्रथम हमें अपनी व्यथा बतलायें जिससे उसे मिटाने का भरसक प्रयास करूँ।

देवसेन– आपकी वात्सल्यता देखकर हमें परम सन्तोष हुआ है गुरुदेव! बात यह कि मेरी पुत्री गर्भवती है। उसे चन्द्रमा पीने का दोहला हुआ है। दिनोंदिन वह कृशकाय होती जा रही है। इस दोहले की पूर्ति नितांत असम्भव है। पुत्री की प्राण–रक्षा किस प्रकार हो? यही चिन्ता परिवार को आठों प्रहर सता रही है।

चाणक्य– (कुछ समय विचारमग्न हो पश्चात्) वत्स! चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम निश्चिन्त रहो। मैं दोहला पूर्ण कर तुम्हारी दुहिता को दीर्घायु करूँगा। वह बहुत भाग्यवान है।

देवसेन– (हर्षित हो आश्चर्य पूर्वक) महाराज!

चाणक्य- हाँ राजन्! तुम विश्वास रखो, दोहला पूर्ण होकर ही रहेगा। संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं जो मनुष्य न कर सके।

देवसेन- महाराज! आपके वचनों से ही हम मृतकों में जैसे प्राण लौट आये हैं।

चाणक्य- किन्तु एक शर्त है राजन्।

देवसेन- (नम्रता पूर्वक) कहिये गुरुदेव! हम अकिंचन आपकी क्या सेवा कर सकते हैं?

चाणक्य- कुछ कठिन और कठोर है भद्र! सोच-समझकर वचन दो।

देवसेन- अतिथि की सेवा करना हमारा धर्म है महाराज! सोचना समझना कैसा?

चाणक्य- फिर विचार कर लेना अत्युत्तम होगा।

देवसेन- गुरुदेव! बार-बार ऐसा सुनकर गृहस्थों की अतिथि-सेवा में लांछन लगता है। हम आपके कहने से पहिले मन की बात जान पाते तो तुरन्त पूरी करते। पर दुर्भाग्य! ऐसी विद्या नहीं है हमारे पास।

चाणक्य- धन्य हो वत्स! तुम आर्य खण्ड के उज्ज्वल नक्षत्र हो। तुम्हें अपने दोहित्र को हमें दे देना होगा।

देवसेन- किंचित् उदास हो (परन्तु तुरन्त ही आश्वस्त हो) तथास्तु महाराज!

चाणक्य- भद्र! हमारे वचनों से कष्ट हुआ हो तो क्षमा चाहेंगे।

देवसेन- नहीं महाराज! आप हमारे पूज्य हैं। हमें लज्जित न करें। जन्मते ही शिशु आपको सौंप दिया जायेगा।

चाणक्य- वत्स! ऐसा नहीं। तुम लालन-पालन करना जब तक वह आठ वर्ष का न हो जाए। तत्पश्चात् मैं ले जाऊँगा। उसका भविष्य सुन लो।

तुम्हें अत्यन्त आनन्द होगा।

देवसेन– (हाथ जोड़कर) कृपा होगी गुरुदेव!

चाणक्य– भद्र! तुम देख रहे हो आज आर्य खण्ड की कितनी दुर्दशा है। इतनी स्वच्छन्दता परिव्याप्त है कि समग्र देश अनेक भागों में विभक्त है। संगठन न होने के कारण हम शक्तिहीन दुर्बल हो रहे हैं। दुर्भाग्यवश किसी विदेशी शत्रु का आक्रमण हो गया तो हम कहीं के न रहेंगे। हमारा धर्म, हमारी संस्कृति सब नष्ट हो जायेगी। (दृढ़तापूर्वक एक निश्चित आवाज में) हम चाहते हैं वत्स! इस समस्या का समाधान हो, अतएव हमें ऐसे पुरुष की खोज है जो सम्पूर्ण आर्यखण्ड को एक सूत्र में बाँध ले। तुम्हारी रत्नावली के गर्भ में ऐसा ही रत्न छिपा है जो भविष्य में महान सम्राट होगा।

देवसेन– महाराज! कहीं आप उपहास तो नहीं कर रहे। हमारा दोहता (पोता) सम्राट बनने का स्वप्न कैसे देख सकता है स्वामिन्!

चाणक्य– इसे स्वप्न नहीं समझो भद्र! जो हम कह रहे हैं वह चिर सत्य और प्रत्यक्ष होने जा रहा है।

देवसेन– गुरुदेव!....

चाणक्य– हाँ महोदय! हम वह स्वप्न प्रत्यक्ष करके दिखलायेंगे। तुम्हें विदित होना चाहिये कि चंद्रमा पीने का इतना कठिन दोहला असाधारण माता को ही हो सकता है। जिसप्रकार पूर्णचंद्र तम विनाशक आह्लादकारी है उसी प्रकार गर्भस्थ शिशु भी भारत के लिये मंगलदायक होगा।

देवसेन– प्रभु करे आपके वचन सत्य हों। आर्य खण्ड का उद्धार हो।

चाणक्य– होगा (निश्चयात्मक स्वर में) ऐसा ही होगा।

देवसेन– आपके संरक्षण में ही हो सकता है गुरुदेव!

चाणक्य– शिक्षा तो मैं अपने ही संरक्षण में करूँगा, जन्म से ही बालक को माँ से पृथक करना महान अपराध होगा। यह अनर्थ हम न कर

सकेंगे। उसकी माँ की योग्यता के विषय में संदेह करना भूल है। अभी उसे माँ की गोद में पनपने दो।

देवसेन– एवमस्तु! चलें गुरुदेव, आहार ग्रहण कर अतिथि सेवा का सुअवसर प्रदान करें।

चाणक्य– अवश्यमेव। एक बात आवश्यक है। आज पूर्णिमा है, आज की रात तुम्हारी पुत्री की मनोकामना पूर्ण होगी। एक काम करना होगा। अपने उद्यान के बीचों–बीच एक छोटा मंडप बनवा लो। ऊपर का वितान वस्त्र का नहीं बल्कि शाखा पत्रों का हो। साथ ही ऐसा प्रबंध करना होगा ताकि मनचाहा आच्छादित कर सकें और हटा भी सकें। अस्तु, इसी समय सेवकों को समुचित आदेश दे दो ताकि यथा समय कार्य संपन्न हो सके।

देवसेन– आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महाराज, चलिये।

दोनों जाते हैं। परदा गिरना।

[दृश्य–चौथा]

(समय– द्वितीय प्रहर, मध्यरात्रि)

(उद्यान में एक छोटा सा मंडप है। मंडप के ठीक बीचों–बीच एक काँसे की थाली रखी है। चाणक्य, देवसेन विराजमान हैं। आज्ञा पालन में सेवक भी तत्पर दिखाई देते हैं। निर्मल नीलाकाश में शरद पूर्णिमा का चाँद मुस्करा रहा है। धवल दुग्ध फेनिल– चाँदनी इठलाती हुई वसुन्धरा पर चारों ओर अपनी स्निग्धता बिखेर रही है।)

चाणक्य– सेवक! काँसे की थाली अमृतमय शर्करायुक्त दूध से भर दो।

सेवक– (हाथ जोड़कर) आदेश पालन हो चुका है महाराज!

चाणक्य– (देवसेन से) भद्र! देख रहे हो चंद्र कितना शांत और

मनोरम प्रतीत हो रहा है।

देवसेन– हाँ गुरुदेव! ऐसा लगता है जैसे नील नभ में कोई शिशु मुस्करा रहा है। चाँदनी भली सुहावनी लग रही है।

चाणक्य– कल्पना करो कि जैसा ये शशि इतने बड़े समस्त विश्व को आनंददायी और इसी पूर्णचंद्र को कोई उदरस्थ कर ले तो क्या उस नारी के गर्भ का शिशु शशि जैसा ही आनंदकारक न होगा?

देवसेन– (हर्ष से रोमांचित हो) आप जैसे साधुओं के आशीर्वाद से सब कुछ संभव है महाराज!

चाणक्य– अच्छा, तो अब बुलाओ आयुष्मति पुत्री को। प्राचीन आचार्यों का कथन है कि शरद पूर्णिमा की रात्रि में चंद्रमा से अमृत झरता है। आज हम वही अमृत रत्नावली को पिलायेंगे ताकि समस्त आर्य खंड का उद्धारक यशस्वी पुत्ररत्न उत्पन्न हो। (आदेश देते हैं) सेवक जाओ! देवी रत्नावली को ले आओ। प्रथम अपना कार्य समझ लो।

सेवक– कहिये गुरुदेव! आज्ञा पालन में सेवक तत्पर है।

चाणक्य– जिस समय देवी दुग्धपान करे, उस समय तुम्हें चुपचाप शनैः शनैः मंडप का ऊपरी खुला भाग इस प्रकार ढंकना होगा, जिससे थाली में दिखता हुआ चंद्र का प्रतिबिंब क्रमशः लुप्त हो जाये और यह रहस्य गुप्त रहे।

सेवक– ऐसा ही होगा महाराज! (जाता है पुनः रत्नावली को लेकर प्रवेश)

चाणक्य– आओ देवी रत्नावली! बोलो तुम्हारी क्या अभिलाषा है? हम उसे तत्क्षण पूरा करेंगे।

रत्नावली– महाराज! बस एक ही कामना है। मुझे प्रतिक्षण ऐसा लगता है कि इस खिले हुये आकाश कुसुम को समूचा निगल जाऊँ।

चाणक्य- एवमस्तु! उठो, आओ हम आज मंत्र-बल से तुम्हें चंद्रपान करायेंगे। (मंडप के पास सब आते हैं) पुत्री! देख रही हो थाली।

रत्नावली- गुरुदेव! मुझे थाली नहीं अपितु पूर्णचंद्र प्रतिभासित हो रहा है। क्या सचमुच चंद्र है?

चाणक्य- हाँ पुत्री! निस्संदेह यह चन्द्र है।

देवसेन- रत्ना! गुरुदेव पहुँचे हुये साधु हैं। मंत्रबल से उन्होंने इस थाली में चंद्र को उतारा है।

चाणक्य- आयुष्मति रत्नावली! तुम प्रसन्नता पूर्वक इस चंद्रमय दुग्ध का पान कर सकती हो।

रत्नावली- (हर्षित हो) सच पी लूँ।

चाणक्य- हाँ, हाँ निःसंकोच।

(रत्नावली दूध पीने लगती है। ज्यों-ज्यों दूध कम होता जाता है, त्यों-त्यों सेवक मंडप को शाखा पत्रों से आच्छादित करता जाता है। रत्नावली दुग्धपान कर आश्वस्त होती है)

रत्नावली- आपके आशीर्वाद से आज मुझे बहुत काल के पश्चात् तृप्ति मिली। हे गुरुदेव!अब मैं पूर्णतः संतुष्ट हुई।

देवसेन- महाराज! आपने आज मेरी बड़ी भारी चिंता का निवारण किया है। मैं हर्ष विह्वल हूँ। आपका चिर-कृतज्ञ रहूँगा गुरुदेव! (पुत्री से) तुम विश्राम करो रत्ना।

रत्नावली- (जाती हुई) नमस्कार गुरुदेव!

चाणक्य- हमारा कार्य समाप्त हुआ भद्र! हम जाना चाहेंगे।

देवसेन- इतने शीघ्र गुरुदेव! कुछ दिन इस अकिंचन का आतिथ्य ग्रहण करें।

चाणक्य- नहीं भद्र! हमारा चिर-अभिलाषित उद्देश्य पूर्ण हुआ। हम पुनः अपने आश्रम लौट जायेंगे। हमें आर्य खंड के विस्तृत साम्राज्य की नींव

डालनी है।

देवसेन- इस अर्धरात्रि में कहाँ जायेंगे? सूर्योदय तक तो रुकें महाराज!

चाणक्य- तक्षशिला पहुँचने तक कई अहोरात्रि चलना होगा भद्र! रुक कर समय नष्ट करना व्यर्थ है। अच्छा, चलते हैं।

देवसेन- (दुखित हो) नमस्कार गुरुदेव! अपने पुत्र का ध्यान रखें।

चाणक्य- अवश्यमेव। तुम निश्चिंत रहो।

(चाणक्य जाते हैं। देवसेन, सेवक हाथ जोड़ कर अन्यमनस्क से खड़े विदाई देते हैं।)

[दृश्य-पाँचवाँ]

(9 वर्ष पश्चात्)

आर्य चाणक्य मयूर नगर में-

(मयूर नगर के उद्यान में बालक खेल रहे हैं। एक शिला पर चंद्रगुप्त आकर बैठता है। कई बालक क्रमशः अमात्य, प्रतिहारी, सभासद, अभियोगी, अंगरक्षक आदि का अभिनय कर रहे हैं। दो बालक अंगरक्षक के रूप में ताड़ वृक्षों के पंखे लेकर नरेश चंद्रगुप्त पर मंद-मंद व्यजन[1] डुला रहे हैं। दो- चार बालक अंगरक्षक बनकर हाथ में लाठी लिये हुये नियुक्त हैं। कुछ बालक जमीन पर पालथी मारे बैठे हैं जो कि सभासद बनकर सभा की शोभा बढ़ा रहे हैं। पास ही दूसरी शिला अमात्य जयदेव के लिये है। सभा प्रारम्भ होती है। कुछ बालक प्रार्थी बनकर नरेश से न्याय कराने हेतु प्रस्तुत होते हैं) (चाणक्य ओट से देखते हैं)।

प्रतिहारी- (उच्च स्वर में) सावधान! राज-राजेश्वर प्रतापी सम्राट चंद्रगुप्त पधार रहे हैं।

(पूरी सभा खड़ी हो जाती है। चंद्रगुप्त का प्रवेश। सब अभिवादन करते हैं।)

1. पंखा

चन्द्रगुप्त- (सिंहासन पर बैठकर) सभासदो! अब हमारी सभा प्रारंभ हो रही है। प्रतिहारी, उन अभियोगी नागरिकों को उपस्थित करो। उनका न्याय होगा।

प्रतिहारी- जो आज्ञा महाराज! (जाता है)

चंद्रगुप्त- (सभासदों से) उपस्थित सदस्यगण! आप लोग भी ध्यान पूर्वक अनुयोग सुनें। न्याय करने में आपकी सम्मति अपेक्षणीय है।

सभासद- (समवेत स्वर से) अवश्यमेव महाराज!

(प्रतिहारी का एक बालक को लिये हुए प्रवेश)

बालक- राजन्! मेरी माँ अस्वस्थ हैं। उनसे कृषिकार्य नहीं सम्हल रहा। आप हमारे माई-बाप हैं। हमें उड़ाबनी कराना है। मजदूरी देने के लिये हमारे पास पैसे नहीं हैं।

चन्द्रगुप्त- घबराओ नहीं नागरिक! जब तक तुम्हारी माता जी पूर्णतः स्वस्थ नहीं हो जातीं तब तक राज्य की ओर से कुछ कर्मचारी नियत कर दिये जायेंगे जो तुम्हारी खेती का कार्य निपटवा देंगे। उनका वेतन राज्यकोष से दिया जायेगा।

बालक- धन्य हो महाराज! आपने मेरी बड़ी भारी चिंता का निवारण क्षण मात्र में कर दिया। मैं आपका अनुग्रहीत हूँ। (जाना)

(द्वितीय बालक का प्रेवश)

चन्द्रगुप्त- कहें नागरिक! तुम क्या चाहते हो?

बालक- महाराज! समस्या बड़ी कठिन हो गई। शासन से कुछ सहायता की अपेक्षा है।

चंद्रगुप्त- किस प्रकार की सहायता चाहते हो जीवक।

बालक- बुआ का विवाह है। बारातियों को ठहराने के लिये योग्य वसतिका की आवश्यकता है।

चन्द्रगुप्त– अवश्यमेव! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। प्रबंध की चिंता मत करो।

बालक– कृतज्ञ हुआ राजन्! (प्रस्थान)

चाणक्य– (स्वगत ओट में खड़े होकर) कितना सुन्दर प्रतिभाशाली बालक है। बिल्कुल राजाओं जैसा अभिनय कर रहा है। भव्य ललाट, विशाल वक्षस्थल, कीर जैसी नासिका, अजानु बाँहें सभी लक्षण चक्रवर्ती सम्राट के द्योतक हैं।

(प्रतिहारी एक बालक को लाता है। बालक देवपाल बहुत रोष में है)

देवपाल– (क्रोधित होकर) राजन्! मेरी छोटी बहिन रामवती को सुमित्र ने अपशब्द कहे हैं। मुझे उस पर रोष आ रहा है। आपके शासन काल में स्त्री जाति का अपमानित होना घोर अनर्थ है।

जयदेव– शांत हो देवपाल, शांत हो। अपराधी को अवश्य दण्ड मिलेगा।

चंद्रगुप्त– स्पष्ट कहो देवपाल! क्या बात हुई? सुमित्र तो तुम्हारा मित्र है।

देवपाल– (क्रोधित अवस्था में) था, अब नहीं है। कल संध्याकाल बहिन रामवती बालू के घरोंदे बना रही थी, सुमित्र ने उसके घरोंदे में लात मार दी, रामवती रोने लगी तो सुमित्र हँस पड़ा, दोनों में कुछ कहा-सुनी हो गई। इसी बीच सुमित्र ने दुर्वचन कहे।

चन्द्रगुप्त– प्रतिहारी! सुमित्र को इसी समय उपस्थित करो।

प्रतिहारी– जो आज्ञा महाराज! (जाता है)

चन्द्रगुप्त– (जयदेव से) महामात्य! सुमित्र को क्या दण्ड दिया जाये?

जयदेव– महाराज! आप स्वयं समझदार हैं, यदि आज्ञा हो तो सभासदों की सम्मति ले ली जाये।

चन्द्रगुप्त– अवश्यमेव मंत्रिवर! (सभासदों से) सदस्यगण! नारी की मर्यादा को उल्लंघन करने वाला कौन से दण्ड का पात्र है ?

पहला सभासद– महाराज! उसकी जीभ कटवा देना उचित है।

दूसरा सभासद– महाराज! उसे मल्लों से घूँसे लगवाना चाहिये।

तीसरा सभासद– उसके मुँह में मिर्च भरनी चाहिये। (प्रतिहारी सुमित्र को लिये हुये प्रवेश)

प्रतिहारी– आर्य सुमित्र उपस्थित है महाराज! (सुमित्र नतमस्तक है)

चंद्रगुप्त– आर्य सुमित्र! क्या तुमने आर्य देवपाल की भगिनी को दुर्वचन कहे हैं?

सुमित्र– (सहमते हुये) राजन्!....

चंद्रगुप्त – (कड़ककर) सच-सच कहो सुमित्र।

सुमित्र– महाराज!...

चन्द्रगुप्त– तुमने नारी मर्यादा का उल्लंघन कर अनैतिक कार्य किया है सुमित्र! कठोर दण्ड भुगतने के लिये तैयार हो जाओ।

सुमित्र– (साहस से भरकर) राजन्! दण्ड सहर्ष स्वीकार है किन्तु अपराध की क्षमा भी चाहता हूँ, भविष्य में पुनः ऐसी भूल करने का दुस्साहस नहीं करूँगा।

चन्द्रगुप्त– विश्वास हेतु प्रमाण दो सुमित्र!

सुमित्र– राजन्! साक्षी की क्या आवश्यकता? जबकि मैं स्वयं आपसे वचनबद्ध हूँ और फिर आप जैसे न्यायप्रिय नृपेन्द्र की सभा में कोई पुरुष अनैतिक आचरण करने का साहस भी कैसे कर सकता है महाराज! एक बात और भी है, **मनुष्य दुनियाँ की आँखों में धूल झोंक सकता है पर**

अपनी में नहीं। (दृढ़ता पूर्वक) राजन्! मेरी साक्षी में मैं और मेरे वचन हैं।

चन्द्रगुप्त– साधु सुमित्र! तुमने अपराध स्वीकार कर महानता का परिचय दिया है। जिस राज्य में ऐसे महापुरुष हों, उस राज्य की दिनों–दिन उन्नति होगी। हम तुम्हें क्षमा करते हैं, आशा है कि तुम अपने वचनों के प्रति जागरूक रहोगे।

सुमित्र– आप आश्वस्त रहें सम्राट।

चंद्रगुप्त– सभासदो! आपकी क्या सम्मति है?

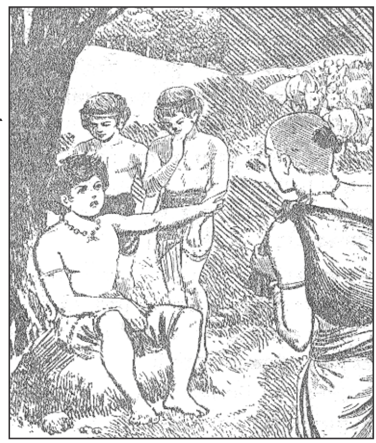

सभासद– (समवेत) आपका निर्णय मान्य है राजन्!

चंद्रगुप्त– सभा की कार्यवाही अब समाप्त होती है।

चाणक्य– (सहसा सभा में प्रवेश कर) राजन् मेरी भी आपसे प्रार्थना है।

चंद्रगुप्त– निःसंकोच कहें। आप कौन हैं एवं किस हेतु यहाँ पधारे हैं?

चाणक्य– राजन् मैं ब्राह्मण हूँ। गोधन न होने के कारण मैं गौरस से वंचित हूँ, कृपया एक गाय प्रदान करें।

चंद्रगुप्त– (उदारता पूर्वक) विप्रवर! सामने गायें चर रही हैं, अपनी इच्छानुसार चुन लीजिये।

चाणक्य– (कृत्रिम भीत होते हुये) नहीं राजन्! ये गायें हम कैसे ले सकते हैं? इनका स्वामी रोकेगा तो?...

चंद्रगुप्त– भयभीत मत होओ ब्राह्मण (किंचित् रोष पूर्वक) किसमें साहस है जो राजा चंद्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना कर सके।

चाणक्य– (मुस्कराकर) ओह! चन्द्रगुप्त ! आप यहाँ के राजा हैं। (कुछ याद करते हुये स्वगत चन्द्रगुप्त?) धृष्टता क्षमा हो राजन्! मुझे विस्मरण हो गया था।

चन्द्रगुप्त– कोई बात नहीं विप्रवर! आप हमारे गुरु तुल्य हैं। अच्छा अब हमारी सभा की कार्यवाही समाप्त होती है। हम लोग अभी राजसभा का अभिनय कर रहे थे। यहाँ मैं आपकी और सेवा कर सकता हूँ। मेरे निवास–स्थान को चलें तो यथायोग्य अतिथि सत्कार कर अपने को कृतार्थ कर सकूँगा। (सब खड़े हो जाते हैं)

चाणक्य– बालक! एक बात बता सकोगे? तुमने हमें गुरु कहा है। क्या हमारे साथ चलकर विद्या अध्ययन करोगे? हम तुम्हें पूर्ण शिक्षित बना देंगे।

चन्द्रगुप्त– (सहर्ष) सच! मुझे पढ़ने की लालसा है गुरुदेव! मैं आपके साथ अवश्य चलूँगा।

चाणक्य– कहीं तुम्हारे माता–पिता ने नहीं जाने दिया तो?

चन्द्रगुप्त– यह असंभव है गुरुदेव! मेरी आकांक्षाओं पर नियंत्रण नहीं है।

चाणक्य– दृढ़प्रतिज्ञ दिखते हो।

चन्द्रगुप्त– यदि मनुष्य अपना लक्ष्य निर्धारित कर ले एवं उसकी प्राप्ति में कटिबद्ध हो जाये तो निश्चय ही वह अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।

चाणक्य– तुम्हें विश्वास है वत्स! कि तुम्हारे माता–पिता तुम्हें अनुमति दे देंगे?

चंद्रगुप्त– नहीं देंगे तो मैं उन्हें अनुमति के लिये बाध्य करूँगा, उन्हें देना ही पड़ेगी गुरुदेव! मेरे पिता हैं नहीं, मातुश्री और मातामह हैं। पिता मेरे

जन्म के पूर्व ही युद्ध क्षेत्र में वीर गति को प्राप्त हो गये थे।

चाणक्य– वत्स! तुम मेरे लिये पहेली बनते जा रहे हो, तनिक अपना दाहिना हाथ तो दिखाओ?

(चन्द्रगुप्त हाथ बढ़ा देता है, चाणक्य हाथ देखकर)

चाणक्य– ओह! चक्रवर्ती सम्राट के सभी लक्षण मिल रहे हैं। चन्द्रपान का दोहला! (विचारते हुए) कदाचित् इसी की माता को हुआ होगा।

चन्द्रगुप्त– आप क्या कह रहे हैं गुरुदेव? (सरलता और बचपन का भोलापन मुख पर झलक रहा है)।

चाणक्य– (सावधान हो) कुछ नहीं वत्स! यूँ ही कुछ पुरानी स्मृतियाँ जाग गई थीं।... हाँ तुम हमारे साथ चलो। हम आर्य देवसेन से भेंट कर तुम्हारी माता से मिलेंगे।

चन्द्रगुप्त– (मुस्कराकर) गुरुदेव मेरे मातामह से मिलना चाहते हैं? चलें, मुझे जानकर प्रसन्नता हुई।

चाणक्य– (हँसते हुए) ओह! तो तुम उनके दोहित्र हो? निश्चय ही देवी रत्नावली तुम्हारी माता हैं।

चन्द्रगुप्त– गुरुदेव का अनुमान सत्य है। ज्ञात होता है हमारे घराने से आपका पूर्व परिचय है?

चाणक्य– निःसंदेह! तुम्हारा चन्द्रगुप्त नामकरण मैंने ही तुम्हारे जन्म के पूर्व किया था। (प्यार से पीठ थपथपाते हुए)

चन्द्रगुप्त– चलें गुरुदेव! मैं यह शुभ संवाद शीघ्रातिशीघ्र सबको सुनाना चाहता हूँ।

चाणक्य– चलो। (सब जाते हैं)

पटाक्षेप

[दृश्य-छठवाँ]

(अलक्षेन्द्र सिकंदर का सेनापति शैलाक्ष सैल्यूकस है। सिकंदर काबुल आदि देश विजित करता हुआ इस समय पारस देश में है। सेना कुछ दिन यहाँ विश्राम करेगी। सैल्यूकस सिकंदर का मुख्य सेनापति तो है, साथ ही अत्यंत विश्वस्त साथी भी है। सिकंदर के भारत विजय अभियान में उसका एक निकट संबंधी है जो क्षुद्रवृत्ति का है, नाम है फिलिप्स। सिकंदर पारस से अपने विश्वस्त सेनापति सैल्यूकस और फिलिप्स के साथ कुछ सैनिकों को गुप्तवेश में तक्षशिला की राजनीति आदि का पता लगाने भेजता है। सैल्यूकस पत्नी के निधन के उपरांत एक मात्र प्रिय पुत्री हेलन को कभी आँखों से ओझल नहीं होने देता। इस समय भी वह साथ में है।)

तक्षशिला में

(विश्वविद्यालय के पास नदी किनारे पुत्री हेलन के साथ शैलाक्ष अश्वों पर आता है। दोनों अपने घोड़े एक पास ही वृक्ष से बाँध देते हैं और नदी किनारे टहलने लगते हैं)

हेलन- (आनंदातिरेक से) कितना रम्य प्रदेश है। यहाँ की नदी पर्वतमालायें कितनी सुहावनी लगती हैं। बर्फ से ढँकी चोटियाँ चाँदनी में ऐसी लग रही हैं जैसे इन पर धुली श्वेत चादर बिछी हो, किंवा[1] इन चोटियों को किसी कुशल स्वर्णकार ने चाँदी से मढ़ दिया हो।

शैलाक्ष- हाँ बेटी! यहाँ का सब अनोखा ही है। प्रकृति की सभी विचित्र विलक्षणतायें यहाँ पर निखार पा रही हैं।

हेलन- सचमुच प्रकृति सुन्दरी नवोढ़ा के रूप में सदा सर्वत्र विचरती रहती है। कैसा शांत मनोरम वातावरण है यहाँ का।

शैलाक्ष- यह क्षेत्र विद्यापीठ के अंतर्गत आता है हेलन! यहाँ राजनीति का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता। आंभिराज यहाँ का राजा होते हुए भी

---

1. अथवा/या

विद्यालय में उसकी कोई सत्ता नहीं है, कोई शासन नहीं। अद्भुत है यह देश। विद्यालयों में नरेश भी साधारणजन की तरह हैं।

हेलन– यह तो सबसे बड़ा आश्चर्य है पिदर! जहाँ अपने राज्य में भी राजा की कोई महत्ता न हो।

शैलाक्ष– पहिले तो मुझे इस बात का विश्वास ही नहीं हुआ किन्तु छानबीन करने के पश्चात् यही सत्य ज्ञात हुआ। विद्यापीठ का महत्व यहाँ पर सबसे अधिक है। समूचे आर्यावर्त के राजकुमार यहाँ जन साधारण की तरह सुख वैभव से दूर रहकर विद्या अध्ययन करते हैं।

हेलन– (आश्चर्य पूर्वक) राजकुमार!

शैलाक्ष– हाँ हाँ राजकुमारों के महलों में आचार्य नहीं जाते बल्कि राजकुमार विद्यार्थी बनकर यहाँ शिक्षा प्राप्त करते हैं। बड़े-बड़े राजे महाराजे पाँव प्यादे चलकर विनय पूर्वक आचार्य के पास आते हैं। विद्यालय के क्षेत्र में वाहनों का उपयोग निरी मूर्खता ही समझा जाता है। वाहनों के अतिरिक्त राजा लोग अपने राजसी प्रतीकों को भी पृथक् कर देते हैं।

हेलन– अध्यापकों का पद यहाँ सर्वश्रेष्ठ ही नहीं महानतम भी माना जाता है।

शैलाक्ष– यह सब बड़ा विचित्र ज्ञात होता है। यद्यपि गुरुकुल राजनीति से दूर रहता है तथापि राजनीति सीखने सब यहीं आते हैं।

हेलन– अच्छा! यहाँ केवल राजनीति ही सिखाई जाती है?

शैलाक्ष– नहीं बेटी! सब कुछ। शस्त्र संचालन से लेकर लौकिक पारलौकिक सभी प्रकार की विद्या का केन्द्र है तक्षशिला। छन्द, व्याकरण,

दर्शन, तर्क, ज्योतिष, वैद्यक, राजसी चिकित्सा इत्यादि जाने क्या-क्या पढ़ाया जाता है।

हेलन- आपने कितने नाम गिना दिये पिदर! क्या एक ही विद्यार्थी इतनी सब विद्या ग्रहण कर लेता है?

शैलाक्ष- यों तो सब विद्यार्थी अपनी-अपनी योग्यतानुसार अध्ययन करते हैं परन्तु राजकुमारों का सभी विद्याओं में पारंगत होना अनिवार्य है। यहाँ का शिक्षित विद्यार्थी सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

हेलन- आश्चर्य है पिदर! मालूम होता है प्रकृति ने सभी वरदान यहीं पर उड़ेल दिये हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के साथ यहाँ के मानव का आंतरिक सौन्दर्य भी प्रशंसनीय है। पर....... (विचार मग्न हो जाती है)

शैलाक्ष- अरे! अभी-अभी चहकने वाली चिड़िया अचानक चुप क्यों हो गई? किस विचार में पड़ गई हेलन!

हेलन- मुझे युद्ध की सुधि आ गई पिदर! देव-पुत्र ऐसी सुरम्य शस्य श्यामला वसुन्धरा पर रक्त की सरिता बहा देंगे। कहाँ होंगे ये आदर्श? कहाँ रहेगी इनकी संस्कृति? सब कुछ युद्ध की दाहक ज्वाला में भस्मीभूत हो जायेगा। मुझे अत्यंत हृदय विदारक दुःख हो रहा है, मेरा जी घबराने लगा है।

शैलाक्ष- तू बहुत मृदु स्वभाव की है हेलन! तुझे तो मैं यूनान में छोड़ आता तो अच्छा रहता। पर मेरे अतिरिक्त घर में है भी कौन? अकेली किसके सहारे छोड़ता, यह कठिन समस्या थी। नहीं-नहीं तुझे मैं अपनी आँखों से ओझल नहीं रख सकता, तू अपनी माँ की एक मात्र निशानी है, पर यहाँ लाकर भी मैं पछता रहा हूँ, युद्ध से तू आतंकित हो उठी है।

हेलन- हे पिदर! यदि आप मुझे न लाते तो इस सुनहले देश के दर्शन कैसे होते? ..... अच्छा ये बताइये कि किसी तरह भी यह युद्ध, नरसंहार रोका नहीं जा सकता है?

शैलाक्ष– पागल है हेलन तू! भला विजेता की चाह कभी समाप्त हुई है। यह देवपुत्र अलक्षेन्द्र का विजय अभियान है। वे भारत विजय करके ही रहेंगे।

हेलन– (दुखित हो) तब तो बड़ा ही अनिष्ट होगा पिदर! युद्ध की विभीषिका अत्यन्त भयंकर होगी। उफ् नर संहार कहाँ तक देखेंगीं ये आँखें। सुना है इस देश की अहिंसा में आस्था है। ऐसे अहिंसक सरल मानवों का संहार निश्चय ही करुणाजनक एवं निम्नकोटि का होगा। (आग्रह पूर्वक स्नेहासिक्त स्वर से) पिदर! रोकिये न इस युद्ध को। समझाइये देवपुत्र को।

शैलाक्ष– वीर शैलाक्ष की पुत्री के मुख से ऐसी कायरता पूर्ण बातें शोभा नहीं देतीं हेलन।

हेलन– नर संहार करना ही यदि वीरता का लक्षण है तो मैं बाज आई ऐसी वीरता से।

शैलाक्ष– बेटी! राजधर्म बड़ा कठोर है और उससे भी अधिक है मनुष्य की लिप्सा। ये कभी शांत नहीं होती। किसी भी कीमत पर इसकी प्रज्ज्वलित आग में ईंधन झोंकना ही पड़ता है।

हेलन– तब तो इसे ठंडी कर देना ही उपयुक्त है ताकि मानवता की क्षति न हो।

शैलाक्ष– तू पागल है हेलन! एकदम पागल है! लक्ष्मीपति ही दुनियाँ में सर्वश्रेष्ठ कहलाते हैं। ये दार्शनिक विचार तेरे मन में कहाँ से प्रवेश कर गये? जान पड़ता है इस भूमि का प्रभाव तुझ पर भी पड़ गया है। छोड़ व्यर्थ की बातों को। तनिक सी आयु में वृद्धों जैसी उदासीनता की बातें ले बैठी। (अचानक याद आती है) मैं बिल्कुल भूल गया हेलन खबररसां (गुप्तचर) मेरी राह देख रहा होगा। मैं यहाँ बातों में लग गया। तुम यहीं ठहरो, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।

हेलन– मुझे यहाँ बहुत आनन्द आ रहा है। आप निश्चिंत हो अपना कार्य कर आइये।

(पूर्णिमा की चाँदनी पूर्ण रूप से खिल चुकी है। हेलन बालू पर लेट जाती है। यह अपना सिर एक हाथ के सहारे रखे है)।

हेलन– (स्वगत) सांध्य दृश्य देखा था, तब सूर्य ऐसा लग रहा था जैसे विशाल आग का गोला शनैः शनैः ठंडा होता जा रहा है। दूसरी ओर उसका प्रतिद्वंद्वी चंद्र अपनी शीतलता लिये सर्वत्र शांति बिखेरता हुआ क्रमशः ऊँचा उठ रहा है। अब वह पूर्ण यौवन प्राप्त कर रहा है। सूर्य की उष्णता पूर्ण रूप से विलुप्त हो गई है.... कदाचित् इसी प्रकार अलक्षेन्द्र रूपी सूर्य का अवसान होकर कोई ऐसा ही पूर्ण चंद्ररूपी मानव यहाँ के निर्मल नभ में उदित हो जाये तो? भूमि का कोना–कोना चमत्कृत हो जन–जन शांति का आस्वादन कर सके। (दूसरे ही क्षण विषाद पूर्ण मुद्रा में) पर नहीं, युद्ध की विनाशकारी घटाओं का विघटना सहसा संभव नहीं।... मुझे इस देश से, यहाँ की संस्कृति से बेहद प्यार है। मुझे यूनान में जन्म न देकर यहाँ भारत में उत्पन्न किया होता तो कितना सुन्दर होता। प्रकृति ने कहीं भूल कर दी है।

(अचानक फिलिप्स का प्रवेश)

फिलिप्स– उस भूल को मैं सुधारूँगा। तुम्हारी अभिलाषा भारत को निवास–स्थल बनाने की है। तुम्हारा स्वप्न मैं साकार करूँगा। देवपुत्र भारत विजय कर लौटेंगे तब इस महान् साम्राज्य का महाक्षत्रप[1] मुझे नियुक्त करेंगे ही। हम तुम दोनों इस देश के स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करेंगे। तुम यहाँ की साम्राज्ञी कहलाओगी और राजा होते हुये भी मैं तुम्हारा गुलाम।

हेलन– (व्यंग्य से) अपना सुन्दर भाषण एक ही साँस में कह गये फिलिप्स! अब और कुछ कहना शेष है अथवा नहीं?

---

1. वरिष्ट शासक

फिलिप्स– (हर्ष विभोर हो) कहना तो मुझे बहुत कुछ है पर तुम्हें देखकर सब कुछ भूल जाता हूँ। आँखें तुम्हारे सौंदर्य को पी लेना चाहती हैं। प्रत्यक्ष देखते हुये भी मन तृप्त नहीं हो पाता मेरी प्यारी हेलन!

हेलन– (क्रोध पूर्वक) अपनी मर्यादा के भीतर रहो फिलिप्स। सावधान! यदि तुमने एक भी अनुचित शब्द कहा तो।

फिलिप्स– तो क्या प्रिये!

हेलन– (क्रोधित हो) फिलिप्स!

फिलिप्स– क्रोध में भी तुम अत्यन्त सुन्दर और प्रिय लगती हो हेलन! तुम्हारे गुस्से पर भी मैं न्योछावर हूँ प्रियतमे!

हेलन– मैं बार–बार सावधान करती हूँ फिलिप्स! तुमसे बोलना तो दूर, मुझे तुम्हारी छाया से भी घृणा है।

फिलिप्स– (समझाते हुये) क्यों? क्या नहीं है मुझ में? विश्व विजेता देवपुत्र अलक्षेन्द्र का प्रेम पात्र होना सरल नहीं है हेलन! मेरी पत्नी बनने पर तुम्हें भी यह सौभाग्य प्राप्त होगा।

हेलन– मैं कहती हूँ तुम यहाँ से शीघ्रातिशीघ्र चले जाओ।

फिलिप्स– (हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींचकर आलिंगन–बद्ध करना चाहता है) तो इस यौवन का उपयोग कौन करेगा प्रिय?

हेलन– (जोर से चिल्लाती है) अरे नीच अधम!..... पिदर

फिलिप्स– चाहे जैसे अपशब्द कहो प्यारी! पर एक बार ही सही, स्पर्श का सुख तो लेने दो।

(चंद्रगुप्त दौड़कर पीछे से पकड़ लेता है। हेलन और फिलिप्स आश्चर्य चकित रह जाते हैं)।

चंद्रगुप्त– तू कौन है नरपिशाच! आश्रम के इस पवित्र स्थल में

एकांत में एकाकी नारी पर अत्याचार करने का तुझे दुस्साहस कैसे हुआ?

फिलिप्स– (अपने छुड़ाने का दुष्प्रयास करते हुए) छोड़ दो मुझे। असमय में तुम राहु बनकर कहाँ से टपक पड़े?

चंद्रगुप्त– (व्यंग्यात्मक हास्य पूर्वक) छोड़ दो मुझे। क्यों अपने बाहुओं को भी छुड़ाने की सामर्थ्य नहीं है तुम में? इसी बल पर अकड़ रहे हो कायर कहीं के। मूर्ख! तुम नारी मर्यादा भी नहीं जानते! तो जान लो कि तुम्हें यही सिखाने मुझे नियति ने भेजा है। (छोड़ देता है)

फिलिप्स– (हाथ मलते हुए) यह हमारी आपसी बात थी। दो के बीच में तीसरे का आ पड़ना असभ्यता है।

चंद्रगुप्त– चोरी और सीनाजोरी। नराधम! लज्जा नहीं आती एक निःशस्त्र अबला नारी का सतीत्व हरण करते। (छोड़ देता है) देवी! आप इस एकांत में अकेली क्यों विचरण कर रही हैं?

हेलन– वीरवर! आपने ठीक समय पर आकर मेरी इस दुष्ट से रक्षा की है। मैं किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूँ।

चंद्रगुप्त– धन्यवाद की आवश्यकता नहीं है देवी! यह तो प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। मुझे आप लोग विदेशी ज्ञात होते हैं अन्यथा हमारे आर्यावर्त में ऐसे निकृष्ट काण्ड देखने–सुनने में नहीं आते विशेषकर गुरुकुल के वातावरण में तो असंभव ही है।

हेलन– मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे देश के प्रति भी विनम्र हूँ। यहाँ की पवित्र रज माथे पर चढ़ाती हूँ।

चंद्रगुप्त– देवी! आपका परिचय?

हेलन– मैं देवपुत्र अलक्षेन्द्र सिकन्दर के सेनापति शैलाक्ष सेल्यूकस की पुत्री हूँ। पिता के साथ भ्रमणार्थ यहाँ तक्षशिला आई हूँ। यह फिलिप्स भी देवपुत्र का कुटुम्बी है। संध्या समय मैं और पिता यहीं सरिता के किनारे सांध्य

दृश्य अवलोकनार्थ आये थे कि रात्रि हो गई। अनायास किसी विशेष कार्यवश वे यहाँ से चले गये। इसी बीच यह फिलिप्स भी यहाँ आ धमका। मेरी रक्षा हेतु मानो देवी जोन ने आपको भेजा है।

चंद्रगुप्त- चलिये मैं आपके निवास स्थान तक पहुँचा दूँ। तनिक ठहरें मैं इससे निबट लूँ। (मुड़ कर फिलिप्स की ओर देखते हैं, वह भागता हुआ दिखता है) भाग गया। (व्यंग्य से मुस्कराते हैं) कायर पुरुष! डर गया। अब इससे द्वन्द -युद्ध क्या किया जाये? (सैल्यूकस का प्रवेश)

हेलन- पिदर, पिदर! अभी-अभी मुझे अकेला पाकर वह आपका फिलिप्स मुझसे अनुचित व्यवहार कर रहा था। अच्छा हुआ कि ये महोदय आ गये और मेरी रक्षा हो गई अन्यथा न जाने आज क्या होता?

शैलाक्ष- अच्छा! फिलिप्स? बधाई हो युवक! तुमने मेरी पुत्री की रक्षा कर बड़ा उपकार किया है। मैं तुम्हारा आजीवन उपकृत एवं चिरऋणी रहूँगा।

चंद्रगुप्त- यह आपका सौजन्य है पर मेरा ही नहीं प्रत्येक भारतीय का यही कर्तव्य है। **कर्तव्य प्रशंसा हेतु नहीं अपितु आंतरिक शान्ति हेतु किया जाता है।**

शैलाक्ष- यह भी तुम्हारी महानता है युवक! सुना था यहाँ की धरती सोना उगलती है पर मुझे अनुभव हुआ कि स्वर्ण से भी कहीं अधिक तुम जैसे संयमी वीर पुरुष भी उत्पन्न करती है। धन्य हैं, यहाँ के समस्त चेतन-अचेतन पदार्थ अनुपम श्लाघनीय हैं।

चंद्रगुप्त- कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?

शैलाक्ष- नहीं, अब तुम्हें और अधिक कष्ट नहीं दूँगा। यदि आपत्ति न हो तो अपना परिचय दो ताकि हम अपने उपकर्त्ता को जान सकें।

चंद्रगुप्त- आपत्ति क्या हो सकती है महोदय! निर्भय सिंह की संतानों को भला छिपाव-दुराव से क्या प्रयोजन?

चन्द्रगुप्त– मैं इसी विद्यापीठ तक्षशिला का ब्रह्मचारी स्नातक हूँ। मेरा नाम चन्द्रगुप्त है। (हेलन की ओर संकेत कर) इनकी चीख मुझे यहाँ तक खींच लाई।

शैलाक्ष– विशेष परिचय?

चंद्रगुप्त– तक्षशिला का विद्यार्थी होना हमारा गौरव है और यही परिचय भी। आप हमारे अतिथि हैं, आश्रम तक चलें, हमारे आचार्य देव से साक्षात्कार करें और हमारा आतिथ्य ग्रहण करें।

शैलाक्ष– तुमसे मिलकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई चंद्रगुप्त! चलो हम तुम्हारे निर्माता गुरुओं का दर्शन कर अपना सौभाग्य समझेंगे। साथ ही हम तुम्हें भी अपने शिविर में आतिथ्य ग्रहण करने के लिये आमंत्रित करते हैं। कभी अवकाश निकालकर अवश्य आना। हम यूनानी भी अपने अतिथि का स्वागत करना जानते हैं।

चंद्रगुप्त– अवश्यमेव, आचार्यश्री की आज्ञा लेकर आऊँगा।... चलिये आश्रम!

(तीनों का प्रस्थान)

(मार्ग में शैलाक्ष एवं हेलन अपने-अपने अश्वों की वल्गा थामे हैं। तीनों मंथरगति से आश्रम की ओर बढ़ रहे हैं।)

शैलाक्ष– चंद्रगुप्त! फिलिप्स हमारे देवपुत्र का निकटतम सम्बन्धी है। हो सकता है यहाँ से अपमानित होकर वह कोई उत्पात करे और तुम्हें परेशान करे।

चंद्रगुप्त– कायर में कितना साहस होता है हम भारतवासी खूब अच्छी तरह जानते हैं।

शैलाक्ष– (चिन्तित हो) मैं जानता हूँ तुम वीर हो फिर भी क्षुद्र वृत्ति का कायर जबकि उसे महान् शक्ति का आश्रय मिल जाये तो कुछ भी अनर्थ

करने में पीछे नहीं हटता।

चंद्रगुप्त– मैं हर समय प्रस्तुत हूँ महोदय! आप दुश्चिंता से निवृत्त हों।

शैलाक्ष– मैं तुम्हारे शौर्य साहस से प्रभावित हुआ हूँ चंद्रगुप्त! फिर भी सावधान रहने का अनुरोध स्वीकार करो क्योंकि कभी–कभी गीदड़ सिंह से भी अधिक भयानक हो उठते हैं।

चंद्रगुप्त– आप आश्वस्त हों, आपकी बात का ध्यान रखूँगा किन्तु नियतिचक्र अलख और अमिट भी है।

पटाक्षेप

[दृश्य-सातवाँ]

(तक्षशिला में चाणक्य अपनी शिष्य मंडली के साथ)

स्थान– विश्वविद्यालय का गुप्त मंत्रणा कक्ष

(प्रमुख शिष्य उपस्थित हैं। पार्वत्य प्रदेशों के राजकुमारों को जो कि यहीं अध्ययन रत हैं विशेष रूप से आचार्य चाणक्य ने मंत्रणागृह में आमंत्रित किया है)

चाणक्य– शिष्यो! अभी तक तुम शस्त्रास्त्र की शिक्षा पाते रहे हो। मुझे हर्ष है कि तुम सभी सर्व कलाओं में दक्ष हो चुके हो, अब तुम्हारे सन्मुख परीक्षा का कठिन अवसर उपस्थित है।

सब– (समवेत स्वर से) हम इस स्वर्ण अवसर का स्वागत करते हैं आचार्यश्री! परीक्षा हेतु सहर्ष प्रस्तुत हैं।

जयदेव– जिस घड़ी की हम प्रतीक्षा करते थे वह हमें अनायास ही प्राप्त हो गई है, विद्यार्थी के लिये इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है? आचार्यश्री आदेश दें।

चाणक्य– तुम्हारा उत्साह देखकर हमें अत्यंत प्रसन्नता हुई है, आशा है तुम सब अपने कार्य में सफलता प्राप्त करोगे। तुम सिंह की संतान हो, सिंह स्वतंत्र और शूरवीर होता है, अकेला ही वन में राज्य करता है, तुम सब ऐसे ही वीर बनो।

सब– पूज्य आचार्यश्री का आशीर्वाद पाकर हम कृतकृत्य हुए।

चाणक्य– हमारा आर्यावर्त सदा से स्वतंत्र रहा है किन्तु अब हमारी स्वतंत्रता को ग्रसने अलक्षेन्द्र सिकंदर राहु के समान चला आ रहा है।

सिंहरण– हाँ गुरुदेव! सुना है कि वह विपुल सेना लेकर विश्वविजय करने निकला है।

पुष्पभद्र– (गर्व पूर्वक) किन्तु हमारा देश इतना विशाल है कि वह डरकर स्वयं भाग जायेगा।

चाणक्य– तुम्हारा अनुमान गलत है पुष्पभद्र! वह भागने वालों में से नहीं है। उसने लघु एशिया, मध्य एशिया, सीरिया, ईराक आदि देशों को जीत लिया है। ईरान में अखमनी वंश का विशाल शक्तिशाली साम्राज्य भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, वहाँ सिकन्दर की विजय पताका फहरा रही है।

पुण्डरीक– (साश्चर्य) सत्य ही अखमनीवंश भू-लुण्ठित हो गया?

चाणक्य– विश्वस्त सूत्रों से ऐसा ही ज्ञात हुआ है कि अलक्षेन्द्र की महत्वाकांक्षा बहुत बढ़ी-चढ़ी है, वह छोटे से मकदूनिया राज्य के नायक फिलिप का पुत्र है। बचपन से ही विलक्षण बुद्धि वाला था परन्तु अब सब उसे देवपुत्र कहने लगे हैं।

(चंद्रगुप्त का प्रवेश)

चंद्रगुप्त– (जोश के साथ) वह देवपुत्र कहलाये अथवा साक्षात् ईश्वर, हम उसके ईश्वरत्व को चुनौती देंगे, उसकी अभिलाषाओं को कुचल देंगे। यह देश भारतवर्ष है, यहाँ के निवासी स्वातन्त्र्य प्रिय हैं, भारतीयों की

स्वतंत्रता का अपहरण करना खेल नहीं, लोहे के चने चबाना है, जो चबाने पर बिना चबे ही दाँतों को तोड़कर मुख के साथ-साथ नयनों से भी रक्तधार बहा देते हैं।

जयदेव- कुमार चंद्रगुप्त का कथन यथार्थ है गुरुदेव! हम कंधे से कंधा मिलाकर लड़ेंगे।

चाणक्य- अभी तक तुम कहाँ थे चंद्रगुप्त?

चंद्रगुप्त- आचार्यश्री! क्षमा करें। मुझे आने में विलंब हुआ।

चाणक्य- यह हमारे प्रश्न का उत्तर तो नहीं हुआ।

चंद्रगुप्त- आचार्यश्री! मैं विषम परिस्थितियों से विवश था। (चारों ओर सतर्क हो देखते हैं)

चाणक्य- निःशंक होकर कहो सौम्य!

चंद्रगुप्त- गुरुवर! मुझे विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि नरेश आंभिराज सिकंदर से लोहा नहीं लेना चाहते, वह कायर है।

चाणक्य- ओह! तुम इस रहस्योद्घाटन में लगे थे। तुम्हारी सूचना के पूर्व हम यही अनुमान लगा रहे थे, तुमने उसकी पुष्टि कर संशय को नष्ट कर दिया। हम आंभिराज के स्वभाव से परिचित हैं।

चंद्रगुप्त- (क्रोधावेश को संयत कर) अब हमें आदेश दें प्रभु! कि हम उसके विरोध में अपने बल का उपयोग कर जीवन को सार्थक बनायें।

चाणक्य- (समझाते हुए स्नेह पूर्वक) शीघ्रता न करो चंद्रगुप्त! इस समय बलप्रयोग निरी मूर्खता होगी, हम अभी संख्या में बस इतने ही तो हैं, अभी से शत्रुता मोल लेना उचित नहीं, समय की प्रतीक्षा करनी होगी।

चन्द्रगुप्त- प्रतीक्षा का परिणाम भयानक होगा गुरुदेव!

चाणक्य- बलप्रयोग उससे भी भयंकर होगा चन्द्रगुप्त! नादानी से क्षति हाथ लगेगी, धैर्य पूर्वक सोच समझ कर एक-एक पग आगे बढ़ाना

होगा।

जयदेव– आचार्यश्री! यद्यपि हम सब वीर हैं तथापि अन्य सभी बातों का अभाव है जो कि एक रणकुशल योद्धा के लिये होना अनिवार्य है।

चाणक्य– क्या तुम उन अभावों को बतला सकते हो?

जयदेव– अवश्य गुरुदेव! यह तो निश्चित हो गया कि आंभिराज में वह शौर्य नहीं कि वह सिकंदर का सामना कर सके। वह अलक्षेंद्र का स्वागत लड़कर नहीं, हँसकर करेगा। हमें कोई प्रमुख व्यक्ति चाहिए।

चाणक्य– हम सब जिसे योग्य समझेंगे उसी को मुखिया मान लें तो हमारा लक्ष्य सिद्ध हो सकता है।

पुष्पभद्र– आपका सुझाव सुन्दर है आचार्यवर! पर अन्य समस्याओं का समाधान कैसे हो?

सिंहरण– पुष्पभद्र का कथन उचित है गुरुदेव! यदि हम किसी को राजा मान लें तो उसके लिये हमें सेना चाहिये। सेना के भरण-पोषण के अर्थ आर्थिक व्यवस्था अनिवार्य है।

चाणक्य– तुम्हारे विकल्प उचित हैं शिष्यो! निहत्थे निर्धन होकर रणक्षेत्र में नहीं कूदा जाता। चंद व्यक्तियों से शासनतंत्र नहीं चल सकता। हमने दोनों उपाय कर लिये हैं। तुम सबको शिक्षा देने के शेष अवकाश में हम चुप नहीं बैठे हैं।

जयदेव– आचार्यश्री! क्या हम सब उन उपायों से अवगत होने के पात्र हैं?

चाणक्य– अवश्य, अवश्य। हमने आदिवासियों की बहुत बड़ी सेना का संगठन किया है जो कि समय पर काम आयेगी।

सिंहरण– सेना का संगठन!

पुष्पभद्र– तब हम अकेले नहीं हैं।

चाणक्य– बिल्कुल नहीं। सैकड़ों सहस्रों की संख्या में तुम्हारे साथी अनेकों वीर हैं किन्तु अभी हम उनसे तुरन्त ही संपर्क नहीं करेंगे। (दृढ़ता से) अन्य योजनाएँ समय आने पर ही जान सकोगे जयदेव! संप्रति इतना ही समझ लो कि हमें समस्त लघु राज्यों का संगठन कर एक अखंड राज्य की स्थापना करनी है। राष्ट्र को आचूल परिवर्तन कर सुव्यवस्थित शक्तिशाली बनाना है ताकि आर्यखंड गौरवशाली होकर दिग्–दिगंत में अपनी कीर्ति प्रसारित कर सके।

सिहंरण– आपका स्वप्न अत्यधिक उत्कृष्ट है गुरुदेव! साकार होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

चाणक्य– हाँ, हमें भगीरथ प्रयत्न करने होंगे आयुष्मान्! समय आने पर अकेला चना भी भाड़ फोड़ सकता है।

चन्द्रगुप्त– केवल लगन की आवश्यकता होती है। हमें प्रथम लघु राज्यों के पारस्परिक वैमनस्यों को नष्ट कर उन्हें संगठित करना होगा। एक राज्य की पुनः नये सिरे से नींव रखनी होगी। हमें ही अपनी सबल भुजाओं से उसकी एक–एक ईंट चुननी होगी सिंहरण।

जयदेव– हम प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक हम अपने राष्ट्र से विदेशी आक्रांताओं को खदेड़ नहीं देंगे तब तक चैन नहीं लेंगे।

सब– (समवेत स्वर में) हम सभी प्रतिज्ञाबद्ध हैं।

चाणक्य– (उत्साहित हो) तुम्हारा उत्साह देखकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता है। हम तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि तुम अपने–अपने उत्तरदायित्व का योग्यता पूर्वक निर्वाह कर सकोगे। हमारा आशीर्वाद है कि तुम कृत संकल्प हो पूर्ण विजयी बनो।

चन्द्रगुप्त– आपका आशीर्वाद हमारा संबल रहेगा। आप हमें आदेश दें ताकि हम सब आपके पूर्व नियोजित पथ पर अग्रसर हों।

चाणक्य– इसलिये सबको एकत्रित किया है। (आदेशात्मक स्वर से) चंद्रगुप्त!

चंद्रगुप्त– जो आज्ञा!

चाणक्य– अलक्षेन्द्र संभवतः दो अहोरात्रि में तक्षशिला में प्रवेश करेगा। तुम्हें हम आदेश देते हैं कि उसके शिविर में जाकर यूनानी सैनिक पद्धति सीखो ताकि भविष्य में हमारे काम आ सके। साथ ही सेना का अनुमान लगाना न भूलना।

चंद्रगुप्त– आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महामन्!

जयदेव– आचार्यश्री सेना का अनुमान लगाना तो समझ में आया पर उसकी सैनिक पद्धति कैसे सीखी जायेगी? क्योंकि रंग–रूप में, पूर्व–पश्चिम में अत्यन्त भिन्नता है। कुमार चंद्रगुप्त सीखना तो क्या उल्टे शत्रु के शिकंजे में फँसकर बेमौत मारे जायेंगे।

चाणक्य– यह असंभव है जयदेव! चंद्रगुप्त का जीवन बड़ा लम्बा है। अभी उसे महान् कार्यों की लम्बी अनुक्रमणिका विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करनी है। उसे मारने वाला कहीं उत्पन्न नहीं हुआ।

जयदेव– गुरुदेव! फिर भी कार्य कठिन है। वहाँ पर चंद्रगुप्त को भेजना साक्षात् काल के मुख में भेजने के समान है। कृपया आप मुझे आदेश दें, यह कार्य मैं सम्पन्न करूँगा।

चंद्रगुप्त– (निर्भय हो) जयदेव! आचार्यश्री के आदेश से भ्रमित मत

बनो। हमें उनके इंगित पर चलना ही श्रेयस्कर है। फल की ओर लक्ष्य अनुचित है।

जयदेव– (विनीतभाव से) क्षमा करें प्रभु! धृष्टता हुई। स्नेह कभी–कभी पथ से स्खलित कर देता है।

चाणक्य– (मुस्कराकर) युगल मित्रों की जोड़ी अमर रहे।

चंद्रगुप्त– मैं चलता हूँ गुरुदेव! (चरण स्पर्श करना)

चाणक्य– चिरंजीव रहो वत्स! तुम्हारा पथ निष्कंटक हो।

(प्रस्थान)

पटाक्षेप

[दृश्य–आठवाँ]

(चंद्रगुप्त शैलाक्ष के शिविर में अतिथि बनकर आया है। इस समय वह मैदान में एक वृक्ष की छाया में बैठा है। संध्या समय है।)

चन्द्रगुप्त– (स्वगत) आज मुझे यूनानी पद्धति से पूरी सैनिक शिक्षा दे दी। अलक्षेन्द्र को भी मेरा अभी तक विशेष परिचय नहीं मिला। शिविर के समस्त कर्मचारी मुझे केवल शैलाक्ष का सामान्य अतिथि समझते हैं। आचार्यश्री के आदेशानुसार सभी कार्य समाप्त हो गये, अब शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से चल देना उपयुक्त है ताकि गुरुदेव से मिलकर भविष्य की रूपरेखा बनाई जा सके। कल शैलाक्ष से धन्यवाद पूर्वक विदा ले लेनी चाहिये।

(हेलन का प्रवेश, वह चंद्रगुप्त को ढूँढ रही है।)

हेलन– अहा! कैसा सुन्दर दृश्य है। प्रतीची दिशा माँग में सिन्दूर भरे कौसुम्बिका चीनांशुक पहिने वधूटी सी प्रतीत हो रही है। (सहसा चंद्रगुप्त को देख) मैं कब से तुम्हें ढूँढ़ रही हूँ अतिथि और तुम यहाँ बैठे हो?

चंद्रगुप्त– कल मुझे जाना है हेलन! (मुस्कराते हुये) अतः आज से

अकेले रहने का अभ्यास कर रहा हूँ।

हेलन- (दुखित हो) सच! कल चले जाओगे? रहो न कुछ दिन और। ऐसी भी क्या जल्दी है?

चंद्रगुप्त- नहीं रह सकता हेलन! बस इतना ही अवकाश मिला था। नहीं पहुँचूँगा तो अध्ययन की क्षति होगी और गुरु आज्ञा की अवहेलना।

हेलन- परन्तु मुझे अच्छा नहीं लगेगा।

चंद्रगुप्त- एक दिन तो जाना ही होगा हेलन! हमारे देश में कहावत है 'पाहुन आये न घर बसे, गये न ऊजड़ होय'। अच्छे-बुरे का प्रश्न ही नहीं उठता।

हेलन- पुरुष सचमुच बड़े निर्मम होते हैं।

चंद्रगुप्त- ये दोषारोपण मिथ्या हैं हेलन! मैं यहाँ से चला जाऊँगा पर तुम्हारा आतिथ्य भूल न सकूँगा। तुम्हारी सुधि विवश हो आती ही रहेगी।

हेलन- (उदास हो) मुझे तो बहुत सूना-सूना लगेगा चंद्रगुप्त। मुझे तुम्हारे देश से प्रेम है। तुम्हारे रहने से ऐसा लगता है जैसे सारा आर्यावर्त सिमट कर तुममें ही साकार हो गया हो इसलिये मैंने तुम्हारे देश की भाषा, साहित्य, धर्म आदि का भी तुमसे अध्ययन किया है।

चन्द्रगुप्त- हेलन! तुमने यूनानी होते हुये भी भारतीय हृदय पाया है, अद्‌भुत है तुम्हारी रुचि।

हेलन- राजकुमार चंद्रगुप्त! मुझे यहाँ की संस्कृति अत्यन्त प्रिय है। जब मैं यहाँ की बातें सुनती हूँ तो हर्ष विभोर हो उठती हूँ। ऐसा प्रतीत होता है मानों यह जादू का देश है। इसमें सब कार्य अप्रतिहत गति से स्वचलित होते रहते हैं। मधुर-मधुर निस्पंद शांति का मन्द-मन्द प्रवाह बह रहा है। सब

अलौकिक सम्मोहक शक्ति की छाया से सम्मोहित हैं।

चंद्रगुप्त– राजकन्या....!

हेलन– (बात काटकर) मैं कितनी बार तुमसे अनुरोध कर चुकी हूँ अतिथि कि मुझसे राजकन्या न कहा करें। मैं तुम्हारे मुख से केवल हेलन ही सुनना चाहती हूँ। मुझे यही सम्बोधन प्रिय है।

चंद्रगुप्त– राजकन्या कहने से तुम्हारी क्या क्षति होती है?

हेलन– बहुत बड़ी! इसमें स्नेह का पुट नहीं अपितु परायेपन का आभास होता है जैसे कोई मुझसे आत्मीयता छीन रहा हो, मैं तुम्हारी पुजारिन हूँ अतिथि।

चंद्रगुप्त– (मुस्कराते हुये) इससे लाभ?

हेलन– भक्त देवता का उपासक होता है, लाभ–हानि पर विचारने का उसके पास अवकाश कहाँ? ना ही उसे इससे कुछ प्रयोजन है।

चंद्रगुप्त– विवेक की आँखों से सोच कर देखो हेलन! चार दिन की चाँदनी में लीन हो जाने को बुद्धिमानी तो नहीं कहा जा सकता?

हेलन– क्यों? जीवन में कभी दैव दुर्लभ अमृत की बूँदें प्राप्त होने पर केवल इसीलिए उसका आस्वादन न किया जाये कि वे पुनः प्राप्त न होंगीं तो इससे बढ़कर और कौन–सी मूर्खता होगी? अमृत की एक बूँद विष भरे कुम्भ में लक्ष–लक्ष गुनी उत्कृष्ट एवं तृप्तिदायक होती है।

चंद्रगुप्त– यदि भ्रम से तुम विष को ही अमृत समझ बैठी हो तो?

हेलन– (दृढ़ता से) नहीं, आर्यावर्त जैसे पवित्र देश से मैं पूर्णतः इस ओर से आश्वस्त हूँ राजकुमार! मैं यहाँ रम जाना चाहती हूँ।

चंद्रगुप्त– तुम्हारी विचारधारा सुन्दर है किन्तु भारतीय और यूनानी

संस्कृति अत्यन्त भिन्न है, दोनों का मिलन असम्भव है और जो कार्य असंभव है, बुद्धिमान उसका विचार भी नहीं करते।

हेलन– (उदास किंतु दृढ़ स्वर से) राजकुमार चंद्रगुप्त! मैं एक बात से आपको अवगत करा देना चाहती हूँ कि देवपुत्र अलेक्जेंडर ने असंभव को संभव कर दिखाया है। एक छोटे से राज्य के अधिपति होकर आज वे विश्व विजेता नाम सार्थक कर रहे हैं।

चंद्रगुप्त– परन्तु मैं तुम्हारे अलक्षेन्द्र का स्वप्न धूमिल कर दूँगा हेलन! जब तक जीवित हूँ तब तक उत्तरापथ की वसुन्धरा उसके पदक्रांत से आघात न पा सकेगी।

हेलन– (हर्ष से पुलकित हो) सच! मैं आपका कोटि-कोटि अभिनन्दन करती हूँ राजकुमार! आप अपनी संस्कृति व देश के एकमात्र रक्षक होंगे। आप मेरे स्नेह के केन्द्र तो थे ही श्रद्धास्पद भी हो गये। मैं विनम्र आपको नमन करती हूँ।

चंद्रगुप्त– तब तुम अपने रत्नेश अलक्षेन्द्र के प्रति विद्रोहिणी कहलाईं हेलन।

हेलन– नहीं, आपका आरोप मुझे स्वीकार नहीं। (किंचित् क्रोधित हो) बल्कि मानवों की नृशंस हत्या तथा मानवीय, आध्यात्मिक संस्कृति नष्ट करने वाले से मेरा विरोध है। आप देशभक्त हैं। देश रक्षा के विचारों का प्रवाह आपकी रग-रग में प्रवाहित हो रहा है, अतः आप मेरे लिये आदरणीय भी हैं।

चंद्रगुप्त– तुम्हारे उदार विचार सम्मान के पात्र हैं हेलन! किन्तु....

हेलन– किन्तु क्या अतिथि? किस बात की चिंता है?

चंद्रगुप्त– मुझे तुम्हारी सरलता पर करुणा आती है हेलन! तुम्हारे अंतर में बचपन का भोलापन निवास करता है। जीवन के कंटकाकीर्ण पथ

की बाधाओं से तुम नितांत अनभिज्ञ हो।

हेलन– विघ्न बाधाओं को पार करना दुःसाध्य है, असाध्य तो नहीं।

चंद्रगुप्त– ये पूर्वीय पश्चिमीय दो संस्कृतियों का प्रश्न है हेलन। तुम समझ नहीं पा रही हो।

हेलन– फिर भी दोनों संस्कृतियों में मानवता को आश्रय है राजकुमार! मैं समझती हूँ कि संस्कृतियों में मत भिन्नता होते हुये भी कलह को स्थान नहीं है।

चंद्रगुप्त– तुम्हारे मत स्वागत योग्य हैं हेलन! परंतु विचार करो क्या एक ही सरिता के दोनों तट कभी मिल पाये हैं?

हेलन– आपका कथन उचित है। तट न मिलें परन्तु दोनों के मध्य सेतु तो बाँधा जा सकता है और इस प्रकार हमारे अभीष्ट की पूर्ति हो जाती है।

चंद्रगुप्त– रूढ़ियों का भयानक विस्फोट उसे ध्वस्त भी कर सकता है।

हेलन– हानि क्या है? सेतु टूट जायेगा और उस पर चलने वाले पथिक जन आपस में घुल मिल जायेंगे। जो निर्बल हैं अस्तित्व खो देंगे जिनकी भुजायें सबल हैं वे अपने पुरुषार्थ से पार होंगे और ज्ञात है अतिथि! बलवान का कोई विरोधी नहीं होता, उसके सामने सिर उठाने का साहस किसी में नहीं है।

चन्द्रगुप्त– तुम यूनानी नारी हो हेलन! क्या कर सकोगी?

हेलन– यदि आर्यावर्त की वीरांगना न बन सकी तो यहाँ की संस्कृति में आत्मसात् हो सकने में कौन सी बाधा है? नारी का प्रबल पवित्र स्नेह उसकी उदारता, अनुपम त्याग उसके ये प्रकृति प्रदत्त जन्मसिद्ध नैसर्गिक गुण भी छीनने में कोई समर्थ है?

चंद्रगुप्त– तुम्हारा उत्कट प्रेम, तर्क अकाट्य हैं। सचमुच नारी के धीरोदात्त स्वभाव पर मुझ जैसे सहस्रों चंद्रगुप्त न्योछावर हैं हेलन! तुम अवश्य ही अपने लक्ष्य बिंदु तक पहुँच सकोगी।

हेलन– आपकी शुभ कामनाओं के लिये धन्यवाद देती हूँ और उसी स्वर्ण अवसर की प्रतीक्षा करूँगी।

(फिलिप्स का प्रवेश)

फिलिप्स– किस स्वर्ण अवसर की प्रतीक्षा में हो हेलन?

हेलन– (क्रोधित हो) तुम छाया की तरह मेरे पीछे क्यों लगे रहते हो?

फिलिप्स– क्योंकि मैं अपने और तुम्हारे बीच किसी दूसरे प्रेमी को सहन नहीं कर सकता। (चंद्रगुप्त की ओर क्रूर दृष्टि से देखता है)

हेलन– तुम बच नहीं सकते फिलिप्स! तुम्हें हमारे अतिथि के अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। अपनी सीमा से बाहर जाने का असफल प्रयास मत करो।

फिलिप्स– सीमा से बाहर तुम जा रही हो हेलन! जबकि मैं तुम्हारे पिता से तुम्हें माँग चुका हूँ।

हेलन– किंतु मेरे पिता ने मुझे तुम्हारे हाथ में सौंपने का वचन नहीं दिया।

फिलिप्स– यह प्रश्न विचारार्थ प्रस्तुत है।

हेलन– तो कान खोल कर सुन लो फिलिप्स! मैं तुम्हें स्पष्ट बता देना चाहती हूँ कि मेरा तुम्हारे साथ ब्याह नहीं होगा, मैं स्वतन्त्र हूँ। मैं तुम्हारी कभी नहीं हो सकती, कभी नहीं हो सकती। मेरे तुम्हारे विचार सर्वथा भिन्न हैं।

फिलिप्स– (क्रोधान्ध हो) चुप रहो हेलन! मैं अपने और तुम्हारे मध्य आने वाले को समाप्त कर दूँगा। तुम्हें अपना बनाकर ही रहूँगा।

(चंद्रगुप्त पर तलवार से वार करता है। चंद्रगुप्त असावधान होते हुये भी अपने कौशल से वार बचा जाता है पश्चात् पीछे हट कर म्यान से तलवार निकाल लेता है। दोनों में युद्ध होने लगता है। दोनों में कुछ समय तलवारें चलती हैं। चंद्रगुप्त फिलिप्स की तलवार के दो टुकड़े कर देता है और स्वयं रुक जाता है)

चंद्रगुप्त– क्या इसी बल कौशल पर लड़ रहा था। दूसरा खड्ग हाथ में ले। हम भारतीय निहत्थों पर शस्त्र नहीं चलाते।

(शैलाक्ष का प्रवेश)

शैलाक्ष– (दूर से) ये क्या हो रहा है? खड्ग के टुकड़े कैसे पड़े हैं?

चंद्रगुप्त– (शांत भाव से) यूँ ही, फिलिप्स मुझसे द्वन्द्व युद्ध करना चाहता था।

हेलन– (बीच ही में) द्वन्द्व युद्ध नहीं। फिलिप्स अतिथि पर धोखे से वार कर उन्हें मार डालना चाहता था किन्तु ये अपने कौशल से वार को बचा गये पुनः फिलिप्स की तलवार दो टूक कर दी, अब राजकुमार चंद्रगुप्त, फिलिप्स को द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकार रहे हैं।

शैलाक्ष– (फिलिप्स से) चंद्रगुप्त के हनन का कारण?

फिलिप्स– कारण स्पष्ट है सेनाध्यक्ष! हेलन मेरी है और मेरी रहेगी।

शैलाक्ष– (क्रोध में) किस अधिकार से अपनी कह रहे हो फिलिप्स! हेलन मेरी पुत्री है, उसके भविष्य के निर्माता तुम कौन?

फिलिप्स– मैं कौन हूँ? यह समय बतलायेगा हेलन किसकी होगी? इसका निर्णय मेरी तलवार....

(तलवार कहते हुये उसकी दृष्टि तलवार के टुकड़ों पर जाती है

और वह चुप होकर लंबे-लंबे डग भरता हुआ जाने लगता है)

शैलाक्ष- (मुस्कराते हुये) बोलते-बोलते चुप क्यों हो गये फिलिप्स! क्या यही लोहे के टुकड़े निर्णय करेंगे?

चंद्रगुप्त- (व्यंग्य पूर्वक) फिलिप्स! द्वंद्व युद्ध किये बिना ही कैसे लौट पड़े? यों निमंत्रण देकर दूसरों को कोरा नहीं रखा जाता। खैर जाओ, अब आना तो शस्त्रास्त्रों से खूब लैस होकर ताकि हम दोनों को मिलने में सुविधा रहे।

(फिलिप्स क्रोधित हो एक बार लौटकर देखता है और फिर तीव्र गति से चला जाता है)

शैलाक्ष- आज लक्षण शुभ नहीं दिख रहे। फिलिप्स उस चोट खाये सर्प की तरह है जो चोरी छिपे अवश्य अपने विष दाँतों को गड़ाये बिना न रहेगा।

चंद्रगुप्त- गड़ाने के पूर्व ही मैं उसके विष दंत उखाड़ दूँगा सेनाध्यक्ष।

शैलाक्ष- मुझे विश्वास है कि तुम उसे अवश्य ही किये का फल चखा सकोगे।

हेलन- ये बातें हम यहीं भुलाकर समाप्त कर दें, वातावरण को परिवर्तित कर आनन्द में मुखरित कर लें।

शैलाक्ष- चलो! अपने डेरे पर चला जाये।

(तीनों प्रस्थान)

पटाक्षेप

[दृश्य-नौवाँ]

समय- प्रातःकाल का प्रथम प्रहर

शैलाक्ष का शिविर

(शिविर में चंद्रगुप्त और हेलन बैठे हैं। हेलन भारतीय गीत गा रही है। उसका कंठ अत्यन्त मधुर एवं सुरीला है)

हेलन अपनी वीणा पर गा रही है-

अहा! यह कैसा रम्य प्रदेश॥
हिम किरीट सम शुभ्र हिमांचल।
चरणों में सागर जल चंचल॥
खेल रहा है वक्ष स्थल पर।
लहर लहर सरिताओं का जल॥
सुन्दर सा मन भावन पावन, देता शुभ सन्देश!
अहा! यह कैसा रम्य प्रदेश॥
खेत यहाँ कैसे लहराते।
कृषकगण फूले न समाते॥
ढोल मंजीरे बज उठते जब।
झूम-झूम सब मिलकर गाते॥
सुख-वैभव धन-धान्य सुपूरित चिन्ता दुख नहीं लेश!
अहा! यह कैसा रम्य प्रदेश॥
यहाँ ज्ञान मंदाकिनि बहती।
जन-जन को संबोधन करती॥
ईर्ष्या-द्वेष कलह को तज दो।
धारण करो सीख यह महती॥
इस धरती से कभी न बिछड़ूँ, वर दो यह देवेश!
अहा! यह कैसा रम्य प्रदेश॥

चंद्रगुप्त- हेलन! तुम्हारा कंठ कितना सुरीला है। सचमुच तुमने सतत् अभ्यास से हमारे देश का भी मधुर संगीत सीख लिया है। तुम्हारी लगन व बुद्धि अति तीक्ष्ण है।

हेलन- मेरी नहीं अतिथि! शिक्षण देने वाले की निपुणता है जिन्होंने अल्प समय में ही परिश्रम करके मुझे सिखाने का कष्ट किया। मैं आजीवन

आपकी आभारी हूँ अतिथि।

चन्द्रगुप्त– हेलन....!

(चार सैनिकों का प्रवेश)

हेलन– (क्रोध में) सैनिको! तुमने बिना मेरी अनुमति के मेरे कक्ष में प्रवेश करने की धृष्टता क्यों की?

पहला सैनिक– (विनम्र हो) क्षमा करें राजकन्या! सम्राट की आज्ञा है।

हेलन– (कुछ शांत हो) सम्राट की आज्ञा है? (क्षणेक विचारकर) बोलो! क्या चाहते हो?

पहला सैनिक– आप विश्राम करें राजकन्या! हमें केवल इनसे (चन्द्रगुप्त की ओर संकेत कर) प्रयोजन है। (अन्य सैनिकों से) साथियो!...

(अन्य सैनिक तत्काल चन्द्रगुप्त को बंदी बनाने के लिए बढ़ते हैं)

चन्द्रगुप्त– सावधान! अगर एक भी पग आगे बढ़ाया तो सबको काट कर फेंक दूँगा। मुझे बन्दी बनाने का दुष्प्रयास मत करना। (तलवार चमका कर खड़ा हो जाता है। उसका रौद्र रूप देखकर सैनिक सकपका जाते हैं)।

पहला सैनिक– आप रुष्ट न हों अतिथि! सम्राट ने आपको इसी क्षण बुलाया है। हमें यही आदेश है। यद्यपि यह आतिथ्य के विरुद्ध है तथापि हम सम्राट के आदेश पालन के लिए बाध्य हैं।

चन्द्रगुप्त– जाओ! अपने सम्राट से कह दो कि अतिथि बन्दी बनकर नहीं आ सकता।

हेलन– सैनिको ! पिदर कहाँ हैं ? पहले उन्हें बुलाओ, इसके पश्चात् ही अतिथि को यहाँ से ले जा सकोगे।

पहला सैनिक– महासेनाध्यक्ष सम्राट के दरबार में उपस्थित हैं। उनका यहाँ आना असंभव है। (चन्द्रगुप्त से) आप हमारे जाने-माने अतिथि हैं। आपके पराक्रम से हम पूर्णतः परिचित हैं किन्तु हम सम्राट के सेवक हैं, उनकी आज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है। हम आपको ससम्मान ले चलेंगे।

हेलन– (आँखों में आँसू भरे रुद्ध कण्ठ से) अतिथि! तुम मत जाओ। मेरा जी घबरा रहा है। मत जाओ अतिथि! मत जाओ।

चन्द्रगुप्त– मुझे जाना ही होगा हेलन! सिंह चुनौती को कभी अस्वीकार नहीं करता।

हेलन– तब ठहरो सैनिक! मैं भी चलूँगी। (अंतर्कक्ष में वस्त्र बदलने जाती है)

चन्द्रगुप्त– हेलन! हम सब चलते हैं, विलंब उचित नहीं, तुम आ जाना।

हेलन– सैनिकों से भी अधिक शीघ्रता है तुम्हें अतिथि!... अच्छा, चलो मैं अभी आई।

पटाक्षेप

[दृश्य-दसवाँ]

(चन्द्रगुप्त सहित सैनिकों का प्रस्थान)

(विशाल प्रांगण में अलक्षेन्द्र की सभा भरी हुई है। अलक्षेन्द्र सिंहासन पर बैठे हैं। पास ही पीठिका पर महासेनाध्यक्ष शैलाक्ष विराजमान हैं। एक ओर सेनापति फिलिप्स है। अन्य दरबारी सामंतगण बैठे हैं। चारों

सैनिक चन्द्रगुप्त को लेकर पहुँचते हैं। हेलन भी तत्काल आकर अपने नियत स्थान पर बैठ जाती है)

अलक्षेन्द्र- (सरोष) सैनिको! चन्द्रगुप्त को बन्दी क्यों नहीं बनाया?

चन्द्रगुप्त- (उपहास के स्वर में) यह असम्भव है सम्राट! चन्द्रगुप्त को जीवित कैद नहीं किया जा सकता। इसे बालकों का खेल मत समझिये।

फिलिप्स- (खड़े होकर जोश के साथ) अच्छा! तुम्हारा यह दुस्साहस!... चन्द्रगुप्त! सम्राट की मर्यादा रखो।

चन्द्रगुप्त- मर्यादा तुम रखो फिलिप्स! सम्राट तुम्हारे हैं, मेरे लिये एक आक्रांता से अधिक और कुछ नहीं।

अलक्षेन्द्र- (आवेश में) उद्धत युवक! तुम पद की मर्यादा न रखो पर उम्र का तो तुम्हें ध्यान रखना ही चाहिये, क्या तुम्हारे देश में विनय शालीनता नहीं है।

चंद्रगुप्त- हमारे देश में विनय बालकों को घुट्टी में घोल कर पिलाई जाती है अथवा यों कहिये कि हमारे संस्कार विनय पर ही आधारित हैं किन्तु आक्रांता की विनय कैसी? युद्ध के अतिरिक्त उसके स्वागत का दूसरा कोई विकल्प शेष नहीं।

अलक्षेन्द्र- (प्रसन्न मुद्रा में) बधाई है युवक! बधाई है! तुम्हारा उत्तर प्रशंसनीय है। एक प्रश्न और है, आशा है तुम सच बताओगे कि आक्रांता के शिविर में आने का क्या प्रयोजन है?

चंद्रगुप्त- भारतवासी असत्य संभाषण करना नहीं जानते सम्राट! आपके महासेनाध्यक्ष शैलाक्ष का मैं अतिथि हूँ। पूर्व आमंत्रण पर आतिथ्य हेतु यहाँ आया हूँ। आतिथ्य के साथ ही मुझे यूनानी पद्धति से सैनिक प्रशिक्षण सीखने का तथा देखने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ।

फिलिप्स– मैंने ठीक ही सूचना दी थी सम्राट! मुझे संदेह था कि अवश्य ही यह कोई गुप्त भेदिया है। महासेनाध्यक्ष का व्यवहार भी आपके प्रति उचित नहीं जान पड़ता।

शैलाक्ष– (क्रोधावेश में) विवेक से काम लो फिलिप्स! मैं अपनी स्वामी–भक्ति पर लांछन सहन नहीं कर सकता।

फिलिप्स– पद की ओट में आप यह कलंक छिपा नहीं सकेंगे महासेनाध्यक्ष!

चंद्रगुप्त– (गम्भीर हो) महासेनाध्यक्ष सचमुच ही निष्कलंक हैं। कलंकी तुम हो फिलिप्स! तुम्हारा चारित्रिक पतन ही हमारे परिचय का साधन बना।

फिलिप्स– चुप रहो चंद्रगुप्त! चोरी और सीनाजोरी।

चंद्रगुप्त– (व्यंग्य से मुस्कराते हुये) ओह! मालूम पड़ता है 'मेंढ़की को भी जुकाम हो गया है'। आज किस बल के संबल पर अकड़ रहे हो फिलिप्स! भूल गये दो–दो बार मैंने तुम्हें क्षमा किया है और तुम भीगी बिल्ली की नाईं सिर झुका कर चले गये हो। द्वंद्व युद्ध के नाम पर तुम सदैव भागे हो। भारतीय वीर बालक वृद्ध, नारी एवं युद्ध से भागे हुये कायर पर कभी वार नहीं करते, यही कारण है कि अब तक तुम सकुशल हो।

फिलिप्स– द्वन्द्व युद्ध! यह तो कभी भी किया जा सकता है।

चंद्रगुप्त– तब मैं प्रस्तुत हूँ। निकालो अपनी तलवार।

अलक्षेन्द्र– द्वंद्व युद्ध की अनुमति मैं नहीं देता चंद्रगुप्त! तुम अपराधी हो।

चंद्रगुप्त– (साश्चर्य) मैं अपराधी! किस अपराध पर मुझे सैनिक घेरे में रखा गया है। मैंने कोई अपराध नहीं किया।

अलक्षेन्द्र– हमारे शिविर में आकर गुप्त रहस्यों का लेना अपराध

नहीं है?

चंद्रगुप्त– अवश्य है सम्राट! किन्तु मैंने इस निकृष्ट कार्य का विचार भी नहीं किया। मैं विद्यार्थी हूँ। मैंने केवल आपकी युद्धकला ही देखी सीखी है। मन में कुतूहल जागा कि जो एशिया के विशाल राज्यों को पददलित करता हुआ अनेक नदी हिमशिखरों को लाँघकर तक्षशिला तक आ पहुँचा है, जिसके नाम से आर्यों का महावीर्य भी विचलित हो उठा है, जिसकी भृकुटी देखकर महादेश उसके चरणों में लेटने लगे हों, उस पराक्रमी को देखने की आकांक्षा प्रबल हो उठी। मैं मैसिडन नरेश को देखने का लोभ संवरण न कर सका।

अलक्षेन्द्र– (मुख पर किंचित् मुस्कराहट आती है पर तुरन्त गम्भीर हो जाते हैं) नागजाल में फँसाने का प्रयास मत करो युवक! तुम यहाँ बन्दी हो, अपने देश को भूल जाओ।

चन्द्रगुप्त– यह असम्भव है सम्राट! मातृभूमि कभी भुलाई नहीं जा सकती। बंदी बनना न बनना मुझ पर निर्भर है, आप पर नहीं।

अलक्षेन्द्र– (उपहास करते हुये) जान पड़ता है अविवेकी भी हो।

चन्द्रगुप्त– कदाचित् मैं नहीं, आप हैं।

अलक्षेन्द्र– (क्रोधपूर्वक) सैनिको! कैद करो।

(चारों सैनिकों में से बंदी बनाने का साहस किसी में नहीं होता, चंद्रगुप्त अपने दोनों हाथों में तलवार लिये चारों ओर सतर्क दृष्टि से देखता है)

चंद्रगुप्त– मुझे ज्ञात नहीं था कि विश्वविजय का महत्वाकांक्षी पुरुष इतना भीरु , कायर है कि एकाकी विद्यार्थी से भयभीत हो गया।

अलक्षेन्द्र– (सरोष) एक युवक से हम भयभीत क्या हो सकेंगे?

किन्तु मुक्त करना भविष्य में संकट को निमंत्रण देना है। हमारे देश की युद्ध कला के प्रशिक्षण का और क्या अभिप्राय हो सकता है चंद्रगुप्त?

चंद्रगुप्त– आपसे युद्ध करने का अभिप्राय नहीं अपितु स्वदेश की रक्षा का ही अभिप्राय है।

अलक्षेन्द्र– हूँ.... ऊँ... अपनी तलवारें हमें सौंप दो चंद्रगुप्त!

चंद्रगुप्त– किसलिये?

अलक्षेन्द्र– (भेद भरी दृष्टि से देखते हुये) उफ्! तुम बहुत उद्दंड हो युवक! तुम्हें किस मूर्ख ने शिक्षा दी है।

चंद्रगुप्त– सावधान सम्राट! मेरे पूज्यपाद आचार्य के प्रति आप अशिष्ट वचन नहीं कह सकते। अपने वचनों पर संयम रखें।

अलक्षेन्द्र– चल–चल बड़ा आया संयम सिखाने वाला। वही है न तेरा गुरु काला–कलूटा ब्राह्मण चाणक्य।

चन्द्रगुप्त– (ललकारते हुये) सम्राट!

अलक्षेन्द्र– निर्लज्ज! तुझे शर्म नहीं आती लाल–लाल आँखें दिखाते। हमें क्या समझा है? कुशल है कि अभी तक तू मुक्त है। हमारे एक संकेत मात्र पर तेरे खंड–खंड हो सकते हैं।

चंद्रगुप्त– (निर्भीकता से) **जीवन में मृत्यु अनिवार्य है सम्राट! आज और कल में कोई अंतर नहीं पड़ता। जो अनिवार्य है उससे क्या डरना?** पर हाँ एक बात अवश्य जान सका हूँ कि साधारण जन की और एक सम्राट की बुद्धि में कोई अंतर नहीं। आपकी भरी सभा में सभी आपके सेवक हैं। चारों तरफ दूर तक आपका शिविर लगा हुआ है फिर भी मुझ जैसे अकेले युवक पर कई सैनिकों की तलवारें तनी हुई हैं। पिंजड़े में बंद कर सिंह को धमकी देने वाले गीदड़ यूनान में ही होते हैं। सिंह की खाल में छिपा हुआ

विजयी सम्राट अलक्षेन्द्र भी एक भीगा गीदड़ ही है।

अलक्षेन्द्र–(क्रोध से काँपते हुये) दूर हट जाओ सैनिको। फिलिप्स! इसे यूनान की वीरता दिखला दो। (सैनिक पीछे हट जाते हैं)

चंद्रगुप्त– (हँसकर) फिलिप्स! बेचारा क्या खाकर वीरता दिखलायेगा। (सरोष) सम्राट! **वीरता लुटेरों, चरित्रहीनों में नहीं हुआ करती,** वह तो केवल आर्यावर्त के वीरों को ही वरण करती है।

(फिलिप्स इस चुनौती को सभा के सामने अस्वीकार नहीं कर पाता। वह तलवार से चन्द्रगुप्त पर वार करता है। पर चंद्रगुप्त उसकी तलवार को दो टूक कर अपनी तलवार चमकाता हुआ विद्युत वेग से चला जाता है)

(सारी सभा चित्रलिखित सी देखती रह जाती है। चंद क्षणों के पश्चात् अलक्षेंद्र जैसे नींद से जागता है)

अलक्षेन्द्र– एक अकेला युवक तुम सबके सामने से निकल गया। छिः... फिलिप्स! तुम भी न रोक सके?... सैनिको! चंद्रगुप्त को तत्काल जीवित या मृत पकड़ कर हमारे समक्ष लाओ। (सैनिकों का प्रस्थान) महासेनाध्यक्ष शैलाक्ष! तुमने शत्रु को अतिथि बनाकर उचित नहीं किया।

शैलाक्ष– सम्राट! मैं उसकी वीरता पर न्योछावर था। उसने दो–दो बार मेरी पुत्री हेलन की फिलिप्स से रक्षा की है। हेलन पर फिलिप्स की आँखें गड़ी हुई हैं। मैं चन्द्रगुप्त के प्रति कृतज्ञ हूँ फिर भी मैंने उसे अपने साम्राज्य विस्तार के विषय में ही अपना अतिथि बनाया। इस देश की विजय में हमें उससे बहुत कुछ सहयोग मिल सकता था। उसका हाथ से निकल जाना अनिष्ट की आशंका का सूचक है।

अलक्षेंद्र– किन्तु तुमने इसके पूर्व कुछ भी नहीं बताया।

शैलाक्ष– मैं उचित अवसर की प्रतीक्षा में था।

अलक्षेंद्र– शीघ्र निर्णय कभी–कभी अनुचित भी हो जाता है। यदि मुझे किंचित् भी आभास मिला होता तो ऐसा अनर्थ न होता, न ही फिलिप्स का दुस्साहस बढ़ता।

अलक्षेंद्र– (सरोष) फिलिप्स! तुमने अपने ही देश की बेटी के साथ दुर्व्यवहार कर जघन्यतम अपराध किया है, अतः दंड के पात्र हो। तुम्हें सेनापति पद से हटाया जाता है। आज से तुम साधारण सैनिक हो। स्मरण रहे यदि भविष्य में यह भूल पुनः दुहराई गई तो तुम्हें अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ेगा। जाओ, मेरी आँखों से ओझल हो जाओ। (फिलिप्स का प्रस्थान)

शैलाक्ष– सम्राट! हमें यहाँ पर विलम्ब हो रहा है। पूर्व योजना के अनुसार हमें पंचनद प्रदेश पर शीघ्रातिशीघ्र आक्रमण करना होगा ताकि सैनिक प्रमादी न हों। आंभिराज की क्या खबर है?

अलक्षेंद्र– (प्रसन्नता से) शुभ संवाद है महा सेनाध्यक्ष! एक हजार टेलेंट में वह मूर्ख अपने हाथों बिक गया है। अब वह हमारी इच्छाओं का गुलाम है। आज तीसरे प्रहर यहाँ से पंचनद की ओर हमारे साथ रहेगा। उसकी पंचनद–नरेश पौरव से पुरानी वैमनस्यता है।

शैलाक्ष– (पुलकित हो) सुन्दर, अति सुन्दर सम्राट! काँटा से काँटा निकल जायेगा, हमारी सेना पर आँच भी नहीं आएगी।

अलक्षेन्द्र– तब यहाँ से कूच की घोषणा कर दी जाये शैलाक्ष।

शैलाक्ष– अवश्यमेव सम्राट! इस संवाद को पाकर हमारी सेना प्रसन्न होगी। अब अपनी तलवार जौहर दिखाने के लिये उद्विग्न है।

अलक्षेंद्र– आज की सभा विसर्जित की जाये। निश्चित तीसरे प्रहर हमें तक्षशिला छोड़ देनी है।

पटाक्षेप

[दृश्य-ग्यारहवाँ]

(पंचनद नरेश महाराज पौरव की राजसभा महाराज पौरव सिंहासनारूढ़ हैं। पास ही आसंदी पर अमात्यगण विराजमान हैं। अन्य सदस्यगण अपने-अपने आसनों पर बैठे हैं। सबके मुख उदास हैं। वातावरण में गम्भीरता व्याप्त है)

पौरव- (गम्भीर स्वर में) महामात्य व सदस्यगण सब सुनें। हमारी यह गुप्त मंत्रणा है। आप सब लोगों को ज्ञात ही है कि यूनानी सम्राट अलक्षेंद्र सिकंदर ने अपने देश की ओर मुख कर लिया है, वह बहुत शीघ्र यहाँ आ जायेगा। हमें अपना कर्तव्य निर्धारित करना है, आप सब अपनी-अपनी सम्मति दें।

सदस्यगण- (समवेत स्वर में) हम रणभूमि में उसका स्वागत करेंगे महाराज!

पौरव- साधुवाद! साधुवाद!!... किन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि उसकी सेना बहुत है और हम अल्पसंख्यक हैं। चींटी और हाथी का मुकाबला है।

महामात्य- महाराज! मस्त हाथी एक चींटी से ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, हम तो सिंह हैं महाराज! हाथियों के झुण्ड को केवल एक सिंह ही परास्त कर देता है।

पौरव- आपका कथन स्पृहणीय है महामात्य! हम शत्रु से रणक्षेत्र में भेंट करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। उसे बतला देना चाहते हैं कि आर्यखण्ड को विजित करना विनोद नहीं, लोहे के चने चबाना है। (क्षणेक विचारकर) तब फिर सर्व सम्मति से सेनापति को आदेश देना उपयुक्त रहेगा।

सदस्यगण- (एक साथ) निःसंदेह!...

महामात्य- (सेनाध्यक्ष से) शीघ्रातिशीघ्र सेना को रणक्षेत्र में प्रस्थान

करने के लिये अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया जाये।

सेनाध्यक्ष- महामात्य! हमारी सेना प्रस्तुत है, सैनिकों ने अपने शस्त्रास्त्र पुनः चमका लिये हैं। जिस समय अलक्षेंद्र और आंभिराज की मित्रता के समाचार प्राप्त हुये, उसी समय हमारा माथा ठनका कि आंभिराज अब पुरानी शत्रुता का प्रतिशोध अवश्य लेगा। उसी समय से हमने सैन्य तैयारी आरम्भ कर दी। पूर्णरूपेण हम प्रत्येक संकट से निबटने के लिये हर क्षण तत्पर हैं केवल आपके आदेश की प्रतीक्षा है।

पौरव- (प्रसन्नता से) पूर्व नियोजित कार्यक्रम हेतु हम तुम्हारा सहर्ष अभिनन्दन करते हैं सेनाध्यक्ष! देश को तुम जैसे वीरों की ही आवश्यकता है।

सेनाध्यक्ष- महाराज! आपकी प्रसन्नता ही हमें वरदान स्वरूप है। यह नश्वर तन देश के काम आ सके इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है?

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी- महाराज! यूनानी सम्राट अलक्षेंद्र के शिविर से एक दूत आया है, वह आपसे भेंट करना चाहता है।

(सभा के सभी सदस्यगण आश्चर्यान्वित हो उठते हैं)

महामात्य- (साश्चर्य) अलक्षेंद्र का दूत?

प्रतिहारी- हाँ महामात्य! वह आदेश की प्रतीक्षा में द्वार पर उपस्थित है।

पौरव- दूत को हमारे समक्ष इसी समय उपस्थित किया जाये।

प्रतिहारी- जी! जो आज्ञा। (जाना)

(तुरन्त प्रतिहारी के साथ दूत का प्रवेश)

(दूत के हाथ में एक रजतथाल है जो स्वर्ण रत्नों से भरा सुन्दर वस्त्र से आच्छादित है। दूत आकर महाराज को अभिवादन करता है)

दूत– (नमस्कार कर) पंचनद नरेश की सेवा में हमारी भावी साम्राज्ञी देवी रुखसाना ने यह तुच्छ भेंट प्रेषित की है, कृपया महाराज स्वीकार करें।

(वस्त्र अलग कर थाल रख देता है)

पौरव– (अत्यन्त आश्चर्य से) भावी साम्राज्ञी ने? तुम्हारा अभिप्राय क्या है दूत? स्पष्ट कहो।

दूत– हाँ महाराज! भावी साम्राज्ञी देवी रुखसाना सम्राट अलक्षेंद्र की प्रेयसी हैं। इस यात्रा में वे भी साथ हैं। उन्होंने यह पत्र दिया है जो आपकी जिज्ञासा शांत करेगा, लीजिये।

पौरव– महामात्य पत्र पढ़ें। यूनानी साम्राज्ञी का संदेश राजसभा को अवगत करायें।

महामात्य– तथास्तु महाराज! (पत्र मुठिया में लिपटा है, महामात्य पत्र पढ़ते हैं)

स्वस्ति श्री महाशुभस्थाने पत्री श्री पंचनद नरेश श्रीयुत राजराजेश्वर महाराज पौरव को जोग लिखी वितस्ता पार से सम्राट अलक्षेंद्र की अत्यन्त प्रिय प्रेयसी रुखसाना का सादर सविनय नमस्कार।

अपरंच आपके देश भारतवर्ष से मैं अत्यन्त प्रभावित हुई हूँ। यहाँ के वीरों की वीरता भरी गाथाएँ अनुपम निराली हैं। यद्यपि मैं आपके शत्रु की प्रेयसी हूँ तथापि आप जैसे वीर शिरोमणि पंचनद नरेश महाराज पौरव को अपना धर्मभ्राता मानती हूँ। दूत के हाथ भेजा हुआ रक्षासूत्र मेरे कथन का साक्ष्य है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप मेरे स्नेहासिक्त कच्चे धागों का बंधन अवश्य स्वीकार कर मुझे अनुग्रहीत करेंगे।

पुनश्च आपकी भगिनी रुखसाना आपसे सविनय निवेदन करती है कि युद्ध भूमि में संघर्षरत होने पर भी देवपुत्र अलक्षेन्द्र सिकंदर को प्राणहीन न कर मेरे सौभाग्य सूर्य को उदित बनाये रखें। मैं अपने प्रेमी के जीवन-भिक्षा की चिर अभिलाषिणी हूँ। अन्त में मैं इसी मंगलमयी आशा को हृदय में संजोये पत्र समाप्त करती हूँ। पुनः पुनः यही आशा है कि आप अपनी भगिनी की प्रेम बेलि हरी-भरी रखने में एवं मेरी आकांक्षा की पूर्ति में अवश्य सहायक होंगे। महाप्रभु से आपकी कुशलता व सफलता की कामना करती हूँ।इत्यलम्।

दर्शनाभिलाषिणी
आपकी भगिनी
रुखसाना

पौरव- (गम्भीरता से क्षणेक रुककर) एवमस्तु दूत! तुम अपनी साम्राज्ञी से हमारा संदेश कहना कि हम उनका रक्षाबंधन स्वीकार कर उन्हें अपनी भगिनी मानते हैं एवं वचन देते हैं कि रणक्षेत्र में हम प्राणघातक वार नहीं करेंगे।

महामात्य- (चिन्तित हो) महाराज! शरणागत की श्रृंखला में सोचना-समझना कैसा?

पहला सदस्य- महाराज! इसमें कोई रहस्य छिपा है। शत्रु-प्रेमिका को वचन देना, साक्षात् आपत्ति को आमंत्रण देना है।

दूसरा सदस्य- यह कैसे हो सकता है कि हम अपने आक्रांता की स्वयं रक्षा करें?

महामात्य- शत्रु भी इससे अनुचित लाभ उठा सकता है।

पौरव- भारतीयों की परम्परा रही है कि वीर वचन देकर पीछे नहीं हटते।

महामात्य- किन्तु महाराज! इसमें छल भी हो सकता है और यदि

ऐसा हुआ तो आप अपनी स्वतन्त्रता को सदा के लिये खो बैठेंगे।

पौरव– तुम भूल रहे हो मंत्रिवर! इतिहास साक्षी है कि कभी भगिनी ने भ्राता से प्रवंचना[1] नहीं की। भाई–भाई से छल कर सकता है परन्तु भगिनी... कभी नहीं (हर्षाश्रु छलक आते हैं) नारी जाति हमारे लिये सदा से वंदनीय रही है। यदि नारी भगिनी बनकर समर में आई है तो भाई–बहिन के निश्छल पवित्र बंधन को तोड़ने की सामर्थ्य हममें नहीं है। सदस्यगणो! उसके बलाबल का विचार किये बिना ही हम वचनबद्ध होते हैं। हमें डिगाने का नियति में भी साहस नहीं। दूत! जाओ और हमारी भगिनी देवी रुखसाना से विनम्र निवेदन करना कि उनका अग्रज अपने वचनों का मृत्यु पर्यन्त निर्वाह करेगा। महामात्य! कोषाध्यक्ष को सूचित कर दें हमारी भगिनी को उपहार स्वरूप उचित भेंट देकर दूत को विदा किया जाये।

महामात्य– आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महाराज! भगिनी की भाँति ही हम यथेष्ट विदाई देंगे।

दूत– निहाल हुआ राजराजेश्वर! मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी। आर्यावर्त की जैसी महिमा सुनी थी, उससे कहीं अधिक मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। धन्य है! आपके शौर्य को धन्य है।

(दूत का प्रस्थान)

पौरव– महामात्य एवं सभासदो! स्मरण रहे कि भारतीयों का गौरव उनकी उदारता ही रही है। संकीर्णता को स्थान देकर उसमें कलंक की कालिमा नहीं लगायेंगे। (गुरुतर दृढ़ता से) प्रतिज्ञा करें कि हम अपनी पवित्र परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखेंगे।

महामात्य– हम सब दृढ़ प्रतिज्ञ हैं महाराज!

सभासद– (समवेत स्वर में) एवमस्तु।

पटाक्षेप

1. छलपूर्ण कार्य

[दृश्य बारहवाँ]

(सिकन्दर के शिविर से भागकर चन्द्रगुप्त वन में)

चन्द्रगुप्त– (थककर रुकते हुये, हाँफते हुये) उफ्! कितनी भीषण गर्मी है। कब से दौड़ रहा हूँ। अब कहीं अत्यन्त कठिनता से निरापद स्थान मिल पाया है। (वृक्ष की छाया में लेटकर) ओ निःस्वार्थी मौनव्रती सेवक! तुम्हारी शीतल छाया में पथिक क्षणिक विश्राम हेतु बाध्य हो रुक जाता है। तुम अतिथि के स्वागत में पुलककर अपने अनन्त कर पल्लवों से मंद-मंद व्यजन डुलाने लगते हो। धन्य है तुम्हारा सेवाभाव! काश! मानव में ही यह सहृदयता आ जाये।

(चन्द्रगुप्त निद्राभिभूत हो जाते हैं। उत्तरीय हवा से उड़कर एक ओर को हो गया है। गौर वर्ण शरीर दीप्त हो रहा है। मुख पर स्वेदकण बहुतायत से चमक रहे हैं। थोड़ी देर बाद एक विशाल काय सिंह आकर उनके शरीर के खुले भाग के स्वेद कणों को बिना आघात पहुँचाये चाट लेता है। मानों ममतावश गाय ही अपने प्रिय बछड़े को चाट कर अपना प्रेम प्रदर्शित कर रही हो। चन्द्रगुप्त को खोजते हुये उसका बालसखा जयदेव वहीं आ निकलता है। सिंह के कार्यकलाप देखकर वह भय और विस्मय से सहसा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। क्षणेक रुक वह भाले से निशाना साधकर मारना ही चाहता है कि सिंह अपना कार्य समाप्त कर चुपचाप एक ओर को चल देता है। चन्द्रगुप्त जागते हैं। उनींदे अलसाते हुये वे सिंह को

अपने पास से जाते हुये देखते हैं।

जयदेव– (भाला एक ओर फेंककर) अरे, सिंह चल दिया। ज्ञात होता है आज वनराज अपने अरण्य में अनायास आये अतिथि नरराज कुमार चंद्रगुप्त का स्वागत करने हेतु पधारे थे।

चंद्रगुप्त– जयदेव! कहो तुम कहाँ से आ रहे हो? आचार्यश्री के क्या समाचार हैं?

जयदेव– तुम्हें खोजता हुआ आ रहा हूँ मित्र! यहाँ तो भय और विस्मय से ठगा सा रह गया। वनराज सिंह ने सरल शांत भावों से तुम्हारी सेवा सत्कार कर तुम्हारे भावी सम्राट होने की अग्रिम सूचना दी है। (प्रसन्नता से आह्लादित हो गले लगाकर) बोलो, पशु–पक्षियों! अपने स्वरों में एक बार सम्राट चंद्रगुप्त की जय का उच्च स्वर से निनाद करो ताकि दशों दिशायें गूँज उठें। बोलो चंद्रगुप्त की जय।

चंद्रगुप्त– अरे, अरे, जयदेव! पागल हो गये हो क्या?

जयदेव– कदाचित्। तुम ऐसा ही समझ सकते हो।

चंद्रगुप्त– सचमुच तुम्हें कुछ हो गया है। तभी व्यर्थ का प्रलाप कर रहे हो।

जयदेव– प्रलाप नहीं कुमार! सच कह रहा हूँ। आज तक किसी ने न ऐसा देखा है, न सुना है।

चंद्रगुप्त– ओह! तुमने ऐसी कौन–सी अनहोनी देख ली है, कुछ बताओ तो भाग्यवान! हम सुनकर ही उसकी अनुभूति प्राप्त कर लें।

जयदेव– भाग्यवान! .... हाँ मैं भी और तुम भी! तुमने देखी नहीं कुमार सिंह की सेवावृत्ति।

चंद्रगुप्त– सेवावृत्ति! तुम्हारे कहने का तात्पर्य क्या है?

जयदेव– यही कि नरराज की सेवा वनराज ने की। सिंह ने तुम्हारे तन का स्वेद अपनी जिह्वा से पोंछा है। यह शुभ लक्षण हमारी विजय का प्रतीक है।

चंद्रगुप्त– (साश्चर्य) सच, क्या तुमने अपनी आँखों से देखा है, किन्तु उस समय मैं उनींदा था। सिकंदर के गुप्तचरों से पीछा छूटा तो वृक्ष की सघन छाया में विश्राम करने के लिये मन मचल उठा। मैं निद्रा देवी की गोद में समा गया। वायु के हिलकोरों से तन–मन शांत हो गया।

जयदेव– तुम थके हुये थे इसीलिये तुम्हें सिंह के आगमन का भान नहीं हो सका। अलक्षेन्द्र के क्या समाचार हैं?

चंद्रगुप्त– उसकी कुछ न पूछो मित्र! सात अहोरात्रि में मैं उसकी सेना की थाह लगा पाया हूँ। बड़ी विशाल सेना ले वह विश्वविजय का आकांक्षी होकर निकला है। (किंचित् रोष में आकर) परन्तु हम उसकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होने देंगे।

जयदेव– कभी नहीं। हम अपने प्राणों की बाजी लगा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करेंगे। भारत विजय की तीव्र लालसा को सदा के लिए समाप्त कर देंगे किन्तु उसके साहस की प्रशंसा तो करनी हो होगी।

चंद्रगुप्त– निःसंदेह जयदेव! वह साहसी है। यह भी सुना है कि उससे आंभिराज ने संधि कर ली है।

जयदेव– संधि नहीं, अभिसंधि की है।

चंद्रगुप्त– क्यों, क्या कोई नई बात सुनने में आई है?

जयदेव– वह नीच आम्भी अपनी उदार संस्कृति त्याग सिकंदर का क्रीतदास बन गया है।

चंद्रगुप्त– स्पष्ट कहो जयदेव! क्या कह रहे हो?

जयदेव– कहते हुए लज्जा आती है कुमार! तक्षशिला भारतवर्ष का प्रमुख सिंहद्वार है। प्रहरी तक्षशिला नरेश आम्भी ने अपनी स्वतन्त्रता का विनिमय कर लिया है केवल एक सहस्र टेलेंट में।

चंद्रगुप्त– क्या यह समाचार सत्य हो सकता है?

जयदेव– सत्य हो सकता नहीं, सत्य है और इतना ही सत्य है, जितना इस समय हमारे द्वारा प्रचंड दिनकर को देखा जाना है।

चंद्रगुप्त– (दुःख और रोष से) क्या आम्भी को अपनी स्वतंत्रता प्रिय नहीं थी जो उसने अपने ही हाथों उसका अपहरण करा दिया। एक सहस्र टेलेंट अर्थात् अड़तालीस लक्ष स्वर्ण मुद्रायें राष्ट्र की स्वतन्त्रता से भी बहुमूल्य हो गईं? विदेशियों के सन्मुख उसने उत्तरापथ की आन नष्ट कर दी। छिः...।

जयदेव– यही कारण है कि सिकंदर का साहस बढ़ गया है कुमार! वह दूने उत्साह से आगे बढ़ रहा है।

चंद्रगुप्त– क्यों नहीं वह स्वयं वीर है एवं उसे अपनी विशाल सेना पर अभिमान है। 'करेला और नीम चढ़ा'। फिर उसका प्रवेश द्वार पर स्वागत हो गया। उसे आगे बढ़ने के लिये निष्कंटक मार्ग मिल गया।

जयदेव– इतना ही नहीं कुमार! वह नीच आम्भी भी संग्राम में सहायता हेतु सेना सहित साथ चल रहा है।

चंद्रगुप्त– अच्छा, उसका इतना दुस्साहस! आम्भी! इस कुकृत्य का

फल भी तुझे चखना होगा। मरते समय चींटी के पर निकल आते हैं। (विचार कर) यह तो बताओ जयदेव! कि ये दोनों किस ओर बढ़ रहे हैं?

जयदेव– इनका अभियान पंचनद की ओर हो रहा है। पंचनद नरेश महाराज पौरव से आम्भी की पुरानी वैमनस्यता है, अतः सिकंदर का बल पाकर वह प्रतिशोध लेना चाहता है।

चंद्रगुप्त– (क्रोधित हो) समझा जयदेव, समझा। अधम आम्भी अपने द्वेष की चिन्गारी फैलाकर समूचे आर्यावर्त को स्वाहा कर देना चाहता है। अभागे अपनी ही लगाई आग में क्या तू भस्म न हो जायेगा?... किन्तु मैं उसके स्वप्न को चूर-चूर कर दूँगा। उसकी अभिलाषा फलीभूत न हो सकेगी। आर्यावर्त सदा स्वतन्त्र रहा है और रहेगा। आचार्य पाद भी इस संवाद को जानते हैं न?

जयदेव– अच्छी तरह। तभी तो उन्होंने तुम्हारे पास भेजा है। महामति तक्षशिला से समस्त शासन सूत्र का संचालन करते रहते हैं। अपने समस्त शिष्यों का उन्होंने चारों दिशाओं में गुप्तचरों के रूप में जाल फैला दिया है।

चंद्रगुप्त– इसी कारण सारी सूचनायें उड़ती हुई उन्हें तत्क्षण प्राप्त हो जाती हैं। हमें भी आचार्यश्री से अब नवीन आदेश ग्रहण करना है। चलो जयदेव! हमें अविलम्ब यहाँ से चल देना चाहिए।

जयेदव– हाँ चलो। कहीं हमारे तनिक विलंब से कोई अघटित घटना न घट जाये।

(प्रस्थान)

पटाक्षेप

[दृश्य-तेरहवाँ]
अलक्षेन्द्र का शिविर
समय- रात्रि का प्रथम प्रहर

(रणक्षेत्र में आज दिन भर दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ है। इस युद्ध से अलक्षेन्द्र के सैनिक घबरा गये हैं। शिविर में मंत्रणा हो रही है। अलक्षेन्द्र का सिंहासन रिक्त है और वह क्रोधावेश में झुँझलाया हुआ है। चहलकदमी करते हुये वह बार-बार कभी अपनी मुट्ठियाँ बंद कर लेता है, कभी हाथ से हाथ मारता है। ऐसा मालूम होता है जैसे कोई भूखा शेर पिंजड़े में बंद होकर अपना क्रोध प्रदर्शन कर रहा हो। सेल्यूकस आता है। सम्राट् को अभिवादन करता है)

अलक्षेन्द्र- (क्रोधित हो) शैलाक्ष! तुम जैसे महासेनाध्यक्षों के रहते हुए आज कितनी बुरी तरह हम परास्त हुये हैं।

सेल्यूकस- निःसंदेह सम्राट! इस पराजय का हमें भी अत्यन्त दुःख है। हमें बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी है।

अलक्षेन्द्र- हानि ही नहीं सेल्यूकस, हम हार गये हैं। हमारे एक लक्ष बीस सहस्र सैनिक, पन्द्रह हजार घुड़सवारों को पौरव के बीस सहस्र सैनिक एवं दो सहस्र घुड़सवार ने मात दे दी। धरती आकाश का अंतर है सेल्यूकस।

सेल्यूकस- किंतु सम्राट! हमने भी धरती-आकाश के कुलाबे मिलाये। तिस पर भी पराजय हाथ लगी। नियति हमारे प्रतिकूल रही। हमारा परिश्रम व्यर्थ रहा।

अलक्षेन्द्र- अब क्या होगा? हम इसी चिंता में डूबे हुये हैं। अभी तक विजित होते आये। पराजय हमारे हिस्से में कभी नहीं आई थी। (दुखित हो) आज सहसा जैसे भाग्य सितारा अस्त होने जा रहा है।

सेल्यूकस– निराश न हों सम्राट! कभी जय, कभी पराजय होती ही है।

अलक्षेन्द्र– तुम्हारा कथन यथार्थ है सेनाध्यक्ष! किंतु हमने अब तक जय का ही वरण किया था, पराजय हमसे थर्राकर दूर भागती थी।

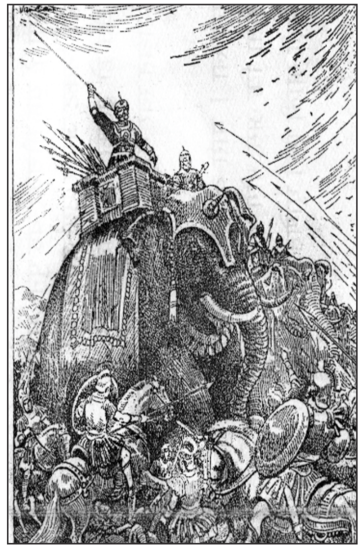

सेल्यूकस– अभी भी ऐसा ही होगा सम्राट! ग्रीष्मऋतु में मध्याह्न के तपते सूर्य पर भी कभी–कभी अल्पकालीन बादल के टुकड़े छा जाया करते हैं पर सूर्य का कुछ अनिष्ट तो नहीं कर पाते।

अलक्षेन्द्र– परन्तु प्रभाव तो कम कर ही देते हैं। हमें दिलासा देकर हमारा मन समझाना चाहते हो सेल्यूकस! (शनैः शनैः शांत हो बैठ जाता है)।

सेल्यूकस– (थूक निगलते हुये गला साफ कर) मेरा कहने का आशय यही है सम्राट! कि अस्थायी क्षुद्र बादलों के हटते ही सूर्य ज्यों का त्यों प्रकाशमान हो जाता है। हम भी जीतने का प्रयत्न करेंगे।

अलक्षेन्द्र– प्रयत्न नहीं सेल्यूकस! जीतना ही होगा। हमने आँधी की भाँति शत्रुओं की वाहनियों को रजराशि की तरह उड़ा दिया है। हम अपना विजय रथ बिना किसी बाधा के यहाँ तक ले आये हैं। पश्चिमी एशिया हमारे पदाक्रान्त से प्रकंपित हो उठा है किन्तु आज की पराजय ने हमारे चिरसंचित आनंद को दुःख के अथाह सागर में डुबो दिया है। मुट्ठी भर सैनिकों से हमारी विशाल सेना मात खा गई।

सेल्यूकस– हमारे हारने का कुछ और ही कारण था सम्राट्! शत्रु के विशालकाय जानवरों ने हमारे सैनिकों के पैर उखाड़ दिये। उन भयंकर

पशुओं को देखकर (भयभीत हो) उफ्! बड़ा डर लगता था।

अलक्षेन्द्र– (दुखित हो) मानते हैं इसी कारण हमारे सधे सधाये योद्धा तितर–बितर हो गये।

सेल्यूकस– सचमुच वे भयंकर विचित्र पशु थे। देखते ही देखते वे अनेक अश्वारोहियों को अपनी नाक में लपेट कर अपने सवारों को देखकर मरवा डालते थे। उनके पैरों से ही अनेक सैनिक रौंद डाले गये।

अलक्षेन्द्र– ऐसे वन्य पशु अभी तक देखने में नहीं आये। उनकी गर्जना ही हृदय को दहलाने के लिये पर्याप्त है।

सेल्यूकस– इसी से हम मात खा गये सम्राट!

अलक्षेन्द्र– एक बात और थी सेल्यूकस।

सेल्यूकस– वह क्या सम्राट!

अलक्षेन्द्र– आज हमें टक्कर का योद्धा मिला। भारतीयों से हमारा यह प्रथम युद्ध है। हमारा उनकी वीरता से सर्वप्रथम परिचय है। सचमुच भारतीय बेजोड़ हैं।

सेल्यूकस– इनकी वीरता से साक्षात्कार तो चंद्रगुप्त से व्यक्तिगत रूप से पहिले ही हो चुका था, सामूहिक रूप में आज।

अलक्षेंद्र– ठीक कह रहे हो सेनाध्यक्ष! नवयुवक चंद्रगुप्त की वीरता अद्वितीय है। कितनी निपुणता से वह अकेला अपनी तलवार के बल पर हमारे शिविर को चकमा देता हुआ साफ बच कर निकल गया।

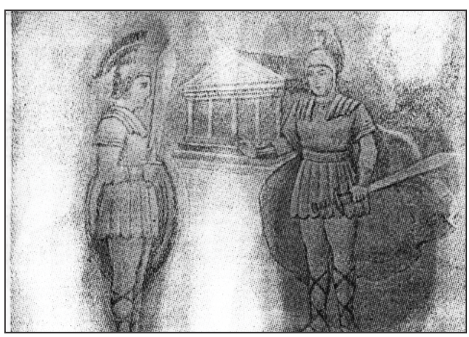

सेल्यूकस– और हम हैं कि मंत्रमुग्ध से देखते रह गये। हमारे सैनिक उसे जीवित या मृत किसी भी हालत में उपस्थित करने में असफल रहे।

अलक्षेंद्र– हमारे हाथ से वह निकल गया। जाने कहाँ वह अपनी योजना बनाने में व्यस्त होगा। खैर, हमें उससे कोई विशेष प्रयोजन नहीं। न वह राजा है न उसके हाथ में सत्ता है। अब हमें कल के कार्यक्रम का निर्धारण करना है। सेनापति फीलीपोस कहाँ हैं?

सेल्यूकस– आते ही होंगे। कुछ सैनिकों से परामर्श कर रहे थे।... लो वो आ गये। (फीलीपोस आकर दोनों को सैनिक अभिवादन करता है)

फीलीपोस– क्या आज्ञा है सम्राट!

अलक्षेन्द्र– बैठो, आज के युद्ध के विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है?

फीलीपोस– क्या कहूँ सम्राट! जीवन में प्रथम बार ऐसा विकट आक्रमण देखा है। भारतीयों की वीरता, उनका रणकौशल देखकर तो मैं स्तम्भित हूँ। उनका देशप्रेम अद्वितीय है।

अलक्षेंद्र– परंतु अब क्या करना चाहिये? उनके मुट्ठी भर सैनिकों ने हमें नाकों चने बिनवा दिये। यदि ऐसा ही हाल रहा तो हम कहीं मुख दिखाने योग्य भी न रह जायेंगे।

फीलीपोस– (दृढ़ता से) सम्राट! हमारे सैनिक कायर नहीं हैं। हम भी लड़ना जानते हैं परंतु पौरव के वे विशालकाय पशु जिन्होंने हमारी सेना का विध्वंस कर दिया, वे सैनिकों को इस तरह उठाकर पछाड़ रहे थे जैसे कोई मिट्टी की पुतलिकाओं को लीलामात्र में उठाकर नष्ट कर देता है।

अलक्षेंद्र– (किंचित् रोष पूर्वक) उफ्! मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। कल का कार्यक्रम तुमने क्या निश्चित किया है?

फीलीपोस– मैं अभी-अभी सैनिकों से परामर्श करके ही चला आ रहा हूँ। उनकी सम्मति में यहाँ से लौट जाना ही हमारे हित में है अन्यथा गाजर-मूली की तरह सारी सेना कट जायेगी।

अलक्षेंद्र– ओह! तो यह था तुम्हारा तात्पर्य!... कान खोलकर सुनो फीलीपोस! (दृढ़ता पूर्वक) हम लड़ेंगे। विजयश्री हमारे हाथ रहेगी।

सेल्यूकस– सम्राट! यह विजय बहुत महँगी पड़ेगी।

अलक्षेंद्र– कुछ भी हो। हम पराजित होकर नहीं लौट सकते। एक साधारण से राजा से हम परास्त नहीं होंगे। हम विजय अभियान पर निकले हैं। अभी हमें बड़े–बड़े सम्राट, चक्रवर्तियों से लोहा लेना है।

सेल्यूकस– वह असंभव सा लग रहा है सम्राट!

अलक्षेंद्र– मनुष्य के लिये असम्भव कुछ भी नहीं है सेल्यूकस! मुझे आश्चर्य है कि यूनान की धरती पर उत्पन्न योद्धाओं के मुँह से कैसे कायरता पूर्ण वचन निकल रहे हैं। छिः! सेनाध्यक्ष होकर इसप्रकार भी कह सकते हो? हम स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं कर सकते थे।

सेल्यूकस– मैं नहीं कहता सम्राट! सैनिकों की अभिलाषा यही है। वैसे हम लड़ेंगे सम्राट! ऐसे लड़ेंगे कि दुश्मनों के छक्के छूट जायें। विजयश्री लेकर हम आगे बढ़ते जायेंगे।

फीलीपोस– ऐसा ही होगा सम्राट! तलवार छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक हमारा एक भी सैनिक जीवित रहेगा, हम अपनी पराजय स्वीकार नहीं करेंगे।

अलक्षेंद्र– हम तुम्हारे निर्णय से अति प्रसन्न हैं सेनाध्यक्षो! सैनिको में घोषित कर दो कि इस विजय पर लूट में जो भी माल मिले वह सब उनका ही होगा। राजकोष में कुछ भी नहीं लिया जायेगा।

फीलीपोस– (प्रसन्नता से) तब तो सैनिक द्विगुणित उत्साह से अपना कौशल दिखलायेंगे।

अलक्षेंद्र– तुम दोनों सेनाध्यक्षों व अपने सैनिकों की वीरता पर हमें

गर्व है सेल्यूकस! हम तुम सबका हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

फीलीपोस– हम कृतज्ञ हैं सम्राट!... कल की लड़ाई हमें युक्ति से लड़नी होगी।

सेल्यूकस– तात्पर्य?

फीलीपोस– यह कि हम खुले रूप से आक्रमण कर सफलता अर्जित नहीं कर सकते। आप सबको ज्ञात ही है। कल रातों–रात जब हमारे सैनिक वितस्ता पार कर सरिता के मध्य द्वीप में एकत्रित हो रहे थे उस समय भी दुश्मन कितने जागरूक थे। उन्होंने घेर कर चुन–चुन कर सबको मार डाला। एक भी सैनिक वहाँ से जीवित न लौट सका। जो बचे वे भँवर में समा गये। साथ ही आज के युद्ध की भयानकता से भी पूर्णतः परिचित हैं।

सेल्यूकस– फीलीपोस! मैं भी कुछ यूँ ही सोच रहा हूँ कि यदि रातों रात आक्रमण कर दिया जाये तो कैसा रहे?

फीलीपोस– मेरे मन की बात छीन ली महासेनाध्यक्ष! यह सबसे उत्तम रहेगा। आज पौरव की सेना जीतकर विजय दर्प से आनंदमय सुख निद्रा में लीन होगी, तभी सफलता हमारे चरण चूम सकेगी।

अलक्षेन्द्र– तुम्हारी योजना स्वीकार है। हमें विजय, केवल विजय चाहिये, कैसे भी मिले।

सेल्यूकस– आपकी महत्वाकांक्षा पूर्ण होकर रहेगी सम्राट! आप विश्राम करें।

पटाक्षेप

[दृश्य–चौदहवाँ]

स्थान– रणक्षेत्र द्वितीय दिन, रात्रि का तृतीय प्रहर

(रात्रि का सघन अंधकार छाया है। श्याम घटा घिरी हुई है। कुछ

वर्षा हो चुकी थी अतः धरती पर कीचड़ होना स्वाभाविक था। पौरवराज की सेना निद्रामग्न थी कि सहसा अलक्षेन्द की सेना ने पूर्व योजनानुसार आक्रमण कर दिया। भारतीय सेना में भगदड़ मच गई। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। प्रभात हो जाने में विलंब था। शत्रु-मित्र की पहिचान कैसे हो? अनायास बादलों की गर्जना के साथ बिजली चमकी। क्षणिक प्रकाश कौंधकर जैसे आँखों को ज्योति दे गया। जहाँ-तहाँ मशालें जल उठीं। सेना ने अपने शस्त्र सँभाले। युद्ध ठन गया। पुनः वर्षा होने लगी थी। पौरवराज अपनी सेना को प्रोत्साहित कर रहे थे। वे अपने गज पर आसीन थे)

पौरव- मेरे प्यारे सैनिको! यद्यपि शत्रुओं ने रात्रि में ही नीचतापूर्ण आक्रमण कर दिया है तथापि इन सब कठिनाइयों के पश्चात् भी वीर अपनी वीरता को नहीं छोड़ते। स्वतन्त्रता पर मर मिटने वालों! हम यह न भूलें कि हम आर्यावर्त की संतान हैं। मातृभूमि के लिये अपने तन का एक-एक रोम उत्सर्ग कर देंगे। हम क्षतशीश हो सकते हैं, पर नतशीश नहीं। वीर रण में मरते हैं या वन में। टूट पड़ो शत्रु सेना पर। जय त्रिलोकीनाथ!

सैनिकगण- (समवेत स्वर से) जय त्रिलोकीनाथ! जय त्रिलोकी नाथ!! महाराज! हमारे रक्त की एक-एक बूँद देश-सेवा में अर्पित है। हम प्राणोत्सर्ग कर सकते हैं पर परतन्त्रता स्वीकार नहीं करेंगे।

पौरवराज- (ऊँचे स्वर से) साधुवाद सैनिको! साधुवाद! देश की लाज तुम्हारे हाथ है।

सैनिकगण- पंचनद नरेश की जय! स्वतन्त्रता अमर रहे!! स्वतन्त्रता अमर रहे, स्वतन्त्रता अमर...!

(शस्त्रों की झनझनाहट में - डूब जाता है)

प्रभात हो रहा है। प्राची धरा पर यह मार-काट देखकर रक्तिम हो उठती है। वर्षा थम जाती है। बादल छटने लगते हैं। बाल रवि का प्रकाश धरा पर छाने लगता है। शत्रु सेना अब अच्छी तरह दृष्टिगोचर होने लगी है। भयंकर मारकाट मची है। गजसेना से दुश्मनों के पैर फिर उखड़ जाते हैं। सैनिकगण हाथियों से बुरी तरह मारे जाने लगते हैं। हाहाकार मच जाता है। सैनिक पशुओं की तरह दैन्य विलाप करने लगते हैं। इनका क्रन्दन सुनकर अलक्षेंद्र धैर्य खो बैठता है।

अलक्षेन्द्र- (स्वगत, क्रोधावेश में) उफ्! यह क्रंदन नहीं सुना जाता, नहीं सुना जाता... क्या करूँ? युद्ध बन्द कर दूँ?... नहीं, नहीं यह कैसे हो सकता है? दुनियाँ हँसेगी कि बड़े-बड़े युद्धों का वीर विजेता आज भय खा गया। द्वन्द्व युद्ध होगा ही। हम लड़ेंगे पौरवराज से। कहाँ हैं पौरवराज? वह वृद्ध और हम नवयुवक।

(अपने हाथी पर सवार पौरव सहसा अलक्षेंद्र के सम्मुख आ जाते हैं)

पौरवराज- (मुस्कराते हुये) बहुत खूब! हम तुम्हारे साहस की प्रशंसा करते हैं। पौरवराज तुम्हारे सामने हैं।

अलक्षेंद्र- लड़ाई हमारे तुम्हारे बीच होगी। हम नहीं चाहते कि हमारी महत्वाकांक्षा में सब भस्मीभूत हो जायें। सैनिकों का क्रंदन नहीं सुना

जाता। हमारा हृदय शोक से भर गया है?

पौरवराज– महात्वाकांक्षा के दाँव पर मानवता सदैव हारी है अलक्षेंद्र! अच्छा हुआ तुम देर–सबेर कर्त्तव्य को पहिचाने तो सही। हम भी नहीं चाहते कि निरपराधी मनुष्यों की हत्या हो। तुमने सच्चे योद्धा जैसी ही बात कही है। हम तुम्हारा स्वागत करते हैं।

अलक्षेंद्र– हम भी प्रस्तुत हैं पौरवराज! पशुओं का बल पुरुषार्थ की कसौटी नहीं है।

पौरवराज– ओह! तो तुम हमारा पुरुषार्थ परखना चाहते हो। मन में किसी प्रकार की आकांक्षायें न रखना अलक्षेंद्र! मन की भड़ास निकाल ही डालो।

अलक्षेंद्र– हो जाये फिर दो–दो हाथ। संभालो अपने शस्त्र।

(अलक्षेंद्र ने तीर छोड़ा। वह पौरव के शिरस्त्राण को छूता हुआ निकल जाता है। पौरवराज भी हाथी पर से निशाना साध कर भाला चलाते हैं। जिससे अलक्षेंद्र का प्रिय अश्व 'लूकाफिलस' सदा के लिये सो जाता है। अश्व के धराशायी होते ही अलक्षेंद्र भी सिर के बल भूमि पर गिरकर घायल हो जाता है। उसके अंगरक्षक तुरंत उसे संभालते हैं। सेनाध्यक्ष शैलाक्ष श्वेत ध्वज फहरा देता है, युद्ध बन्द हो जाता है)

पौरवराज– अलक्षेंद्र! हम वचनबद्ध हैं, तुम्हें मार नहीं सकते, केवल पराजित ही करेंगे। हम आर्यावर्त के वीर वचन का निर्वाह करना जानते हैं। जाओ आनन्द पूर्वक रहो। अब इस ओर कभी रुख न करना।

अलक्षेंद्र– अब अधिक लज्जित न करें पंचनद नरेश! आज हमें अतुल्य बल का सामना करना पड़ा है। हम तुम्हारी उदारता के कायल हैं पौरवराज! तुम चाहते तो अश्व से गिरने पर ही हमें चिर निद्रा में सुला देते। हमारा प्रिय अश्व मारा गया, जिस पर बैठकर हमने अनेकों लड़ाइयाँ जीतीं, उसके वियोग में मर्मान्तक पीड़ा हो रही है। तुम जैसे महावीर से संधि का इच्छुक हूँ। क्या तुम इसे स्वीकार करोगे?

पौरवराज– अलक्षेंद्र! तुमने हमारे देश पर निष्कारण आक्रमण किया है। हमारी सुख शान्ति में विघ्न डाला है। हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाला हमारा घोरातिघोर शत्रु है फिर भी हमारी भारतीय संस्कृति उदार है। यदि शत्रु प्रार्थी बनकर संधि करता है तो क्षात्र[1] परंपरानुसार हम संधि स्वीकार कर लेते हैं। प्रार्थी शत्रु पर आघात नहीं करते, प्रत्युत उसे गले लगाते हैं।

अलक्षेंद्र– धन्य है तुम्हारा शौर्य पौरवराज! तुम्हारा देश धन्य है जहाँ तुम जैसे वीर उत्पन्न होते हैं। आज से हम मित्र हुए।

पौरवराज– हम भी पारस्परिक विद्वेष को समाप्त कर तन-मन से तुम्हारे सहयोगी मित्र हैं। तुम हमारे अतिथि हो, हमारे राज्य में तुम निश्चिंत हो विचरण कर सकते हो। सीमा तक तुम्हें सुरक्षित पहुँचाने का वचन देते हैं।

अलक्षेंद्र– हम यूनानी तुम्हारी इस महानता के चिर कृतज्ञ रहेंगे। हमारा सौभाग्य है कि तुम जैसे मित्र की मैत्री प्राप्त हुई है।

पटाक्षेप

---

1. क्षत्रियोचित

[दृश्य-पन्द्रहवाँ]

स्थान- चाणक्य की कुटी

(अलक्षेन्द्र के विरुद्ध चाणक्य, चन्द्रगुप्त आदि की पर्वतीय क्षेत्र में मंत्रणा)

(चाणक्य अलक्षेन्द्र की दिशा भाँप चुके हैं। तदर्थ उसके विरोध में वे शक्तिशाली मोर्चा स्थापित करना चाहते हैं, ताकि उसे आगे बढ़ने से रोक सकें। आचार्य की आज्ञानुसार पार्वत्य प्रदेशों के राजा मंत्रणा हेतु पधार रहें हैं। चंद्रगुप्त, जयदेव पास ही बैठे हैं)

चाणक्य- चन्द्रगुप्त! हमें सभी नरेशो से सहयोग चाहिये है; अतः किसी को रुष्ट न करते हुये युक्ति से कार्य करना होगा।

चंद्रगुप्त- आचार्यश्री! मेरी ओर से आश्वस्त रहें। मैं.... (अश्वों की टापें सुनाई पड़ती हैं) कदाचित् वे लोग आ पहुँचे हैं। (जयदेव बाहर जाते हैं)

चाणक्य- ये सब नरेश संकीर्ण वृत्ति के हैं चन्द्रगुप्त! वार्तालाप में इसका ध्यान रखना।

चन्द्रगुप्त- अवश्यमेव महामन्!

जयदेव– सब नरेश उपस्थित हैं आचार्यश्री! कुलूटराज चित्रवर्मा, काश्मीर नरेश पुष्कराक्ष, मलय नरेश सिंहनाद, सैंधवराज सिंधुषेण आदि सभी पधार रहे हैं। मैंने उनके जलपान आदि की व्यवस्था कर दी है। पालक वहीं उपस्थित है। वही सबको साथ लेकर आयेगा।

चन्द्रगुप्त– ये लगभग सभी मेरे विरोधी हैं आचार्यश्री!

चाणक्य– तो क्या हुआ वत्स! हम तो पहिले ही कह चुके हैं कि हमें नीति पूर्वक इन्हें मिला लेना है अन्यथा... (पालक के साथ सभी नरेशो का प्रवेश, सभी चाणक्य को नमस्कार करते हैं)

चाणक्य– (आशीर्वादात्मक हाथ फैलाते हुये) कल्याण हो आयुष्मानो! विश्राम करें आप सब।

चित्रवर्मा– नहीं गुरुवर! हम सबको आपके वचन सुनने की उत्सुकता है।

चाणक्य– (मुस्कराते हुये) ठीक है। फिर भी राह की थकान तो मिटा लें। मंत्रणा हेतु तो हमने आपको आमन्त्रित किया ही है।

सिंधुषेण– आपका आदेश पाते ही हम तुरन्त चल पड़े।

पुष्कराक्ष– आदेश क्या था मानों अधिपत्र ही आया हो।

सिंहनाद– फिर विलम्ब को स्थान ही कहाँ था शीघ्रातिशीघ्र आपकी सेवा में उपस्थित होने का उपक्रम किया है।

चाणक्य– समय पर आप सबने पहुँचकर हमारी बात रख ली। हमें अत्यन्त प्रसन्नता है।

चन्द्रगुप्त– (सब नरेशों से) मैं आपसे पुनः सानुरोध निवेदन करूँगा कि विश्राम करने के पश्चात् वार्तालाप प्रारम्भ करें।

चित्रवर्मा– आप निश्चिन्त रहें कुमार चन्द्रगुप्त! वार्ता प्रारम्भ हो।

सिंहनाद– बुलावे के साथ ही जिसकी जिज्ञासा जाग गई है कुमार चन्द्रगुप्त! उसकी तृप्ति में बाधक न बनें।

चन्द्रगुप्त– ओह! आप मुझे गलत न समझें मलयराज! जितनी जिज्ञासा आप सबको है, उतनी ही मुझे भी।

चाणक्य– समस्या गम्भीर है पर्वत नरेशो! हमने आप सबको इसलिये एकत्रित किया है कि आर्यावर्त को बर्बर विदेशी आक्रमणकारी की ओर से चुनौती मिली है। दो मार्ग अपनाये जा सकते हैं। चुनौती स्वीकार की जाये या आधीनता स्वीकार कर स्वतन्त्रता को सदैव के लिये विदा कर दिया जाये।

सिंधुषेण– (जोश में) जीवन के अन्तिम क्षणों तक स्वतन्त्रता को विलग नहीं कर सकते आचार्य!

सिंहनाद– हम निर्जीवों की तरह जीवित नहीं रह सकते।

चाणक्य– चुनौती स्वीकार करना कठिन है। अलक्षेन्द्र की विजयवाहिनी उत्तरापथ रौंदती हुई चली आ रही है। उससे लोहा लेना साधारण कार्य नहीं।

सिंहनाद– कुछ भी हो, हम भी भारतीय सिंह हैं। भारतीय पौरुष कभी भय से पीछे नहीं हटा गुरुवर!

चाणक्य– (प्रसन्नता से) साधुवाद नरेशों हमें तुमसे ऐसी ही आशा थी। हमारा यही कर्त्तव्य है कि हम देश की रक्षा कर अपनी संस्कृति, अपने धर्म को बचा लें।

चन्द्रगुप्त– हमारे जीते जी यवनसत्ता क्षण भर भी नहीं ठहर सकती। मैं अपनी प्रतिज्ञा पुनः दोहराता हूँ।

पुष्कराक्ष- आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो कुमार! फिर भी प्रत्येक प्रतिज्ञा विचार पूर्वक ही करना योग्य है।

चन्द्रगुप्त- धृष्टता क्षमा करें वृद्धजन! क्या आग लगने पर उसे बुझाने के लिये विचार करना उचित होगा अथवा शमन का तात्कालिक प्रयोग?.... आप सबका सहयोग तो मिलेगा ही।

चित्रवर्मा- क्यों नहीं, क्यों नहीं! पर एक बात विचारणीय है। (सब एकटक चित्रवर्मा का मुँह देखते हैं)। हम सब छोटे-छोटे राजा हैं। अलक्षेन्द्र की सैनिक शक्ति बढ़ी-चढ़ी है। हमारी मुट्ठी भर सेना कुछ घड़ियों के संघर्ष में नष्ट हो जायेगी।

पुष्काराक्ष- तब जीत तो होगी नहीं, उलटे बुरी तरह परास्त ही होंगे।

सिंधुषेण- यदि आप इस तरह मन कच्चा करेंगे तब हम अकेले ही क्या कर सकेंगे? तनिक साहस करें।

पुष्कराक्ष- (किंचित् रोषपूर्वक) आप मुझ पर साहसहीन होने का आरोप नहीं लगा सकते सैंधवराज! मैंने भी कई युद्ध जीते हैं।

सिंधुषेण- (सरोष हो) तब फिर क्यों...?

चाणक्य- शांत हों सैंधवराज! शांत हों (पुष्कराक्ष से)

चित्रवर्मा- मेरे विचार में यदि मगध नरेश से सहायता ली जावे तो कैसा रहे?

चन्द्रगुप्त- मैं आदरणीय आचार्यश्री से निवेदन करना चाहूँगा कि यदि वे उचित समझें तो मगध नरेश से हुई वार्ता के निष्कर्ष से सभा को अवगत करायें।

चाणक्य- अवश्यमेव वत्स! (विचारकर) सभी जन सावधान

होकर सुनें। हम बड़ी आशायें लेकर मगध सम्राट् के द्वार पर गये। हमने अपने व्यक्तिगत विद्वेष को समग्र भारत के हित में भुला दिया। (दुखित हो) पर हमें निराशा, घोर निराशा हाथ लगी। धनानंद आदि सभी राजकुमार अपने वैभव में मस्त हैं। गजसेना विशाल है। सम्प्रति वह अजेय है, उन्हें आर्यावर्त की तनिक भी चिंता नहीं। हमें अपनी ही सामर्थ्य पर रक्षा करनी होगी।

सिंहनाद– समस्या जटिल है। जब मगध जैसे वैभवशाली राज्य ने तटस्थता धारण कर ली तो... कोई बात नहीं, समय आने पर देखा जायेगा, निपटेंगे।

चित्रवर्मा– मलयराज अलक्षेन्द्र की सेना विशाल है। उसे जीतना हँसी-खेल नहीं। निरन्तर मिलती हुई विजय उसके दर्प को बढ़ावा दे रही है।

चन्द्रगुप्त– किन्तु पौरवराज ने उसे बुरी तरह परास्त कर दिया है। उसने अनुभव किया कि भारतीयों से युद्ध करना टेढ़ी खीर है।

चित्रवर्मा– तब फिर पौरवराज से ही सहायता की याचना की जाये।

सिंहनाद– (जोश पूर्वक) नहीं! हम याचक वृत्ति ग्रहण नहीं करेंगे।

चाणक्य– यह भिक्षा नहीं है सिंहनाद! यह एक-दो मनुष्यों का नहीं, दो-चार ग्राम का नहीं, समस्त आर्यावर्त की रक्षा का प्रश्न है। अपनी संस्कृति की मर्यादा है। भिक्षा और सहायता में अन्तर है।

सिंधुषेण– तब क्या हम याचक वृत्ति ही अपनायें।

चन्द्रगुप्त– काश! गुरुदेव का कथन आप समझ पाते। यह व्यक्तिगत प्रश्न नहीं, सार्वभौमिक है। विदेशी शत्रु से रक्षा करने के लिये यदि हमें अपने ही देशवासियों से सहयोग लेना पड़े तो समस्त विद्वेषों को भुलाकर सहयोग वांछनीय है।

जयदेव– यही उचित भी है। यदि हम मान-अपमान के चक्कर में

पड़े रहेंगे तो अनेक विभक्त लघु राज्यों के कारण देश की रक्षा असंभव हो जायेगी।

पुष्कराक्ष– (व्यंग्य से) तो क्या आप लघु राज्यों का अस्तित्व नष्ट करना चाहते हैं।

चाणक्य– ऐसी बात नहीं है आर्य पुष्कराक्ष! राज्य सानंद रहे परन्तु इस बात का अनुमान तो आप भी लगा सकते हैं यदि समग्र आर्यावर्त में एक ही ध्वजा लहराती, उत्तर से दक्षिण, प्राची से प्रतीची तक सुसंगठित एक विशाल राज्य होता तो क्या उसकी शक्ति अजेय न होती? लघु राज्य भी निजी स्वतन्त्रता का सानंद उपभोग करते एवं विदेशी शत्रु इस धरा पर पैर रखने का कभी दुस्साहस भी न करते।

सिंधुषेण– आचार्यश्री का कथन यथार्थ है। विभक्त लघु राज्य एक-एक कर शत्रु हड़प सकता है जबकि संगठित शक्ति से लोहा लेना उसे दुर्निवार होगा।

जयदेव– संगठित होने में ही हमारा कल्याण है।

चाणक्य– प्रतिज्ञा करें कि हम सब एक हैं। एक राष्ट्र, एक ध्वजा, एक संस्कृति। इनकी रक्षा करना हमारा एकमात्र ध्येय है।

चन्द्रगुप्त– सब पार्वत्य प्रदेशों के नरेन्द्रों से आग्रह है कि वे सब एकत्रित होकर अलक्षेंद्र की विजयवाहिनी से सामूहिक लोहा लें।

सिंधुषेण– तब तक पंचनद नरेश पौरवराज के पास सहयोग हेतु संदेश भेजा जाये।

चाणक्य– उनका भी सहयोग असंभव है। पौरवराज शत्रु से संधि कर चुके हैं (गम्भीरता से) औ....र संधि विच्छेद का भी हम प्रयत्न कर चुके हैं आर्यो! पौरवराज से किसी प्रकार की आशा भी दुराशा है। (सब मुँह बाये

अवाक् से रह जाते हैं)

चित्रवर्मा– विजित होकर भी संधि गुरुदेव! असंभव सा लग रहा है। एक–दूसरे से विरुद्ध दोनों बातें एक साथ घटित कैसे हो सकती हैं?

सिंहनाद– हाँ आचार्य! धरती और आकाश दोनों का मिलन कहाँ संभव है?

चाणक्य– भूलते हैं आर्यगण! क्षितिज एक ऐसा ही स्थान है।

सिंधुषेण– वह सत्य नहीं, कल्पना है आचार्यश्री!

चाणक्य– कभी–कभी काल्पनिक सत्य का भी आश्रय लेना पड़ता है सैंधवराज! पौरवराज शरणार्थी शत्रु की प्रार्थना पर संधि के अनुसार वे अपनी राज्य सीमा तक अलक्षेन्द्र के सहायक व रक्षक रहेंगे।

पुष्कराक्ष– इस संधि के विषय में आपकी क्या सम्मति है?

चाणक्य– कुछ भी कहो आर्य पुष्कराक्ष! यह संधि भारत के लिए अहितकर सिद्ध होगी। इसमें पौरवराज का भी स्वार्थ निहित है।

चन्द्रगुप्त– सो तो है ही। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि अचलांचल का एक साहसी नरेश हमसे छिन गया। वीरों में एक की गणना और कम हुई। किन्तु हमें हतोत्साहित न होते हुये द्विगुणित उत्साह से अपने ध्येय में जुट जाना चाहिये ताकि शत्रु के साथ तटस्थ भारतीय नरेश भी हमारे युद्ध कौशल से आतंकित एवं स्तम्भित हो उठें।

सिंधुषेण– सुना है आंभी भी अलक्षेन्द्र के साथ है।

जयदेव– अरे! किस अधम का नाम ले लिया आपने! वह तो भारत भाल का अमिट कलंक है आर्य!

चन्द्रगुप्त–(व्यंग्य से मुस्कराते हुये) इस युद्ध में वह क्रीतदास[1]

1. गुलाम

नराधम देशद्रोही आंभी भी अपने किये का फल पा जायेगा।

चाणक्य- अब बतलाइये आप सबने क्या निर्णय लिया? हमने कुल परिस्थिति आपके सामने स्पष्ट कर दी।

सिंहनाद- हम सब आपके साथ हैं आचार्य! अपनी मातृभूमि से शत्रु को मार भगाना ही होगा वरना हम पराधीन होकर अपनी माता भगिनियों को कैसे मुँह दिखलायेंगे। (अन्य नरेशों की ओर देखकर) आप सब भी अपनी सम्मति दें। (सब स्वीकारात्मक सिर हिलाते हैं)।

चाणक्य- एक और शुभ संवाद आपको दे दूँ। यहाँ आस-पास की कुछ क्षुल्लक मानव अश्वक आदि जातियाँ कार्षापण[1] देकर अपनी ओर मिला ली हैं। आप सबको विदित ही है कि वे धन के लोभ में आकर धनदाता की सहायता में प्राणपन से जुट जाती हैं। यहाँ आते-जाते इन जातियों से उसे कई बार जूझना होगा एवं उसे भारी क्षति उठाना पड़ेगी।

पुष्कराक्ष- हाँ, वे अपनी स्वामीभक्ति और वीरता के लिये प्रसिद्ध हैं। हम लोग सहर्ष आपके साथ हैं।

चित्रवर्मा- आचार्यश्री! आप महान् दूरदर्शी व राजनीतिज्ञ हैं। सचमुच राष्ट्र रक्षा में आपका अद्वितीय योगदान है।

जयदेव- समस्त आर्य नरेशों से हम जानकारी चाहेंगे कि इस पुण्य-यज्ञ में वे कितनी-कितनी धनराशि की आहुति दे सकेंगे? (सब बगलें झाँकने लगते हैं)

चाणक्य- अधिक विचार न करें आर्यो! कोई बंधन नहीं। आपकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। हम केवल आपसे तन-मन-वचन से सेना सहित

---

1. प्राचीन भारत में प्रचलित एक प्रकार का सिक्का जो ताँबा, सोना या चाँदी का बनता था।

सहयोग के इच्छुक हैं।

सिंहनाद– आपकी सद्भावना पर हम शत्–शत् बार न्योछावर हैं आचार्यश्री! आप अद्वितीय जीवट के धनी हैं। हम अपने राज्य में जाकर वित्त–मंत्री व महामात्य से परामर्श कर अवश्य यथाशक्य आपका हाथ बँटायेंगे। किसी भी उत्सर्ग के लिये हम प्रस्तुत हैं गुरुदेव!

शेष समस्त नरेश– हम वचन देते हैं आचार्य!

चाणक्य– साधु, साधु आर्य पुरुषो! एक बात की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ कि यदि इस युद्ध में जय प्राप्त करना है तो अविलम्ब अपनी–अपनी सेना को यूनानी पद्धति से सैनिक प्रशिक्षण देना अनिवार्य होगा। वरन् विजय प्राप्ति की आकांक्षा धूल चाटती दृष्टिगत होगी।

सभी नरेश– (आश्चर्यान्वित हो समवेत स्वर में) यूनानी पद्धति से!

चन्द्रगुप्त– हाँ, चिन्ता में न पड़ें महापुरुषो! प्रशिक्षण मैं दूँगा। यह सेवा कार्य कर अपने को सौभाग्यशाली समझूँगा।

सिंधुषेण– तो क्या आप...

चाणक्य– (बात काटकर) हाँ, कुमार चन्द्रगुप्त को हमने अलक्षेंद्र की सेना में गुप्त रीति से प्रशिक्षित होने के लिये भेजा था, जो कि सफल रहा।

सिंहनाद– (प्रसन्नता पूर्वक) हम बधाई देते हैं कुमार! आपकी सफलता पर! आशा है उत्तरोत्तर उन्नति के उत्तुंग सौध[1] पर पहुँच जाओ। (सभी हर्ष व्यक्त करते हैं)

चाणक्य– तो फिर हम सप्ताहांत तक आपकी सेना के आगमन की प्रतीक्षा करें?

चित्रवर्मा– इससे भी शीघ्र मेरी सेना आ जायेगी।

1. ऊँचा महल

सिंहनाद– मैं अपनी सेना लेकर स्वयं उपस्थित हो जाऊँगा।

सिंधुषेण– मैं भी शीघ्रातिशीघ्र आने का प्रयत्न करूँगा।

पुष्कराक्ष– मुझे कुछ विलंब होगा पर आऊँगा अवश्य।

सिंहनाद– अब लौटने की अनुज्ञा दें आचार्यश्री! ताकि हम शीघ्र आपकी सेवा में पुनः उपस्थित हो सकें।

चाणक्य– (प्रसन्नता से विदा देते हुये) हाँ, आप सब जा सकते हैं आर्य नरेशो! अपने वचनों का ध्यान रखें।

सिंधुषेण– यह भी क्या? आर्यों को स्मरण कराना पड़ता है आचार्य! (मुस्कराते हैं)।

(सबमें परस्पर नमस्कार का आदान-प्रदान होता है। चाणक्य आशीर्वाद देते हैं।)

(नरेशों का प्रस्थान)

चाणक्य– जयदेव! गणक को बुलाओ, उसे कुछ आवश्यक कार्य समझाना है।

जयदेव– जी। (जाता है)

चाणक्य– वत्स चन्द्र! सारी सेनाओं की बागडोर तुम्हारे हाथ है। नियंत्रित सेनायें तुम्हें यहाँ विजय दिलायेंगीं और भविष्य में यह परिचय मगध साम्राज्य को जीतने में बड़ी भारी सहायता देगा।

चन्द्रगुप्त– (नतमस्तक) मेरे पथप्रदर्शक आचार्यश्री सब आपका ही आशीर्वाद है।

जयदेव– (गणक को साथ लाकर) आर्य गणक उपस्थित है महामन्!

गणक– (करबद्ध) आचार्यदेव को करबद्ध नमस्कार है।

चाणक्य– (प्रसन्न हो) सुखी रहो वत्स! बैठो।

गणक– (बैठते हुये) बहुत समय पश्चात् आज कुमार चन्द्रगुप्त से भी भेंट हो गई।

चन्द्रगुप्त– हाँ बन्धु! बहुत दिनों बाद मिले। कुशल तो है।

गणक– सब आप लोगों की कृपा है बन्धु!... आज्ञा गुरुदेव!

चाणक्य– गणक! इस युद्ध में तुम्हें महत्वपूर्ण भूमिका सौंप रहे हैं। कुशलता पूर्वक निर्वाह करना होगा।

गणक– अभिप्राय स्पष्ट करें आचार्यश्री! भली-भाँति उत्तरदायित्व निभाते हुये आदेश का पालन प्राणपन से करूँगा।

चाणक्य– अलक्षेंद्र की सेना को लड़ाई से विमुख कर दो ताकि वह युद्ध से विरत हो जाये।

गणक– एवमस्तु देव!

चाणक्य– जितने शीघ्र यह कार्य कर सको, कर डालो। ज्यों ही अलक्षेन्द्र पौरवराज की सीमा से बाहर हों त्यों ही तुम अपना षड्यन्त्र प्रारम्भ कर दो। समझे!

गणक– ऐसा ही होगा। आश्वस्त हों आचार्यश्री!

जयदेव– (विनोद करते हुये) सावधान रहें ज्योतिषी जी! ग्रह नक्षत्र उलटे न पड़ें।

चन्द्रगुप्त– वाह, पंडित गणकराय कोई ऐसे-वैसे ज्योतिषी थोड़े ही हैं। वे अपना मुहूर्त्त पहिले ही देख लेते हैं। है न बन्धु!

गणक– (हँसते हुये) और क्या... अच्छा बंधु! फिर मिलेंगे। नमस्कार गुरुदेव! (हाथ जोड़ते हैं)

चाणक्य– शतम् जीवेत् वत्स!

पटाक्षेप

[दृश्य-सोलहवाँ]
अलक्षेन्द्र का शिविर
स्थान- इरावती नदी के तट का पश्चिमी भाग
समय- दिन का चतुर्थ प्रहर, राजसभा

(अलक्षेन्द्र अपने शिविर में सिंहासन पर बैठा है। महासेनाध्यक्ष शैलाक्ष पास ही आसंदी पर आसीन हैं। उसी के पास उसकी प्यारी पुत्री हेलन भी बैठी है और भी काष्ठासन हैं जिन पर अन्य सेनाध्यक्ष सामान्तगण विराजमान हैं। दो सैनिक गणकराय को पकड़ कर लाते हैं। गणकराय ज्योतिषी के वेश में है। वह उत्तरीय ओढ़े हैं। मस्तक पर चन्दन का तिलक है। वे कृत्रिम श्याम श्वेत मिश्रित केशों को धारण किये हैं। इन्हीं केशों के कारण वे अपनी आयु से अधिक लग रहे हैं। उन्हें अपनी नक्षत्र विद्या पर अभिमान है। उनकी भविष्यवाणी कभी मिथ्या नहीं होती। वह हाथ में एक ग्रंथ लिये है)

(गणकराय सहित सैनिक का प्रवेश)

सैनिक- (दोनों सैनिक अभिवादन करते हैं) सम्राट! यह भारतीय संदिग्ध अवस्था में घूमता हुआ पकड़ा गया है। यह जादू भी जानता है।

अलक्षेन्द्र- (गणकराय से) कौन हो तुम? यहाँ क्यों आये हो?

गणकराय- मैं भारतीय हूँ सम्राट! यहाँ आप के सैनिक बलात् पकड़ लाये हैं। मैं अकेला निरस्त्र था, विवश हो आना पड़ा।

अलक्षेन्द्र- (किञ्चित् क्रोध और मुस्कराहट पूर्वक) यहाँ आने की नहीं भारतीय! हम जानना चाहते हैं कि तुम शिविर में कैसे और क्यों आये?

गणकराय- (निर्भीकता से) मैंने निवेदन किया न सम्राट्! कि मैं स्वयं आपके शिविर में कोई प्रयोजन से नहीं

आया। इरावती के तट पर बैठा था कि ये लोग मुझे जबरन ले आये।

अलक्षेन्द्र- तट पर क्या कर रहे थे?

गणकराय- सम्राट! हम भारतीय हैं। भारत के ही क्षेत्र में बैठे थे। अपने घर में बैठना अपराध तो नहीं।

शैलाक्ष- तुम जानते नहीं कि यह शिविर विश्व विजयी सम्राट अलक्षेन्द्र का है? क्या तुम्हें अपने प्राण प्यारे नहीं हैं?

गणकराय- प्राण सभी को प्रियातिप्रिय हैं सम्राट! मुझे भी हैं पर तभी तक, जब तक इन प्राणों से हमारी संस्कृति व प्रतिष्ठा में आँच न आवे, इनकी रक्षा हो।

अलक्षेन्द्र- हूँ... ठीक है किसकी ओर से तुम गुप्तचर का कार्य कर रहे हो?

गणकराय- (हँसते हुये) मैं! और गुप्तचर? सम्राट! मैं गुप्तचर नहीं, स्वतन्त्र हूँ, स्वतन्त्र हमारी जीविका है।

सैनिक- यह जादूगर है सम्राट!

गणकराय- मुझे ऐसा लग रहा है जैसे यहाँ पदवीदान समारोह मनाया जा रहा है। उसी में मुझे भी मुक्त मन से पदवियाँ दी जा रही हैं।

शैलाक्ष- क्या तुम जादूगर नहीं हो?

गणकराय- ये जादूगरों का देश नहीं महोदय! वीरों का देश है।

अलक्षेन्द्र- (व्यंग्य से) तो क्या वीरों की सज्जा ऐसी ही होती है।

गणकराय- निश्चय ही ऐसी नहीं होती सम्राट! किन्तु वीरों का धर्म यह तो नहीं कि अकारण ही यत्र-तत्र-सर्वत्र संघर्ष में तत्पर रहें। हम क्षात्र धर्मी मारने के लिए नहीं अपितु केवल मर्यादा की रक्षार्थ ही शस्त्र ग्रहण करते हैं। साधारणतः हम शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने के अभ्यासी मानवतावादी हैं। हमें विस्तारवादी नीति प्रिय नहीं। प्राप्य में ही सन्तुष्ट रहते हैं।

पहला सैनिक- सम्राट! यह जादू से अपने यूनान देश की बात बतलाता है।

दूसरा सैनिक- कल इसने बहुत से साथियों को उनके परिवार सम्बन्धी सभी बिल्कुल सत्य बातें बतलाईं हैं।

गणकराय- (जोर से हँसते हुये) ओह! यही कारण है मुझे जादूगर कहने का। (पुनः हँसता है)।

शैलाक्ष- यह राजसभा है भारतीय! सम्राट की मर्यादा रखना तुम्हारा धर्म है।

गणकराय- आपके सैनिकों की मूर्खता पर मुझे विवश हो हँसी आ रही है। (सैनिकों से) अरे भाई! मैं जादूगर नहीं, ज्योतिषी हूँ, ज्योतिषी। समझे, भविष्यवेत्ता। सम्राट से मुझे क्या लेना देना? हमारे लिये तो राजा-रंक सब समान हैं।

हेलन- (उत्सुकता पूर्वक) क्या हमारा भी भविष्य बतला सकते हो?

गणकराय- अवश्य राजकुमारी। हमारा कार्य ही यही है।

हेलन- सच-सच बतलाओगे न!

गणकराय- हाँ, हाँ एकदम सत्य। अपना बायाँ हाथ दिखलायें। (हेलन हाथ फैला देती है, गणकराय हाथ देखते हैं। उनकी मुखमुद्रा प्रसन्नता से खिल जाती है) राजकुमारी! सच-सच बतलायें आपको, भारत से प्रेम हो गया है न!

हेलन- (आश्चर्य पूर्वक मुस्कराते हुये) हाँ... तुमने कैसे जाना?

गणकराय- आपकी रेखायें कह रही हैं।

हेलन- अच्छा, क्या हाथ की रेखायें हृदय की बातें भी बतला देती हैं? (हाथ खींच लेती है)

गणकराय– हाँ राजकुमारी! इसके द्वारा संपूर्ण जीवन पढ़ लिया जाता है। आप मृदु स्वभाव की उच्चाकांक्षा वाली नारी हैं। आप युद्ध से घबराती हैं। शांतिप्रिय हैं। अरे हाथ क्यों खींच लिया राजकुमारी?

हेलन– नहीं, नहीं अब मैं कुछ नहीं पूछना चाहती! तुम मेरे मन की गुप्त बातें भी जान जाओगे।

शैलाक्ष– ज्योतिषी! कन्या के विवाह आदि के विषय में बतलाओ?

गणकराय– क्षमा करें महोदय! राजकुमारी के विषय में उनकी इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ नहीं बतला सकता। इतना ही जान लीजिये कि आपकी कन्या सुखमय जीवन व्यतीत करेगी। उनकी सभी अभिलाषायें पूर्ण होंगी। चंद समय पश्चात् ये आजीवन भारतवर्ष में ही रहेंगी। विश्वविश्रुत हो ऐतिहासिक नारियों में इनका सम्मानपूर्ण स्थान रहेगा।

शैलाक्ष– हमारे सम्राट के विषय में बतलाओ।

गणकराय– अवश्यमेव! पर एक शर्त के साथ।

शैलाक्ष– दक्षिणा की ओर से निश्चिन्त रहो ज्योतिषी!

गणकराय– (हँसकर) इस ओर से हम भारतीय सदैव निश्चिन्त रहते हैं महानुभाव!

अलक्षेन्द्र– तब फिर?

गणकराय– वह यह कि जीवन अच्छी बुरी घटनाओं का मिश्रण है। भविष्यवेत्ता को अपने सत्य की रक्षार्थ प्रियाप्रिय सभी बातें सामने रख देनी होती है। संभव है कोई दुःखप्रद घटना की भी जानकारी देनी पड़े। अस्तु...

अलक्षेन्द्र– (हँसकर) सब कुछ कह सकते हो ज्योतिक! तुम अभय हो। जो विश्वविजय के लिये निकला है उसका हृदय मोम का नहीं, वज्रमयी है। हम भी प्रियाप्रिय सभी वचन पी जाने की क्षमता रखते हैं।

गणकराय– तब मैं आश्वस्त हुआ सम्राट! महत्वाकांक्षियों का हृदय

भी महान् होना अनिवार्य है। अपना दाहिना हाथ दिखायें सम्राट! (हाथ देखकर आश्चर्य चकित होता है) आपकी रेखायें अत्यन्त सुस्पष्ट हैं। आप विश्वविजेता नाम सार्थक कर रहे हैं।

अलक्षेन्द्र– इसमें कोई नई बात नहीं। यह बतलाओ कि भारत अभियान कब समाप्त होगा?

गणकराय– (दृढ़ता से) कभी नहीं।

अलक्षेन्द्र– अर्थात्...

गणकराय– यही कि भारत को विजित नहीं बना सकेंगे आप। आपकी इच्छा फलवती न हो सकेगी सम्राट्!

अलक्षेन्द्र– (किंचित् उत्तेजित हो) गलत...

शैलाक्ष– सोच समझकर भविष्यवाणी करो ज्योतिक!

गणकराय– अच्छी तरह विचार चुका हूँ श्रीमान्! जानता हूँ इस समय मैं विश्वविजयाकांक्षी यूनान सम्राट अलक्षेन्द्र के सम्पूर्ण अधिकार में हूँ। यह भी जानता हूँ कि वे चाहें तो क्षणमात्र में मेरा गला उतरवा सकते हैं। पर इसके कारण मिथ्या वचनों का आश्रय तो नहीं ले सकता।

शैलाक्ष– एक बार पुनः आप विचार करें। कदाचित्.....

गणकराय– (बात काटकर) कभी नहीं श्रीमान्! कभी नहीं। अभी भारत के भाग्याकाश के नक्षत्र अस्त नहीं हुये हैं। विदेशियों के हाथ में नहीं जायेगा वह। आप चंद समय पश्चात् अपने देश लौट जायेंगे।

अलक्षेन्द्र– (घृणा से होंठ बिचकाकर) झूठा है तुम्हारा ज्योतिष, मिथ्या है तुम्हारा ज्ञान। मुझमें भाग्य को परिवर्तित करने की सामर्थ्य है भारतीय! हम निश्चय ही भारत विजय करेंगे।

गणकराय– (असावधानी से) हो सकता है परन्तु मैं भी भविष्य को

दर्पण की तरह प्रत्यक्ष देखता हूँ सम्राट! यदि आपने आगे बढ़कर युद्ध करने का दुस्साहस किया तो स्मरण रखें कि आपको भयानक क्षति उठाना पड़ेगी। संभवत: आपका जीवन संकटमय स्थिति में आ सकता है।

अलक्षेन्द्र– हम तुम्हारी बातों से भीत होकर लक्ष्य पूरा किये बिना लौट नहीं सकते। हमारा अभियान चलता रहेगा।

शैलाक्ष– जानते हो ज्योतिषी! हमारे यूनान के ज्योतिकों ने सम्राट के विषय में क्या कहा?

गणकराय– क्या कहा है?

शैलाक्ष– यही कि सम्राट अवतारी महापुरुष हैं और अभी तक उन्होंने जो अद्‌भुत कार्य किये हैं उनसे इस कथन की पुष्टि होती है।

गणकराय– धृष्टता क्षमा करें महोदय! अवतारी महापुरुष कभी पराजित नहीं होते। हाँ, यह मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं कि सम्राट् असाधारण मानव हैं निर्भीक और साहसी। फिर भी आप विचार कर ही आगे बढ़ें। (धीरे से) एक और सूचना दे दूँ कि वर्तमान में कुछ ग्रह नक्षत्र ऐसे वक्री चल रहे हैं कि आपकी सेना में विप्लव हो जाने की संभावना है। सावधान रहें। अच्छा अब मुझे प्रस्थान करने की आज्ञा दीजिये। (हँसते हुये) मैं अपने को मुक्त समझूँ न।

सम्राट– तुम जा सकते हो भारतीय! पर हाँ सुनो! कभी एकांत में मिलना।

गणकराय– अवश्यमेव सम्राट्! आपके अनुग्रह का आभारी हूँ। प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर। धन्यवाद।

(प्रस्थान)

पटाक्षेप

[दृश्य-सत्रहवाँ]

युद्धस्थल का दृश्य

(चंद्रगुप्त सैनिक वेश में है। साथ में सेनाध्यक्ष जयदेव है। अभी युद्ध प्रारम्भ होने में विलम्ब है। यत्र-तत्र सैनिक गुल्म बैठे हुये वार्तालाप में निमग्न हैं। बीच-बीच में मारु वाद्य बज उठते हैं जो युद्धरत सैनिकों को उत्साह दिलाते हैं। सैनिक गुल्म में चंद्रगुप्त व जयदेव का प्रवेश। सैनिकगण कुमार चंद्रगुप्त को सैनिक ढंग से अभिवादन करते हैं)

चंद्रगुप्त- (अभिवादन का प्रत्युत्तर देते हुये) युद्ध प्रारम्भ होने में कुछ ही क्षण शेष हैं सैनिको! आज हम सबकी परीक्षा का अवसर है; अतः धैर्य और साहस से हमें शत्रु का सामना करना है ताकि हमारी भारतभूमि परतन्त्रता के पाश में न बंध सके।

सैनिकगण- (समवेत स्वर में) हम शत्रु को भगाकर रहेंगे कुमार! हम जी जान से उन पर टूट पड़ेंगे।

चंद्रगुप्त- साधुवाद सैनिको! साधुवाद! तुम अपने देश के अनुरूप ही जोशीले और साहसी हो। भला तुम जैसे वीरों की मातृभूमि कभी पराधीन हो सकती है?

सैनिकगण- कभी नहीं, कभी नहीं।

चंद्रगुप्त- स्मरण रहे कि हमें शत्रु के विध्वंस हेतु नहीं, वरन् अपनी संस्कृति की रक्षार्थ, अपने कर्त्तव्य पालन हेतु शस्त्र उठाना अनिवार्य हो गया है।

जयदेव- हाँ कुमार! बर्बर शत्रु को समूल नष्ट कर देना ही उचित है। 'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'।

चंद्रगुप्त- भूलते हो जयदेव, अरे अरे सेनाध्यक्ष! (मुस्कराते हैं)

जयदेव- तुम्हारे लिये तो सदैव जयदेव ही हूँ कुमार! कहो क्या

कहना चाहते हो?

चंद्रगुप्त– यही कि हमें शत्रु की बर्बरता को रोकना है। हमारा उद्देश्य उसे नष्ट करना नहीं अपितु उसकी पाशिवक वृत्ति को समाप्त करना है। यदि वह सच्चे अर्थों में मानव बनकर रहे तो हमें कोई विरोध नहीं होगा। आओ हम सब एक बार शत्रु की मंगल कामनार्थ प्रभु से प्रार्थना करें कि वे उसे सद्बुद्धि प्रदान कर उसका पथ प्रशस्त करें।

जयदेव– धन्य है राजन्! आपका उदार व्यक्तित्व। शत्रु के लिये भी मंगल कामना! कितने उत्कृष्ट विचार। प्रभु कृपा से आप अपने सुकार्यों से विश्व को चमत्कृत कर देंगे।

चंद्रगुप्त– भावुक न बनो जयदेव! यह रणभूमि है।

जयदेव– रणभूमि है सबके लिए, आपके लिये तो कर्मभूमि है। जहाँ आप किन्हीं आदर्श सिद्धान्तों का पालन करने के लिये तत्पर हैं।

चन्द्रगुप्त– मानवता का यही आह्वान है जयदेव! यदि हम किंचित् भी कर्त्तव्यरत हो सके तो जीवन में सुख-शान्ति पाने के अधिकारी हो सकेंगे।

जयदेव– उचित है कुमार! आपका व्यक्तित्व ही मुझे विवश हो मुखर बना देता है। एक ओर जब हिंसा पर नर्त्तन[1] करने वाले अलक्षेन्द्र के विनाश के गीत गाये जायेंगे, तब दूसरी ओर अजस्र स्नेह की धारा प्रवाहित करने वाले महापुरुष चंद्रगुप्त की विशालता का मधुर संगीत युग-युग तक झंकृत होता रहेगा।

(नेपथ्य में)

चंद्रगुप्त– ये कैसी आवाज आ रही है?

---

1. नृत्य करना

जयदेव– अव्यवस्था सी लग रही है।

चंद्रगुप्त– चलो देखें क्या बात है? (दोनों का प्रस्थान)

पहला सैनिक– अपनी सेना में सदा ही गर्जन–तर्जन होता रहता है। ऐसा लगता है जैसे प्रत्येक वीर को अपनी–अपनी वीरता दिखलाने की धुन लगी हो।

दूसरा सैनिक– हमारी सेना का उत्साह देखकर शत्रुओं की तो नानी मर गई है। अलक्षेन्द्र अपनी सेना में जैसे मुर्दों को ले आया है। वीरों की हुंकार सुनाई ही नहीं पड़ती।

तीसरा सैनिक– क्या खाकर हुंकारेंगे मित्र! बेचारे स्वदेश के लिए व्यग्र हो उठे हैं। अपने परिवार से बिछुड़े उन्हें अयन पर अयन निकलते जा रहे हैं। वह अलक्षेन्द्र युद्ध का भूखा ही रहा। इतनी नृशंस हत्यायें करके भी उसकी क्षुधा को तृप्ति नहीं मिली।

चौथा सैनिक– अलक्षेंद्र के विषय में तो अत्यन्त घृणित नीचतापूर्ण बातें सुनाई पड़ती हैं। उन कृत्यों से ऐसा जान पड़ता है जैसे वह मानव नहीं भयंकर हत्यारा है।

तीसरा सैनिक– अरे मित्र! दानव भी अपनों से ममता रखता है, पर यह तो उससे भी गया बीता है।

दूसरा सैनिक– क्यों ऐसी क्या बात है?

चौथा सैनिक– तुम तो मित्र कूपमंडूक ही रहे। अलक्षेन्द्र की काली करतूतों से अनभिज्ञ भला कौन बुद्धिजीवी होगा?

पहला सैनिक– (हँसकर) परन्तु हम बुद्धिजीवी कहाँ, शस्त्रजीवी हैं।

तीसरा सैनिक– क्या कहें मित्र तुम्हें...

दूसरा सैनिक– अब कुछ न कहो बन्धु! बता ही दो।

तीसरा सैनिक– अलक्षेन्द्र अपने प्रतिद्वन्दियों के प्रति अत्यन्त कठोरता पूर्ण व्यवहार करता है। वैक्ट्रिया के राजभक्त सूबेदार को शृंखला से जकड़वाकर अपने सामने उसके नाक–कान कटवा कर मरवा डाला।

दूसरा सैनिक– अर्थात् आधीनता स्वीकार न करने का फल उसे ये मिला! आह बेचारा...

चौथा सैनिक– और तो और जिस गुरु ने शिक्षा देकर उसे सम्राट पद के योग्य बनाया। उसी के भतीजे कैलस्थनीज को शिकंजे में कसवा कर मरवा डाला।

पहला सैनिक– सचमुच बड़ा नीच है अलक्षेन्द्र। कैलस्थनीज का क्या अपराध था?

चौथा सैनिक– अपराध क्या था! सम्राट् की इच्छा के विरुद्ध एक शब्द निकालना भी अपराध है।

पहला सैनिक– 'राजा करे सो न्याय', **अधिकार व्यक्ति को उच्छृङ्खल बना देता है।**

तीसरा सैनिक– हाँ बन्धु!.... उसने क्लीटस की हत्या अपने हाथों कर डाली।

दूसरा सैनिक– यह क्लीटस कौन था?

तीसरा सैनिक– उसका मामा था मामा। क्लीटस उसकी पालनकर्त्री धाय का सहोदर था। इसने युद्ध में एक बार अलक्षेन्द्र के प्राण भी बचाये थे।

पहला सैनिक– (धिक्कारते हुये) रिश्ता न मानता पर उपकर्त्ता का वध!

चौथा सैनिक– एक नहीं ऐसे अनेकों उदाहरण हैं मित्र! उसने अपने पिता के विश्वासपात्र सेनाध्यक्ष पारमिनियन का वध करवा दिया।

दूसरा सैनिक– उफ् ओ! अर्थात् उसका जीवन क्रूरतापूर्ण रक्तपात

एवं हत्याओं से भरा पड़ा है।

पहला सैनिक– ऐसा सुनने में आया है कि वह विजित प्रदेशों में आग लगवा देता है।

तीसरा सैनिक– सचमुच ऐसे नीच शत्रु का तुरन्त नाश हो जाना अत्यावश्यक है। कदाचित् वह जीत गया तो समझो प्रजा की बड़ी दुर्दशा होगी।

चौथा सैनिक– कहाँ की बात कर रहे हो मित्र! वह जीतेगा कैसे? हम लोग क्या निर्बल हैं? इतना जबर्दस्त संगठन अभी तक भारत में नहीं हुआ।

पहला सैनिक– यह कुमार चंद्रगुप्त का ही कार्य है मित्र! उनका व्यक्तित्व सहसा सबका मन लुभा लेता है।

दूसरा सैनिक– सावधान मित्रो! कुमार चंद्रगुप्त की आज्ञा है कि आत्मरक्षार्थ ही शस्त्र उठाना है, आक्रमण के लिये नहीं। युद्ध में इस सिद्धांत की भी रक्षा की जावे।

पहला सैनिक– अरे भाई क्या अन्तर पड़ता है? शस्त्र लेना है और लड़ने के लिये उसका उपयोग भी करना है।

तीसरा सैनिक– तुम्हारा कथन यद्यपि उचित है तथापि दोनों भावनाओं में धरती आकाश का अंतर है।

चौथा सैनिक– वह कैसे?

तीसरा सैनिक– **आक्रमण हेतु शस्त्र उठाने में पूर्व संकल्प पूर्वक विचार उग्र एवं भयानक क्रूर होते हैं जबकि आत्मरक्षा में बुरे विचारों का पूर्व संकल्प न होकर हृदय में सरलता रहती है जो अपने विरोधी को नहीं उसके निकृष्ट कार्यों को समाप्त करने की ओर प्रेरित करती है।**

प्राणीमात्र को जीने का अधिकार है।

दूसरा सैनिक– जीने का अधिकार है तो जियें न! पर हमारे घर में घुसेंगे तो उन्हें मरना ही होगा।

चौथा सैनिक– यही तो अभिप्राय है कि सैनिक को 'शठं प्रति शाठ्यं' की नीति विवश हो अपनानी पड़ती है।

पहला सैनिक– मान लो बंधु! तुम्हारा ही कथन यथार्थ है।

(आगन्तुक सैनिक का प्रवेश)

तीसरा सैनिक– (आगन्तुक से) कहाँ से चले आ रहे हो बंधु!

आगन्तुक सैनिक– आज एक बड़ी विलक्षण घटना देखी बंधु!

सभी– वह क्या?

आगन्तुक– जब युद्ध के वाद्य तुमुल नाद करते हुये बज रहे थे, उसी समय एक हाथी वन्य प्रदेश से अचानक आकर कुमार चंद्रगुप्त के समक्ष पालतू पशु की भाँति खड़ा हो गया और शुन्डिका से कुमार को उठाकर अपनी पीठ पर बैठा लिया।

पहला सैनिक– सच! इसे ही सौभाग्य कहते हैं बन्धु!

आगन्तुक– हाँ मित्र! आचार्य चाणक्य ने इसको शुभ शकुन जान कुमार को आज्ञा दी है कि उसी हाथी पर आरूढ़ होकर वे अलक्षेन्द्र से युद्ध करें। उसे स्नान कराकर युद्ध के लिये सुसज्जित किया जा रहा है और उसका नामकरण 'विजय' किया जा चुका है।

तीसरा सैनिक– सचमुच कुमार चंद्रगुप्त बड़े ही भाग्यवान् प्रतापशाली पुरुष हैं मित्र! मनुष्यों की तो बात ही क्या, सिंह हाथी जैसे क्रूर बलिष्ठ पशु भी उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं।

चौथा सैनिक– अलक्षेन्द्र की सेना से जब वे भाग आये थे और

थकान मिटाने वृक्ष के नीचे सो गये तब उनका पसीना अपनी जिह्वा से चाटकर सिंह ने उनके उज्ज्वल भविष्य की सूचना दी थी एवं अब ठीक युद्ध के समय गजराज ने उनकी स्वयं सेवा कर विजय प्राप्ति का संदेश दिया है। कालांतर में कुमार सम्राट् पद प्राप्त कर महान् लक्ष्मी का वरण करेंगे।

आगन्तुक– वह पुरुष पारस है बन्धु!

दूसरा सैनिक– निःसंदेह वे महान् हैं।

पहला सैनिक– मेरे मन में कौतूहल उठ रहा है उस गजराज के दर्शन का। मैं तो जाता हूँ।

तीसरा सैनिक– चलो मित्र सभी चलें। यहाँ बैठे ही क्या कर रहे हैं।

(सबका प्रस्थान)

(अलक्षेन्द्र के सैनिकों का वार्तालाप करते हुये प्रवेश)

पहला सैनिक– बंधु अब तो लड़ने की जरा भी उत्सुकता नहीं है।

दूसरा सैनिक– उत्सुकता! अरे पागल! इच्छा ही नहीं है। निरंतर मार–काट, लूट–पाट से दिल ऊब गया है। आखिर हम भी मनुष्य हैं। हमारे हृदय में भी ममता है, पाषाण तो हैं नहीं।

पहला सैनिक– और क्या? परिवार से मिलने की तीव्र लालसा लग रही है। जबर्दस्ती युद्ध में झोंका जा रहा है।

दूसरा सैनिक– इसी कारण पंचनद में देवपुत्र को लेने के देने पड़ गये।

पहला सैनिक– दोस्त! अब तो देवपुत्र शब्द को छोड़ दे। कहाँ रहे वे देवपुत्र? देवपुत्र भी साधारण मानव की तरह क्या पराजय का मुँह देखते हैं?

दूसरा सैनिक– निश्चय ही नहीं बन्धु! देवपुत्र असाधारण होते हैं। साधारण एवं असाधारण में अत्यन्त भिन्नता होना अनिवार्य है। देखा नहीं था

जब वे युद्ध से संत्रस्त हो पौरवराज के सन्मुख गिड़गिड़ाने लगे थे।

पहला सैनिक– उस समय ऐसा लगता था जैसे कोई दुखी दरिद्र करुण–क्रन्दन कर रहा हो।

दूसरा सैनिक– वह भी भारतीयों के सम्मुख!

पहला सैनिक– पौरवराज की प्रशंसा करेंगे मित्र कि जिसने विजय प्राप्त करके भी विजित व्यक्ति से मैत्री कर हाथ थाम लिया।

दूसरा सैनिक– ऐसी घटना तो भारत में ही संभव है। यहाँ का वायुमंडल ही उदार दृष्टिकोण वाला है।

पहला सैनिक– अन्य कोई देश होता तो...

दूसरा सैनिक– और कोई क्यों, अपने ही सम्राट् को देखो न! वे होते तो राजा प्रजा पर कितने भीषण अत्याचार न करते!

पहला सैनिक– उनके अत्याचारों से पृथ्वी काँप रही है, फिर भी अब तक वे युद्ध के भूखे ही हैं।

दूसरा सैनिक– युद्ध से ऊब कर सेना ने विद्रोह कर दिया। सब अपने प्रियजनों से मिलने के लिये चातक की तरह देश की ओर आँखें लगाये हैं। सैनिक क्रांति सफल रही।

पहला सैनिक– (खिसियाकर) खाक सफल रही, फिर मरने के लिये क्यों आये हो?

दूसरा सैनिक– मरने कहाँ, लड़ने के लिये जा रहे हैं।

पहला सैनिक– अब लड़ने की दम है तुममें? इस तरह के लड़ने मरने में अन्तर ही क्या है?

दूसरा सैनिक– सम्राट् की लाख–लाख अनुनय विनय पर ही सेना आगे बढ़ी है। वह भी इस शर्त पर कि जीतकर हम प्रत्येक अवस्था में अपने

देश लौट पड़ेंगे।

पहला सैनिक– यदि हार गये तो? भारतीय भविष्यवेत्ता ने भी सम्राट को विषमताओं से जूझने के लिये आगाह कर दिया था।

दूसरा सैनिक– उसी ने सैनिक क्रान्ति होने की भी भविष्यवाणी की थी। यह सम्राट का अन्तिम आक्रमण समझो।

पहला सैनिक– भविष्यवेत्ता की बात अक्षरशः सत्य हुई। अपनी पराजय सुनिश्चित है।

दूसरा सैनिक– गजब के ज्योतिषी हैं। सारी बातें ऐसे बतला देते हैं जैसे कोई पोथी पढ़ रहा हो। जब से उन्होंने मुझे बताया है, तब से मेरा मन उदास हो गया है।

पहला सैनिक– क्या बतलाया है?

दूसरा सैनिक– यही कि मेरी मदर बीमार हैं, देखना हो तो शीघ्र लौट जाओ। क्या करूँ दोस्त। न मेरा भाई है, न बहिन, पिता बचपन में ही मर गये थे। पत्नी भी शिशु प्रसव में चल बसी। दादी और उसके नन्हें पोते को छोड़कर आना पड़ा। मदर बीमार हैं तो बालक की देख भाल कौन करता होगा? बस यही चिन्ता खाये जा रही है।

पहला सैनिक– दोस्त! हो सकता है यह भविष्यवाणी गलत हो। इसका क्या प्रमाण?

दूसरा सैनिक– प्रमाण तो यही मानना होगा ब्रदर कि जब वह भूतकाल की बीती हुई घटनायें ज्यों की त्यों बतला देता है तो यह निश्चित मानना ही पड़ता है कि भविष्य वर्णन झूठ नहीं होगा। उसकी अनेक बातें सत्य प्रमाणित हुई हैं।

पहला सैनिक– भविष्यवेत्ता को सम्राट ने एकांत में बुलाया था। पता

नहीं फिर उसने क्या बताया?

दूसरा सैनिक– (यहाँ–वहाँ देखकर) मुझे ज्ञात हुआ है कि उसने सम्राट की मृत्यु निकट में ही बतलाई है। उसका कथन है कि सम्राट का भाग्य सितारा अस्त होने वाला है।

पहला सैनिक– सच!

दूसरा सैनिक– सैनिक क्रान्ति इसका प्रमाण है। भले ही सफल न हुई हो पर बीज तो पड़ ही गये, समस्त सेना में असन्तोष परिव्याप्त है।

पहला सैनिक– इस युद्ध के पश्चात् सेना एक डग भी आगे नहीं रखेगी।

दूसरा सैनिक– (गहरी आह भरकर) फिर भी दोस्त अपना देश बहुत दूर है। कौन जाने जीवित रह पाते हैं या प्रियजनों से मिलने की आशा लिए ही संसार से कूच कर देना होगा।

पहला सैनिक– यथार्थ है मित्र! जीवन क्षणभंगुर है और फिर युद्ध के समक्ष तो जीवन कच्ची मिट्टी का खिलौना मात्र है। यहाँ मृत्यु सरल है, जीवन अत्यन्त कठिन।

दूसरा सैनिक– जो जीवित बच गया वही भाग्यशाली है।

(युद्ध के नगाड़े जोरों से बज उठते हैं और दोनों ओर की रणभेरी सैनिकों का युद्धभूमि में आह्वान कर रही है, दोनों सैनिक तत्परता से चले जाते हैं)

[चंद समय पश्चात्]

(पर्वतीय क्षेत्र दुर्ग का एक भाग)

(सैनिक वीरभद्र अंतर्प्राचीर के निकट प्रहरी के रूप में नियुक्त है। अलक्षेन्द्र अपने दो अंगरक्षकों सहित प्राचीर से कूदकर भीतर प्रविष्ट होता है)

वीरभद्र– (तत्परता से उनकी ओर बढ़ते हुये) रणभूमि से भागकर यहाँ चोरी–छिपे तुम लोगों को आने की कौन सी आवश्यकता आ पड़ी? (दृढ़ता से वीरता पूर्वक) सावधान! यदि एक भी डग आगे बढ़ाया तो खंड–खंड कर दिये जाओगे।

अलक्षेंद्र– अलक्षेंद्र ऐसी धमकियों से प्रभावित नहीं होता युवक! सम्राट आदेश देना ही नहीं जानता वरन् सैनिक की भाँति प्राणों की बाजी लगाकर रणभूमि में बलिदान होना भी जानता है।

वीरभद्र– (व्यंग्य से) तो दुर्ग ही है तुम्हारी रणभूमि? जहाँ पर सैनिकों के नाम पर अँगुलियों पर गिनने योग्य चंद ही व्यक्ति होंगे। क्या कहें तुम्हारी वीरता को और फिर तुम स्वयं सम्राट होकर इस घृणित नीति पर चल रहे हो। छि: कापुरुष! अधम!

अंगरक्षक– जिह्वा पर संयम रखो अन्यथा क्षणमात्र में धरती सूँघते दृष्टिगोचर होगे।

वीरभद्र– वीरभद्र कभी कायरता और नीचता के सम्मुख प्रणत नहीं हुआ सैनिक! वह केवल मानवता और शौर्य को ही शीश झुकाता आया है।

अलक्षेन्द्र– वीर युवक! तो फिर हो जायें दो, दो हाथ! मैं प्रस्तुत हूँ।

(वीरभद्र और अलक्षेन्द्र में द्वन्द युद्ध होता है। अचानक वीरभद्र का एक वार अलक्षेन्द्र बचा नहीं पाता, वह उसके पैर में लगता है। वह लड़खड़ा कर गिरने लगता है पर संभल जाता है। दोनों अंगरक्षक भी वीरभद्र पर टूट पड़ते हैं। वीरभद्र गिर जाता है। जयदेव चंद्रगुप्त का प्रवेश। पलक झपकते यह घटना होती है)

चंद्रगुप्त– यह क्या? यवनों को नीति पूर्वक युद्ध करना भी नहीं आता? एक व्यक्ति पर तीन व्यक्तियों का सामूहिक प्रहार। घृणित है तुम्हारी नीति।

(अलक्षेन्द्र इसी समय गिर पड़ता है उसका मुख देखकर)

चंद्रगुप्त– (साश्चर्य) ओह सम्राट अलक्षेंद्र! तुम यहाँ कैसे? सैनिको! संभालो अपने सम्राट् को?

(सैनिक उठाने का उपक्रम करते हैं, अलक्षेंद्र स्वयं उठता है)

अलक्षेंद्र– (उठते हुये) मुझे सम्हालने की आवश्यकता नहीं है चंद्रगुप्त! ऐसे क्षुद्र वारों को अलक्षेंद्र हँसते–खेलते सहन कर जाता है।

चन्द्रगुप्त– मुझे ज्ञात है सम्राट! किन्तु फिर भी तुम्हें स्मरण करा देना चाहता हूँ कि अभी तुम्हारा जीवन बहुमूल्य है। तुम्हें अपनी विश्वविजया–कांक्षा की युद्धाग्नि में अनेक निरीह सरल मानवाकृतियों की समिधा की आहुतियाँ देनी हैं। सम्प्रति सैनिकों के तृणवत् क्षुद्र प्राणों का ही विसर्जन होने दो।

अलक्षेन्द्र– मैं युद्ध के लिये प्रस्तुत हूँ चंद्रगुप्त! भागने के लिये नहीं आया। इस दुर्ग पर आज यूनानी जैक फहरायेगा।

चंद्रगुप्त– असंभव है सम्राट! बिल्कुल असंभव! जब तक हमारी सेना यहाँ आये, उसके पूर्व ही तुम यहाँ से चले जाओ वरना क्रुद्ध सैनिकों का प्रतिरोध करना अशक्य होगा।

जयदेव– (क्रोधित हो) कुमार! हाथ आये शत्रु को इस प्रकार छोड़ देना कहाँ की नीति है? उदारता दिखलाने में पात्र–अपात्र का ध्यान तो रखना अनिवार्य है।

चंद्रगुप्त– यद्यपि तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है जयदेव तथापि पंचनद नरेश पौरवराज ने साम्राज्ञी देवी रुखसाना को भगिनी मानकर अलक्षेंद्र पर प्राणघातक वार न करने का वचन दिया था, इस हेतु आर्यावर्त के निवासी के नाते हम भी उस वचन का निर्वाह करने के लिये बाध्य हैं। मेरी उपस्थिति में ही पौरवराज ने यह पवित्र संकल्प किया था।

वीरभद्र– किन्तु राजन्! इन लोगों की नृशंसता क्या इतनी सरलता से भुलाई जा सकती है? हमारे कृषकों को खेतों में कार्यरत रहने पर भी भून डाला। क्या किया था उन बेचारों ने? हिंसा का नग्न तांडव कर घरों में आग लगा दी। जन–जन त्राहि–त्राहि कर उठा। मैं इस भस्मासुर से यह पूछना चाहता हूँ कि मनुष्यों के करुण क्रन्दन से, उसकी चीत्कारों से इसे क्या प्राप्त हुआ है?

जयदेव– विपक्षी सैनिक गाजर–मूली की भाँति निरपराध गृहस्थों का नर–संहार करने में व्यस्त रहे। निर्धनों की झोपड़ी से लेकर बड़े–बड़े श्रेष्ठियों की अट्टालिकायें, भव्य प्रासाद धू–धूकर जल रहे हैं। दुधमुँहे शिशुओं का विलाप!... (कान पर हाथ रखकर) आह! अभी भी कानों में गूँज रहा है।

चंद्रगुप्त– जानता हूँ जयदेव! सब कुछ जानता हूँ। पर वचन निर्वाह को, राष्ट्र परंपरा को कैसे तोड़ा जा सकता है? यदि शत्रु कर्त्तव्यहीन हो जाये तो क्या हम भी कर्त्तव्य से मुख मोड़ लेंगे? जाने दो जयदेव! इन्हें जाने दो।

जयदेव– फिर प्रतिशोध...

चंद्रगुप्त– (शीघ्रता से) क्षमा कर देना, इससे कड़ा प्रतिशोध और क्या हो सकता है? जयदेव! जाओ सम्राट्! शीघ्रातिशीघ्र निकल जाओ ताकि हम कर्त्तव्यनिष्ठा में सफल होकर कलंक से बच सकें। (सेना का कोलाहल तीव्र होने लगता है) जाओ, जाओ अलक्षेंद्र। शीघ्रता से बाहर हो जाओ, जाओ। (पहुँचाने की चेष्टा करता है)

(अलक्षेंद्र नतमस्तक लज्जावंत हो अपने अंगरक्षकों के साथ शीघ्रता से चला जाता है)

पटाक्षेप

[दृश्य-अठारहवाँ]

स्थान- मकरान का मरुस्थल, समय- दिन का तृतीय प्रहर।

(दुर्दशाग्रस्त घायल सैनिक मैदान में पड़े हैं। कोई बैठा है। प्यास लगी है। दूर-दूर तक जल नहीं दिखाई पड़ता। वे परस्पर वार्तालाप कर रहे हैं। बीच-बीच में कराहने की आवाज भी होती रहती है)

पहला सैनिक- क्यों मित्र! भारत विजय महँगी पड़ी।

दूसरा सैनिक- महँगी! अरे कहो कि सम्राट का जीवन जिस किसी प्रकार बचाया जा सका है।

पहला सैनिक- (निराश हो) अभी भी क्या कह सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे हकीम साहब भी निराश हो गये हैं।

तीसरा सैनिक- हकीम जी कहते हैं कि व्रण विषैला हो गया है। उससे सारा शरीर विषाक्त हो जाने की संभावना है। हकीम, जर्राह उपचार करने में अत्यधिक परिश्रम कर रहे हैं परन्तु आशायें उनकी धूमिल हैं।

चौथा सैनिक- वक्षस्थल का घाव जो है।

दूसरा सैनिक- ऐसा प्रतीत होता है कि अब उनका जीवन दीपक अन्तिम तेज मुस्कान की भाँति स्वस्थ सा दिख रहा है।

पाँचवाँ सैनिक- वैक्ट्रिया, बैबिलौन, परशिया आदि देशों की लड़ाईयों में खूब आनन्द रहा। विजय पर विजय मिलती गई। लूट में खूब धन मिला। प्रत्येक सैनिक धनवान हो गया।

तीसरा सैनिक- भारत में ठीक उसके विपरीत हुआ। जितना वहाँ आनन्द नहीं मिला, उससे भी कहीं अधिक दुःख अब भोग रहे हैं। बूँद-बूँद पानी को तरस रहे हैं।

चौथा सैनिक– यह सब सम्राट के दुष्कर्मों का प्रतिफल है बन्धु! कितना अन्याय, अत्याचार उन्होंने किया है और हम लोगों से करवाया है। जब याद आती है तो शरीर में काँटे उठ आते हैं।

पाँचवाँ सैनिक– सम्राट के अन्याय की एक ही कही। युद्ध विनाश का दूसरा नाम ही तो है। युद्ध में और होता ही क्या है? प्रतिपक्षी एक–दूसरे से सद्भावना तो रखते नहीं।

दूसरा सैनिक– तुम्हारा कथन भारत पर चरितार्थ नहीं होता मित्र! भारत इसका अपवाद है। भारतीय शत्रु के प्रति उदार व्यवहार करता है।

चौथा सैनिक– देखा नहीं था वहाँ रण क्षेत्र के समीप ही कृषकगण कैसी शांति से खेती के कार्यों में दत्तचित्त थे। वहाँ के नियमानुसार वे नागरिक शत्रु पक्ष से निश्चिन्त थे किन्तु लूटने का आदेश मिलने पर अपनी सेना ने उन पर कितना अत्याचार किया। उन सरल चित्त मानवों ने इतनी क्रूरता की स्वप्न में भी कल्पना न की होगी। वे तो बेचारे किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गये, किन्तु हरी–भरी फसल को अश्वारोहियों से रुँदते देख उनका रक्त उबलने लगा। तरुणों ने प्रतिकार किया पर निहत्थे मानव सशस्त्र क्रूर असुरों से कब तक जूझते? निर्बल वृद्धजन रक्त के आँसू बहाते रहे। इन करुण दृश्यों के पश्चात् भी एक दृश्य था जिसने मेरी आँखें खोल दीं बंधु!... (आह भरता है)

पहला सैनिक– कहते–कहते रुक क्यों गये बंधु!

चौथा सैनिक– कहने में भी लज्जा आती है बंधु! हम कितने पतित क्रूर मानव हैं। वह नीच सैनिक दूध पीते बालक को उसकी माता के स्तनों से छुड़ाकर अपने भाले की नोंक पर छेद, हवा में घुमाने लगा। माँ सिंहनी की भाँति झपटी कि अपने शिशु को उन दुष्टों से छुड़ा ले पर बेचारी दस–पाँच सैनिकों की क्रूरता से निरस्त हो गई। उन लोगों ने उसे झिड़क दिया और अट्टहास करने लगे। वह रोई, बिलखी, प्रार्थना की परन्तु उसका लाल उसे न

मिल पाया मित्र! न मिल पाया। अफसोस! जब तक मैं वहाँ पहुँचूँ कि इसके पूर्व वह मृत्यु का ग्रास बन चुका था। वह नारी फटी-फटी आँखों से देखती रह गई।

दूसरा सैनिक- **अन्याय स्वयं अपना विनाशक है** बन्धु! उन **असहाय निरपराध नागरिकों की आहें निस्सार नहीं हुईं।** हमें स्वदेश लौटने में पग-पग पर बाधायें सता रही हैं।

पहला सैनिक- प्रथम चंद्रगुप्त की पर्वतीय सेना ने हमें लगातार खदेड़ा। मार्ग में मानव, मल्लक, अश्वक जातियों के तुमुल युद्ध से हमारे धन जन की अपार क्षति हुई है। इसी कारण मार्ग पार करते-करते हमें नौ माह का विस्तृत समय लग गया।

दूसरा सैनिक- अभी भी वही दुर्दशा है। उन्होंने तीव्र आक्रमणों के कारण हारकर हमें दुर्गम संकटापन्न सिंध मकरान के मरुस्थल से भागना पड़ा। प्रतिकूल वायु होने पर भी कुछ सैनिक को आदेशानुसार समुद्र यात्रा करनी पड़ी। उन बेचारों की भी बड़ी दुर्दशा हुई।

तीसरा सैनिक- एक बात ज्ञात है तुम्हें ? जो जन जलमार्ग से आये हैं, उन्हें तो सम्राट की मृत्यु का समाचार भी मिल चुका था।

पाँचवाँ सैनिक- किन्तु प्रभु का शुक्र है कि सम्राट हमारे बीच हैं मित्र!

(इतने में हेलन जल की कलशी लिये हुये आती है। दाहिने हाथ में एक छोटा सा पात्र है। वह उसी पात्र से सबको पिला रही है।)

पहला सैनिक- लो सेवा करने वाली देवी आ गई। ईश्वर कल्याण करें कुमारी!

हेलन- (मुस्कराते हुए) सभी का कल्याण हो बंधु! लो जल पियो।

दूसरा सैनिक- (पीकर गिड़गिड़ाते हुये) बस इतना सा जल और दे दो कुमारी!

हेलन– (स्नेह पूर्वक) और भी दूँगी। देखो न, तुम्हारे इतने साथी सभी प्यास से तड़प रहे हैं। दो–दो घूँट जल से सबके शुष्क मुख सींच दूँ। फिर आऊँगी।

तीसरा सैनिक –(जल पीकर) प्यास ज्यों की त्यों बनी हुई है। जरा भी तृप्ति नहीं हुई।

हेलन– एक बार में ही प्यास नहीं बुझेगी बंधु! अधिक पानी पीने से अस्वस्थ हो जाने का भय है। ठहरो, चंद क्षणों बाद पुनः पी लेना (सबको पानी पिलाकर, चौथे सैनिक से) बन्धु! तुम्हारी हाथ पट्टिका ढीली कैसे हो गई? लाओ घाव को धो–पोंछकर पुनः पट्टिका बाँध दूँ। (रुई से घाव को पोंछ कर औषधि लगाकर पट्टिका बाँधती है)।

चौथा सैनिक– आपके उपकारों से हम दबे जा रहे हैं राजकन्या! कहाँ तुम्हारे कोमल कर और कहाँ हमारे घृणित घाव। तुम्हारे योग्य यह कार्य नहीं है।

पहला सैनिक– ऐसा लगता है मानों प्रभु ने स्वर्ग से कोई देवी भेजी हो जो हमारा उद्धार कर रही है। कुमारी के कारण ही हम अब तक मृत्यु से बचे हैं वर्ना सम्राट के आदेशानुसार हम जैसे अपंगों को कब का गोली मार कर मौत के घाट उतार दिया होता पर राजकन्या की कृपा जो है।

हेलन– बंधु! यह तो मेरा कर्तव्य है। यदि हम परस्पर सहयोग न करें तो अन्याय किंवा अनर्थ ही होगा। कर्त्तव्य से वंचित मानव का न वसुधा पर ठौर ठिकाना है न प्रभु के यहाँ।

पाँचवाँ सैनिक– क्यों राजकन्या! क्या अभी भी तुम्हें प्रभु की सत्ता का विश्वास है?

हेलन– अविश्वास करने का कोई कारण दृष्टिगत नहीं होता।

पाँचवाँ सैनिक– एक ही कही कुमारी? मैं पूछता हूँ विश्वास करने

का ही कौन सा कारण है इस मरुस्थल में, इतना वृहत् मानव समुदाय तड़प-तड़प कर प्राण दे रहा है, बूँद-बूँद जल को तरस रहा है। हमारी घोर वेदना से तुम्हारा प्रभु व्यथित नहीं हुआ? कठोरता की चरम सीमा है कुमारी।

हेलन- एक पक्षीय निर्णय कभी उचित नहीं हो सकता। यथार्थता की धरती पर उतरो बन्धु! अपनी व्यथा के भ्रमजाल में फँसे रहने से सत्य बोध न हो सकेगा।

पाँचवाँ सैनिक- अपनी नहीं भगिनी! मैं तो सहस्रों मानवों की बात कर रहा हूँ।

हेलन- हाँ! हाँ! इस समय हम सहस्रों नहीं, हमारा केवल एक मानव-समुदाय है। मैं तुम्हीं से पूछती हूँ- क्या अपना समुदाय यूनान से पवित्र लक्ष्य लेकर निकला था? क्या हमारा संकल्प शुभ था? क्या हमने अपने ही जैसे कई मानव समुदाय नहीं समाप्त कर दिये? उन्हें नष्टप्रायः कर उन्हें तड़पने के लिए विवश नहीं कर दिया?

पाँचवाँ सैनिक- तुम्हारी बात मेरी बुद्धिगम्य नहीं कुमारी! हम वंश परंपरा से सैनिक होते आ रहे हैं। स्वामी की आज्ञानुसार चलकर मरना-मारना सेवक का महान धर्म है।

हेलन- इसका तो यही अभिप्राय हुआ कि स्वयं भले-बुरे का निर्णय बिना किये ही आँख मूँद कर राजा के इंगित पर चलकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार भी उचित नहीं है। तुम्हें केवल अपनी जीविका ही प्रिय है।

पाँचवाँ सैनिक- जीविका सभी को प्रिय है कुमारी! उदर ज्वाल ही है जो हमसे सब कुछ करा लेती है।

हेलन- बस इसी तुच्छ स्वार्थ में तुम सब कुछ भूल गये। सहस्रों मनुष्यों को भून डाला। निरपराध मानवों के रक्त में अपने हाथ रंग डाले। बंधु! जैसा बीज होता है वैसा ही फल भी मिलता है। प्रभु पर दोष क्यों?

पाँचवाँ सैनिक– भारतीयों ने हमसे क्या कम प्रतिशोध लिया?

हेलन– उन्होंने प्रतिशोध कहाँ लिया बन्धु! वे तो आक्रमणकारी का प्रतिकार कर केवल आत्मरक्षा ही करते रहे। जिस पर भी उनकी उदारता और महानता ने अपने समक्ष चंद उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जो भुलाये नहीं जा सकते। क्या आक्रमण अच्छा कहा जा सकता है?

(शैलाक्ष का प्रवेश)

(शैलाक्ष सैनिकों की अपेक्षा कुछ अच्छी अवस्था में है किन्तु मुख उदास है। वह पिछले वाक्य सुन कर हेलन को प्रत्युत्तर देता है)

शैलाक्ष– (हेलन के वाक्य सुनकर प्रवेश करते ही तत्काल) अच्छा या बुरा तो मैं नहीं जानता परन्तु राजनीति शांति की नहीं, युद्ध की समर्थक है। (रूक्ष स्वर में) और तुम जान लो हेलन! कि युद्ध में जो कुछ हुआ आदिकाल से यही होता आ रहा है, इसमें नया कुछ भी नहीं है।

हेलन– (क्षुभित हो) तो क्या ये सब कृत्य मानवों के उपादेय हैं?

शैलाक्ष– निश्चय ही साधारण मानव इन्हें नहीं अपना सकते। असाधारण मानवों की यह मात्र लीला है।

हेलन– (अत्यन्त दुखित हो) ओह पिदर! इस अधम विनाश लीला को आप लीला कह रहे हैं? कितनी लज्जाजनक बात है।

(इसी बीच सैनिक एक–दूसरे को सहारा देकर चले जाते हैं।)

शैलाक्ष– हेलन! जिसे तुम लज्जाजनक कह रही हो विश्व के राजनीतिज्ञ उसे सम्मानजनक कहते हैं। शासक के पुरुषार्थ का प्रतीक राज्य–विस्तार की भावना ही तो है। महत्वाकांक्षी शासक को इस हेतु सब कुछ करना पड़ता है। राजनीति के विधान में यह सब क्षम्य है।

हेलन– राजनीति भले ही क्षमा कर दे, परन्तु मानवता में इन क्रूर कृत्यों को तनिक भी स्थान नहीं। मैं जानना चाहती हूँ कि पुरुषार्थ का परीक्षण

क्या अपने से निर्बल अशक्त मानवों पर ही होता है।

शैलाक्ष– क्या चन्द्रगुप्त निर्बल था?

हेलन– (दृढ़ता पूर्वक) नहीं, चन्द्रगुप्त महावीर था इसलिये उसने स्वेच्छा से सम्राट को सकुशल लौट जाने को बाध्य किया अन्यथा आज हम कुछ और कहने सुनने को बाध्य हो सकते थे।

शैलाक्ष– तुम्हारा ही कथन सत्य मान लें तब अशक्तों पर परीक्षण का लांछन कैसा?

हेलन– निरस्त्र प्रजा पर जो अत्याचार किये उन्हें क्या कहेंगे आप? और पिदर! चन्द्रगुप्त की महानता में सचमुच आपको अभी भी आशंका है क्या? वह समय क्या इतने शीघ्र ही बिसरा दिया जब पंचनद नरेश पौरवराज ने सम्राट के प्राण केवल इसीलिए नहीं लिये कि वे धर्मभगिनी देवी रुखसाना से वचनबद्ध हो चुके थे। मैं तो यही कहूँगी कि यह सब भारत की पवित्र वसुन्धरा के जन्मे मानवों में ही संभव है फिर चन्द्रगुप्त की तो बात ही और है।

शैलाक्ष– (ग्लानियुक्त स्वर में) हेलन! तुझे अपने देश से प्रेम नहीं है?

हेलन– यह आप कैसे कह रहे हैं? देश प्रेम का अर्थ यह तो नहीं कि हम अपने उपकर्त्ता के प्रति कृतघ्न बन जायें अथवा सर्वनाशी हिंसक दुष्कृत्यों को सर्वश्रेष्ठ की संज्ञा दे दें। क्या यह सत्य नहीं है पिदर! कि निरंतर पराजय पर पराजय मिलने से सम्राट ने खिसियाकर कितने अनर्थ नहीं कर डाले।

शैलाक्ष– राजधर्म कठोर और अंधा होता है बेटी! वह उदारता व क्षमा की वीथियों पर चलना नहीं जानता। शासक की शक्ति का प्रादुर्भाव राज्य विस्तार से ही प्रारम्भ होता है। विशाल राज्य उसकी विशालता का मापदंड है।

हेलन– तब फिर यही कथन उपयुक्त होगा कि शक्ति का उपयोग निर्बलों की रक्षा हेतु नहीं वरन् सशक्त के अहंकार की शोभा बढ़ाने का निमित्त है। पर ध्यान रहे पिदर कि सेवा का संबल संभाले बिना शक्ति पैशाचिकता की छाया मात्र है।

शैलाक्ष– हेलन! संसार की यह पुरातन रीति चली आई है कि एक के उजड़ने से दूसरा बसता है। एक का पालन दूसरे का उत्थान। दूसरों के दुःखों की आधारशिला रखकर ही अपने सुखों का भव्य भवन निर्मित हो पाता है।

हेलन– अर्थात् जो सम्राट ने किया उचित ही है? मसागा से लौटने की जिन भारतीय सैनिकों को आज्ञा दे दी गई थी, रात्रि के घने आवरण में उनका क्रूरतापूर्ण वध करवा दिया। इससे कौन सा सुख मिला! सम्राट के मित्र हेफ्रेसियन की स्मृति में उन्होंने क्रोधित हो अश्वों, खच्चरों के बाल कटवा दिये। बेचारे उन मूक पशुओं को सताने में क्या लाभ मिला और काकेशस पर आक्रमण कर निर्दोष पुरुषों का कत्ल करवा कर कौन सा आनन्द लूँ पिदर!

शैलाक्ष– विजेता सदैव विजित को अपनी अहंकार की अग्नि में स्वाहा कर देता है। प्रतिद्वन्द्वी को अभय नहीं किया जा सकता हेलन!

हेलन– मैं प्रारम्भ से ही देखती आ रही हूँ कि जब सम्राट ने जय प्राप्त की तब भी विजित प्रदेशों के साथ घृणित निकृष्ट व्यवहार किया। पराजित हुये तब भी उसी व्यवहार की पुनरावृत्ति की, इसे पराक्रम तो नहीं कहा जा सकता पिदर!

शैलाक्ष– तुम नहीं समझ सकती हेलन! इन राजनीति के दाँव पेचों को। तुम अपना मन व्यर्थ की बातों में मत खराब किया करो।

हेलन– पिदर! देखकर भी अनदेखा कैसे किया जा सकता है।

सुनकर अनसुना कर देना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। आह! शत्-शत् नारियों का करुण क्रन्दन, दुधमुँहे शिशुओं का विलाप, क्षत-विक्षत प्राणियों के वेदनामय स्वर क्या आपकी समझ में सम्राट् का स्वस्ति गान सा कर रहे प्रतीत होते हैं। पर मैं इन दुष्कृत्यों से मन को सान्त्वना नहीं दे पाती पिदर!

शैलाक्ष- नरेशों के कर्त्तव्य साधारण जन से भिन्न होते हैं आयुष्मती!

हेलन- तब बार-बार धिक्कार है ऐसे राज पद को जहाँ मानव देवता तो बन ही न सके एवं मानव तक न रह जाये। जहाँ अनर्थों की प्रतिष्ठा हो, अन्याय अत्याचारों का निशदिन दमन चक्र चलता हो वह राजपद ग्लानियुक्त हेय है। चाह की नहीं, दाह की वस्तु है।

शैलाक्ष- सचमुच तुम जैसे हृदय वाले व्यक्ति शासक नहीं बन सकते।

हेलन- मैं अपने को दुर्बल हृदय स्वीकार नहीं कर सकती। न्यायपूर्ण शासन दुर्बल हृदय का द्योतक नहीं।

शैलाक्ष- (व्यंग्य से) कदाचित् कोमलता बल प्रदर्शित करती है।

हेलन- अवश्य पिदर! न्याय, उदारता, क्षमा-शीलता, वीरता, मृदुलता, सेवावृत्ति ये सब गुण एक साथ महावीर व्यक्ति में ही होते हैं। अन्य व्यक्ति में असंभव हैं।

शैलाक्ष- जाने कहाँ से तूने ये सब तर्क सीख लिये हैं। मैं तो तुझसे परास्त हो गया। तुझसे तनिक बात करना भी दुर्लभ हो गया है। अपने छोटे से मन में कहाँ-कहाँ की बड़ी-बड़ी बातें रख ली हैं तूने। निकाल दे प्यारी बेटी! इन व्यर्थ के विचारों को निकाल दे।

हेलन- उफ् पिदर! आप भी कैसी बातें करते हैं। मनुष्य को उसके स्वभाव से न्यारा तो नहीं किया जा सकता। अग्नि को उसकी उष्णता से पृथक् कर क्या उसे जीवित रखा जा सकेगा? क्यों पिदर! शांति की बातें

करना बुरा है? मानवता को अपनाना पाप है? मानवता को पृथक् कर क्या मानव निष्प्राण न हो जायेगा?

शैलाक्ष– इन व्यर्थ के विचारों के बिना हम लोग क्या जीवित नहीं हैं?

हेलन– वैसे ही जैसे कोई चलता–फिरता यंत्र हो। जहाँ मन की घुटन हो, आत्मा की तड़पन हो ऐसी यातनाओं भरा जीवन भी कोई जीवन है। सुख–शांति तो दिखती ही नहीं।

शैलाक्ष– सुख–शान्ति जन्म से प्राप्त नहीं होती, अर्जित की जाती है, हम उसका प्रयत्न भी कर रहे हैं।

हेलन– खूब! प्रयत्न सुन्दर है। अभी तक कितनी शान्ति मिली पिदर!

शैलाक्ष– कठिनाइयों के सागर तैरने के पश्चात् ही सुख–शान्ति उपलब्ध होगी हेलन!

(सम्राट अलक्षेन्द्र का प्रवेश)

(वे निर्बल दिख रहे हैं। उनके वक्षस्थल में, दाहिने पैर में पट्टिका बँधी हुई है। एक पट्टिका कंधे और ग्रीवा के पार्श्व भाग में भी बँधी है जो उत्तरीय के अस्त–व्यस्त होने पर दिख जाती है। सम्राट को दो सेवक सहारा देकर लाते हैं। वे बैठकर सेवकों को जाने का संकेत कर देते हैं। दोनों सेवक चले जाते हैं। सम्राट को देखकर हेलन और शैलाक्ष उठकर स्वागत करते हैं। तीनों पुनः बालू पर बैठ जाते हैं। संध्या हो गई है। सूर्य की किरणें तिरछी हो पीली सी निष्प्रभ हो चली हैं)

अलक्षेन्द्र– तुम यथार्थ कह रहे हो शैलाक्ष! कठिनाइयों से जूझने के पश्चात् ही सुख प्राप्त होता है।

हेलन– आपको स्मरण होगा सम्राट! तक्षशिला में साधु कल्याण ने

क्या कहा था?

अलक्षेन्द्र- क्या कहा था?

हेलन- यही कि **मनुष्य की जितनी लिप्सा बढ़ती जाती है वह दिनोंदिन अशान्त होता जाता है, यह मनुष्य की सबसे बड़ी भूल है कि वह आकांक्षा की पूर्ति में तृप्ति मानता है। प्रतिक्षण नई-नई आकांक्षायें जन्म लेती हैं, वे असीमित अनन्त हैं। उन सबकी पूर्ति असंभव है। अस्तु, शान्ति भी असंभव है। सुखी होना है तो लालसाओं पर प्रतिबन्ध लगा उन्हें सीमित करना होगा।**

अलक्षेन्द्र- वह बहुत उत्कृष्ट मार्ग है हेलन! हम राजा महाराजा राज्यवृद्धि और शासन में ही सब कुछ पा लेते हैं। सभी व्यक्ति श्रमण मार्ग नहीं अपना सकते। भोग और योग मार्ग दोनों अत्यन्त भिन्न विपरीत मार्ग हैं; अतः हमारे कार्य और उनकी रीति भी साधुओं से पृथक् ही होगी। उन्हें अपनाना अपने लिये असंभव है।

हेलन- धृष्टता क्षमा करें सम्राट! एक छोटा सा प्रश्न है- क्या श्रमण, नृपेन्द्र, दीन, दरिद्र इन सबके लिए मृत्यु का पृथक्-पृथक् विधान है अथवा किसी की मृत्यु होगी, किसी की नहीं भी हो?

शैलाक्ष- (हेलन को डाँटते हुये) हेलन! देख रहा हूँ तुम बहुत बढ़-बढ़कर बातें करने लगी हो। बड़ों के मुँह लगना शोभास्पद नहीं है।

अलक्षेन्द्र- शैलाक्ष! हेलन को बोलने दो, रोको मत, यह विचारों का आदान-प्रदान है, विचार विनिमय में प्रतिबन्ध उचित नहीं।

शैलाक्ष- किन्तु सम्राट...

अलक्षेन्द्र- किन्तु परन्तु कुछ नहीं। हाँ हेलन! बोलो क्या कह रही थी? (हेलन को मौन देख) सम्राट के आदेश का पालन करो हेलन! ओह! सुधि आ गई, देखो हेलन! मृत्यु तो सबकी अनिवार्य है। पर फिर भी बहुत

सी बातों में अन्तर है।

हेलन– बाह्य अन्तर कुछ भी हो, हमें उससे प्रयोजन नहीं किन्तु **आन्तरिक वेदना, कष्ट, रोग आदि सभी में तो समानता माननी ही पड़ेगी। अंत सबका एक ही है। केवल एक विशेषता है साधु में। जो साधना के पथ पर अग्रसर हो रहा है; जिसने मन रूपी अश्व की बल्गा को थाम लिया है। वह अवश्य संकट या मृत्यु के अवसर पर भी समस्त बाह्य पदार्थों से प्रवृत्ति हटाकर शरीर से पृथक् आत्मदर्शन कर उसी की अनुभूति कर चिर शांति प्राप्त करेगा। शेष सभी प्राणी मृत्यु की तीव्र पीड़ा से पीड़ित हो करुण विलाप करते हुए शरीर को छोड़ेंगे।**

अलक्षेन्द्र– ऐसी साधना तो उन दिगम्बर श्रमणों को ही संभव है। उनकी कठोर तपस्या देखकर सहसा दाँतों तले उँगली आ जाती है। वाह रे निर्भीक पुरुष! आचार्य दोलामस को ही देखो। वनों में निवास करते हैं दिशायें उनका परिधान हैं, धरती बिछौना और गगन उढ़ौना है। ग्रीष्म काल की तपन, लहू को जमा देने वाली शीतकाल की सनसनाती पवन, पावस के छाये काले मेघों की गर्जन, विद्युत की तड़पन कोई भी उन्हें उनके साधना पथ से विचलित करने में असमर्थ है।

शैलाक्ष– उनका न घर है न कुटुम्ब। सम्पत्ति की चाह नहीं। अपने तन तक से जिसे ममता न हो तो ऐसे अक्खड़ व्यक्ति को कौन–सी बाधा परास्त कर सकती है? सचमुच उन विचित्र व्यक्तियों की चरित्र निष्ठा अपूर्व है।

अक्षलेन्द्र– वे अद्वितीय महापुरुष हैं। उनकी बात छोड़ो हेलन!

हेलन– क्यों, उनमें हममें अन्तर ही क्या है? जैसे वे मानव, वैसे हम भी हैं। केवल साधना का ही अन्तर है। उन्होंने साधना कर अपनी भावनाओं

को माँज कर चमका लिया है और हम भाव विकृति के कारण महामलिन हो रहे हैं। हम यदि चाहें तो उन जैसा ही बन सकते हैं।

अलक्षेन्द्र– यह तो उस आर्यावर्त की धरती पर ही सम्भव है।

हेलन– वस्तुतः यही सत्य है सम्राट! यहाँ पर नर–नारी जन्म लेते ही यह जान लेते हैं कि शरीर में निवास करने वाला आत्मा उससे पृथक् है। शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का कुछ भी अनिष्ट नहीं होता अतः प्रत्येक क्षेत्र में वे निर्भीकता से पदार्पण करते हैं।

शैलाक्ष– इसीलिए वहाँ हमें पग–पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है।

हेलन– पिदर! **जो मृत्यु से भयभीत नहीं होते; उन पर विजय प्राप्त करना असाध्य है।**

शैलाक्ष– (प्रसन्नता पूर्वक) बहुत अच्छा मंत्र मिल गया सम्राट! मैं उनमें ऐसी भावना भर दूँगा, ताकि वे अपने जीवन के प्रति चौकन्ने हो मृत्यु से सदैव ही सशंकित होने लगें। पथ तब प्रशस्त हो सकेगा।

अलक्षेन्द्र– (घावों में तीव्र पीड़ा का अनुभव करते हुए) तुम्हीं हमारे उत्तराधिकारी हो। अन्य किन्हीं अधिकारियों में हम ऐसी सर्वोत्कृष्ट योग्यता नहीं पाते। हमारे घाव दिनों–दिन बढ़ते ही जा रहे हैं। हमें निकट भविष्य में आशा नहीं कि पुनः भारत जा सकें। भारत विजय के शेष अभियान को तुम्हीं पूर्णता देना।

शैलाक्ष– आपका मुझ पर अनुग्रह है सम्राट! पर आप ऐसा अशुभ न कहें। एक बार पुनः मैं आपके साथ चलूँगा एवं विजय निश्चित हमारी होगी।

हेलन– किन्तु **तलवार की नोंक पर हृदय परिवर्तन नहीं होता** पिदर! अकार्य करने हेतु व्यक्ति को मोड़ा नहीं जा सकता। वह स्वतन्त्र है, उसका प्रवाह अविरल अबाध गति से निरन्तर चलता ही रहता है।

अलक्षेन्द्र– हेलन का कथन सत्य है शैलाक्ष! पर तुम अवश्य प्रयत्न करना। (निराश हो) हम नहीं जा सकेंगे शैलाक्ष! भारत में हम भारतीयों के आक्रमण और क्रोध के ही पात्र रहे। हमारे ये विषैले व्रण उन्हीं की देन हैं। वे हमें जीवित नहीं रहने देना चाहते थे। अंग–अंग उनके आघातों से पीड़ित है। गांधारियों ने हमारे पैर को भंग किया। अश्वकों ने कंधे आहत किये। मल्लियों की तो कुछ न पूछो। उन्होंने अपने विषैले तीरों से वक्षस्थल छेद डाला। ग्रीवा पर गदा का जो आघात लगा है वह भूल नहीं सकते।

शैलाक्ष– मैं एक–एक से प्रतिशोध लूँगा सम्राट! मेरा रक्त उबल....

(सहसा नियारकस का प्रवेश, जिसका कंकाल मात्र ही रह गया है। तीनों आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगते हैं। वह थक गया है, आते ही वहीं बालू पर बैठ जाता है)

नियारकस– (अत्यन्त दुखित हो) सम्राट!

अलक्षेन्द्र– (आश्चर्य) तुम कौन हो?

नियारकस– मुझे नहीं पहचाने सम्राट! (आह भरकर) कैसे पहचानेंगे ? हड्डियों का ढाँचा ही अवशेष रह गया है। आप तक संवाद पहुँचाने के लिए ही प्रभु ने मुझे जीवित रख छोड़ा है सम्राट! मैं हूँ आपका सेनापति नियारकस।

(तीनों के मुँह से हठात् 'नियारकस' निकल पड़ता है)

अलक्षेन्द्र– नियारकस! तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुई?

नियारकस– कुछ न पूछें सम्राट! क्या कहूँ आपके द्वारा सीमा छोड़ते ही चन्द्रगुप्त ही चन्द्रगुप्त वहाँ चमकने लगा है। भारतवर्ष से यूनानी शासन का अंत हो गया समझें।

सम्राट– वह कैसे?

नियारकस– मेरी दशा तो देख ही रहे हैं सम्राट! समस्त सेना नष्ट हो

गई। एक-एक कर क्षत्रपों की हत्या हो रही है।

अलक्षेन्द्र- हम यह क्या सुन रहे हैं नियारकस! क्या सचमुच यह सम्भव है?

नियारकस- सम्भव ही नहीं सम्राट! घट चुका है निकानौर की हत्या तो आपके समक्ष ही हो गई थी। उसके स्थान पर आपने अपने वंशज फिलिप को नियुक्त किया। फिलिप जब आपको विदाकर लौट रहे थे कि मार्ग में ही अज्ञात व्यक्ति द्वारा उनकी हत्या कर दी गई है।

अलक्षेन्द्र- फिलिप भी मार डाला गया। आह प्यारा फिलिप!

हमारे जीवन में ही विनाश! कहो नियारकस आगे कहो, पाषाण-हृदय करके सुनूँगा।

नियारकस- सम्राट! भारतीयों ने शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया है। सिंध के क्षत्रप पेइयन भी मार डाले गये। काबुल के क्षत्रप आक्जिऐर्टीज को भी तलवार के घाट उतार दिया गया।

अलक्षेन्द्र- सिंधु नदी के पूर्वीय क्षत्रप को भारतीय नरेशों ने तो सहायता की होगी न?

नियारकस- कहाँ सम्राट! आंभिराज इन सब की हत्याओं से इतने भयभीत हुए कि तुरन्त चन्द्रगुप्त को आत्म समर्पण कर दिया।

अलक्षेन्द्र- (क्रोधित हो) कायर कहीं का। आंभिराज में साहस का सर्वथा अभाव है और पौरवराज का क्या संवाद है?

नियारकस- उन्होंने भी चन्द्रगुप्त से मित्रता स्थापित कर ली। आंभिराज नरेश ने भी पौरवराज का अनुसरण किया।

हेलन- एक अकेला चन्द्रगुप्त चन्द समय में ही सारे आर्यावर्त्त पर छा गया। अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है।

अलक्षेन्द्र– यह सब आग चन्द्रगुप्त की ही लगाई है। सचमुच ही भारत के मानचित्र से संप्रति यूनानी सत्ता विलुप्त हो गई। कितनी यातनाओं, कितने संकटों संघर्षों के पश्चात् यह राज्यवृद्धि हो पाई थी। वह बालू की भीत की भाँति शीघ्र ही ढह गई। सुन रहे हो शैलाक्ष!

शैलाक्ष– बुरा हुआ सम्राट! हमें स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं थी।

अलक्षेन्द्र– और हम इस स्थिति में नहीं हैं कि पुनः भारत की ओर रुख कर सकें।

शैलाक्ष– आप अस्वस्थ हैं सम्राट! स्वास्थ्य लाभ होने तक हमें खून का घूँट पीकर धैर्य रखना ही होगा।

अलक्षेन्द्र– अब हम स्वस्थ नहीं हो सकेंगे! इसके साथ ही और भी अनेक बाधायें हैं। यदि हमारी सेना स्वामीभक्ति का परिचय देती, उसका मनोबल ऊँचा होता तो अभी भी हम उन्हें चुन–चुन कर दण्ड देने की क्षमता रखते हैं।

शैलाक्ष– अवश्य सम्राट! आपका प्रताप प्रचंड है। आपके नाम से भारतीय शिशु भी भयभीत हो उठते हैं।

नियारकस– क्षमा करें महासेनाध्यक्ष। भारतवर्ष की स्थिति अब ऐसी नहीं रही। चन्द्रगुप्त ने उत्तरापथ में अभेद संगठन बना लिया है। अब वह मगध पर आक्रमण करने की योजना में व्यस्त है। विदेशी सत्ता के पैर वहाँ नहीं टिक सकते। यदि कोई दुस्साहस करेगा तो निश्चय ही मुँह की खायेगा। आपके आक्रमण को भारतीय विद्युत चमक से अधिक कुछ भी नहीं मानते। चन्द्रगुप्त की सर्वत्र जय–जयकार हो रही है।

अलक्षेन्द्र– (क्रोधित हो) चन्द्रगुप्त! वह उद्धत युवक! वहाँ का सर्वेसर्वा बन बैठा। उसे निःशंक छोड़ हमने अपने पथ में अपने हाथों कंटक बिछा लिए। काश! उसे उसी समय समाप्त कर दिया होता तो...

हेलन– किन्तु उसकी मृत्यु नहीं आई थी सम्राट! प्रकृति के कार्यों के विरुद्ध मानव की क्या हस्ती जो कुछ कर सके।

नियारकस– हाँ सम्राट! उसके विरुद्ध वाणी सुनना असम्भव है। यूनानी शासन का अन्त कर वह जन–जन की श्रद्धा का पात्र बन गया है। छोटे–बड़े सभी उसे मस्तक झुकाते हैं।

अलक्षेन्द्र– हमारे अनुयायियों का क्या हुआ नियारकस! हमने जो विजित निर्जन प्रदेशों में यूनानी प्रजा को बसाकर नगर निर्माण किये थे वे तो सुरक्षित हैं?

नियारकस– नहीं सम्राट! सब कुछ समाप्त होता जा रहा है। आपके अनुयायिओं में फूट पड़ गई है। वे छीना–झपटी में व्यस्त हैं। शेष प्रजा जिसे नगरों में बसाया गया था; उनके सम्मुख खाद्यान्न तथा युद्ध सामग्री उपलब्धि की विषम उलझन है। साथ ही वे चन्द्रगुप्त के नाम से भी आतंकित हो उठे हैं। यूनानी–जन आत्म–समर्पण कर अथवा नागरिकता ग्रहण कर ही वहाँ निवास कर सकते हैं, अन्य दूसरा मार्ग नहीं है।

शैलाक्ष– (तलवार छूकर) प्रतिज्ञा करता हूँ सम्राट! कि जब तक चन्द्रगुप्त से पूरा–पूरा प्रतिशोध नहीं ले लूँगा, भारत पर यूनानी जैक न फहरा दूँगा; तब तक चैन नहीं लूँगा।

अलक्षेन्द्र– तुम हमारे विश्वास पात्र हो शैलाक्ष! हमें आशा है कि तुम एक बार पुनः भारत में यूनानी शासन की स्थिति सुदृढ़ कर सकोगे।

नियारकस– बड़ी जोर से प्यास लगी है, गला सूख रहा है। योजनों दूर से जल के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं।

(हेलन कलशी में से जल पात्र में ढालकर पिलाती है, जल बहुत थोड़ा है)

नियारकस– और जल नहीं है कुमारी!

हेलन– (दुखित हो) यहाँ जल का नितांत अभाव है बंधु!

नियारकस– इस थोड़े से जल ने मेरी प्यास को और भी वृद्धिंगत कर व्याकुल कर दिया है। (विचित्र हँसी हँसता है) विश्वविजयी सम्राट की छत्रछाया में भी जल का अभाव। सम्राट! अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे। क्या आप मुझे बचा सकते हैं। नहीं आप क्या बचा सकेंगे? आपके पास प्रकृति प्रदत्त जल जैसी तुच्छ वस्तु भी नहीं है। हः हः हः हः..... (अट्टहास गूँज उठता है)

हेलन– न हँसो बंधु! न हँसो! तुम्हारे शुष्क होठों पर हँसी वैसी ही भयानक प्रतीत हो रही है जैसे श्मशान में चाँदनी होती है।

नियारकस–तुम कहती हो राजकन्या! न हँसूँ। तुम ही बताओ रोऊँ तो कहाँ तक? बहुत रोया हूँ। इतना रोया हूँ कुमारी कि नेत्रों में अश्रु भी समाप्त हो गये। भीतर–बाहर एक बूँद जल अवशेष नहीं रहा, अब जा रहा हूँ सम्राट! जा रहा हूँ... पर एक बात आपसे कहे जा रहा हूँ कि **निर्मम क्रूरतापूर्ण वध और आक्रमणों से प्राप्त सत्ता स्थायी नहीं हो पाती। सरल, भोले मानवों के शवों को आधारशिला बनाकर प्रासाद निर्मित नहीं हो सकता।** यह कठोर सत्य है सम्राट! कि आज तक आपने निर्जन स्थानों पर विजय पाई, शत्रु पर नहीं। जन मानस को विजित करने हेतु हमें कुछ त्याग करना होगा, उदार बनना होगा। (होठों पर जीभ बराबर फेरता है) जल, सम्राट! जल, दो घूँट जल चाहिए। (बालू पर लेटने लगता है)।

हेलन– आह! जल, जल मैं लाती हूँ। (कलशी लेकर चल देती है नियारकस तृषाकुल हो तड़पता रहता है।)

पटाक्षेप

[दृश्य- उन्नीसवाँ]

समय- प्रातःकाल, द्वितीय प्रहर

(आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त ग्रामीण वेश में दौड़ते हुये सरोवर के किनारे आते हैं। वहाँ घाट पर रजक वस्त्र प्रक्षालन कर रहा है)

चाणक्य- (रजक से) क्यों बंधु! तुम्हें अपना जीवन प्रिय नहीं है अथवा अपने परिवार से ही प्रयोजन नहीं है जो यहाँ वस्त्र प्रक्षालन कर रहे हो?

रजक- अपना अभिप्राय स्पष्ट करें महानुभाव!

चाणक्य- अरे, हमारा अभिप्राय कुछ नहीं है। सुन रहे हो न अश्व की टापें। इसी ओर ही आ रहे हैं। तुम्हें ज्ञात नहीं है कि शासन ने इस सरोवर में वस्त्र धोने पर प्रतिबंध लगा दिया है। शीघ्र भाग जाओ अन्यथा प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

रजक- मुझे ज्ञात नहीं था श्रेष्ठिजन! आपने मुझे आगाह कर मेरा बड़ा उपकार किया है। इन वस्त्रों को कैसे समेटूँ, हाय रे! मर जाऊँगा। भगवान...

चाणक्य- शीघ्रता करो बन्धु! भागो। हम तुम्हारे वस्त्रों की रक्षा करेंगे। मुहूर्त भर पश्चात् आकर ले जाना तब तक अश्वारोही भी चले जायेंगे पर भविष्य में ध्यान रखना।

रजक- (भागते हुये) हाँ महानुभाव! मेरे वस्त्रों की रक्षा करना।

(रजक तुरन्त भाग जाता है)

चाणक्य- (चन्द्रगुप्त से) वत्स! शीघ्रता करो। देख रहे हो न कमल-समूह, बस सरोवर में वहीं पत्तों के नीचे छिप जाओ। हम वस्त्र प्रक्षालन करते हैं।

(चाणक्य उत्तरीय उतार कर अधोवस्त्र को खोंस कर घुटनों तक

ऊँचा कर लेते हैं)

(अश्वारोही का प्रवेश)

अश्वारोही– (कठोर स्वर में) ऐ रजक!

चाणक्य– (हाथ जोड़कर) आज्ञा श्रीमान्!

अश्वारोही– किसी तरुण को यहाँ से जाते हुए देखा है?

चाणक्य– हाँ, यही होगा कोई बीस–बाईस वर्ष का।

अश्वारोही– हाँ, हाँ निकला है क्या?

चाणक्य– हाँ, गौर वर्ण का अच्छा सा तरुण है।

अश्वारोही– किस ओर गया है? शीघ्र बता नहीं तो पकड़ना कठिन हो जायेगा।

चाणक्य– (मुस्कराते हुये) अरे नहीं जी! ऐसा कैसे होगा? मैं बराबर पकड़वा दूँगा। (जल में संकेत कर) बस वहीं छिपा हुआ है। क्यों कुछ आवश्यक कार्य है क्या?

अश्वारोही– वह राजा का दंडपात्र है रजक। छल कर भाग आया है।

चाणक्य– तो फिर विलंब क्यों? पकड़ लो झटपट।

अश्वारोही– मेरे वस्त्र सब भीग जायेंगे। तुम पकड़ लाओ उसे, हम तुम्हें पारिश्रमिक दे देंगे।

चाणक्य– यह हमसे न हो सकेगा श्रीमान्! हम वृद्धजन और कहाँ वह बलिष्ठ नव तरुण। वस्त्र उतार कर घाट पर रख दो और कूद पड़ो। जिसका काम वही कर सकता है। अरे हाँ! जिसका बंदर वही नचावे। हमने बता दिया यही क्या कम है?

(अश्वारोही अस्त्र–शस्त्र सब एक ओर रखकर वस्त्र उतारता है। ज्यों ही वह वस्त्र रखने झुकता है कि चाणक्य उसी के खड्ग से उस पर प्रहार करता है। अश्वारोही चीख के साथ गिर पड़ता है। तत्क्षण उसकी मृत्यु हो

जाती है। चन्द्रगुप्त तुरन्त सरोवर से बाहर निकलता है)

चन्द्रगुप्त– ओह! इसकी मृत्यु हो गई?

चाणक्य– हाँ वत्स! हम निष्कंटक हो गये। चलो, इसी अश्व पर आरोहण कर हम शीघ्रातिशीघ्र पलायन करें वरन् कोई दूसरी विपत्ति न आ खड़ी हो।

चन्द्रगुप्त– खड्ग साथ में लेना उपयुक्त होगा आचार्यश्री!

चाणक्य– अवश्य, समय पर काम आ सकती है। (चलते चलते) क्यों वत्स! जब हमने अश्वारोही को तुम्हारे स्थान का रहस्य बतलाया तब तुम्हारे मन में उस समय कैसी प्रतिक्रिया हुई?

चन्द्रगुप्त– (हँसकर) यही कि गुरुदेव के प्रत्येक कार्यों में सदैव कुछ न कुछ रहस्य विद्यमान रहता है। इस संकेत में भी तथ्य निहित है। वही प्रत्यक्ष भी हुआ।

चाणक्य– क्या तुम्हारे मन में मेरे प्रति शंका उत्पन्न नहीं हुई?

चन्द्रगुप्त– गुरु के प्रति शंका? असंभव है गुरुदेव! सर्वथा असम्भव है, अपने हितैषी शुभचिंतक के प्रति शंका कर इतना जघन्य अपराध नहीं कर सकूँगा महामन्! कदापि नहीं।

चाणक्य– अद्वितीय गुरुभक्ति है वत्स! तुम्हारी अपूर्व निष्ठा देखकर हमें अत्यधिक आश्चर्य होता है। तुम कार्य के प्रति सतत् लगनशील एवं जागरूक हो। कोई भी शक्ति तुमसे सफलता नहीं छीन सकती है।

चन्द्रगुप्त– सब प्रकार से समर्थ आप जैसे राजनीतिज्ञ आचार्य को पाकर मैं धन्य हो उठा हूँ गुरुवर! आपके अगणित शुभाशीर्वाद मेरे? सुदृढ़ कवच की भाँति रक्षा कर रहे हैं। (एक उद्यान में आ जाते हैं)

चन्द समय पश्चात् (उद्यान में)

(चाणक्य और चन्द्रगुप्त एक ग्राम में कुटिया से थोड़ी दूर सामने ही

बैठे हैं। श्रांत हो विश्राम के लिये रुक गये हैं। परस्पर विचार विनिमय हो रहा है। एक ओर क्यारी में रंग-बिरंगे पुष्प खिले हैं)

चन्द्रगुप्त- आचार्यश्री! कहीं भी रहें, कुछ भी करें परन्तु प्रतिक्षण हृदय में ज्वार-भाटा की नाईं कल्पनायें उठ-उठ कर विलीन होती रहती हैं। मगध विजय करना अत्यन्त दुरूह है। भाग्य के इस अप्रत्याशित परिवर्तन ने हमें चकित कर दिया है।

चाणक्य- कठिन है वत्स! मगध की गजसेना विशाल है। मगध नरेश के पास अटूट संपत्ति है फिर भी उस अजेय पर हमें जय प्राप्त करनी है। आयुष्मान्! तुमने अलक्षेन्द्र को खदेड़ कर भारतीय नरेशों के सन्मुख सम्मान पूर्ण स्थान पा लिया है। वे सब तुम्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और तुम्हारे पराक्रम से सभीत भी हैं। हमें विश्वास है कि भविष्य में वे तुम्हारे विरुद्ध सिर उठाने का दुस्साहस कभी नहीं करेंगे।

चन्द्रगुप्त- यह सब आपका ही प्रताप है आचार्यश्री! आपका शिष्यत्व प्राप्त करना ही परम सौभाग्य का लक्षण है। पर मगध के प्रथम युद्ध में ही हार हुई। 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः'।

चाणक्य- निश्चय ही इस बार के युद्ध में हमें कड़ी पराजय झेलना पड़ी। पर हम अपने छिद्रों से चौकन्ने हो गये। हमें अपनी भूल ज्ञात हो गई।

चन्द्रगुप्त- भूल तो मानव का स्वभाव है गुरुदेव! **मानव को श्रेष्ठ बनाने में ठोकरें ही सहायक होती हैं। जितनी ठोकरें मिलेंगी व्यक्ति उतना ही मँजकर पुरुषार्थी होगा। उन्नति के शिखर पर सहज ही नहीं चढ़ा जा सकता। निराशा का उन्मूलन कर धैर्य और साहस के साथ अनेक कठिन विपत्तियाँ गले लगाना पड़ती हैं तभी सर्वश्रेष्ठ स्थान पर पहुँच सकते हैं।**

चाणक्य- आश्वस्त हुआ भद्र! **विपत्तियों से न घबराना ही महानता के लक्षण हैं।** तुम निश्चय ही कृतकार्य हो सकोगे। उस चींटी को

देख रहे हो वत्स! वह अन्न का एक दाना ले जाने के लिये उपक्रम में कितनी व्यस्त है।

चन्द्रगुप्त– हाँ गुरुदेव! बार–बार दाना उसके मुँह से छूट जाता है पर वह हार नहीं मान रही, बराबर अपना कार्य किये जा रही है।

चाणक्य– बस तुम्हारे जीवन का भी यही ध्येय होगा। सहिष्णुता तुम्हें एक दिन अवश्य चमका देगी। देखो चन्द्रगुप्त! इस ओर निहारो। यह गुलाब का पुष्प कैसा विहँस रहा है। जानते हो, जब वह कली के रूप में था तब काँटों ने उसे कैसा घेरा था? उसका जीवन कठिन हो गया परन्तु उसने सबके प्रकोप सहे। यहाँ काँटों से उसका शरीर विंधता तो वहाँ झंझा के प्रबल झकोरे उसे जड़मूल से उखाड़ने में व्यस्त थे। पर वाह रे गुलाब! हँस–हँस कर उसने अपने शत्रुओं का स्वागत किया, तनिक भी चिन्ता नहीं की। अब देखो! उमंग से कैसा खिला हुआ है?

चन्द्रगुप्त– आपकी शिक्षा ने मुझे सब प्रकार के संकट झेलने के उपयुक्त बना दिया है महामन्! मुझे भी जीवन भर आप इसी प्रकार हँसता हुआ पायेंगे। मुरझाया मुख लेकर मैं कभी आपके सम्मुख आने की अवज्ञा नहीं करूँगा।

चाणक्य– एक प्रश्न है वत्स! कल्पना करो यदि तुम किन्हीं कारणवश कृतकार्य नहीं हुये, तुम्हारी आशाओं के विपरीत तुम्हें जीवन–भर केवल विपत्तियाँ ही मिलीं तब?

चन्द्रगुप्त– जीवन संघर्षमय है आचार्य! **सुख–दुःख से आशा निराशा में समदर्शीपन ही मानवता का लक्षण है। कर्त्तव्य और पुरुषार्थ करना हमें श्रेयस्कर है। फल की इच्छा ही दुःखकारक है। कृषक खेतों में बीज वपन करता है। नित्य कष्ट सहकर वह उनकी सेवा, देखभाल करता है। इतने पर भी फसल की क्षति वृद्धि का वह स्वामी नहीं।**

उसका कार्य केवल मनोयोग पूर्वक कर्त्तव्य को पूरा करते जाना है। क्षति होने पर भी वह अपने कर्त्तव्य से मुख मोड़ लक्ष्य भ्रष्ट नहीं होता।

चाणक्य- यथार्थ है आयुष्मान्! तुम्हें अपने मनोबल को अभीष्ट सिद्धि तक बढ़ाए रखना है। साहस से आगे बढ़ते रहो। सिद्धियाँ तुम्हारे चरण चूमेंगीं। जीवन आशा-निराशा का घर है। उत्थान-पतन का भण्डार है। अंशुमाली की ओर देखो। प्रातःकाल क्षण-क्षण कितना प्रचण्ड हो रहा था। दोपहर में उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा; कोई उसकी ओर आँख उठाने का दुस्साहस न कर सका। किन्तु जब यही

प्रचण्ड भानु ग्रहण से ग्रसित होता है तब साधारण जन भी काँच में कालिख लगाकर उसे भरपूर दृष्टि से देखते हैं और वह देखने वालों का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता।

चन्द्रगुप्त- यह नियति का खेल है आचार्यश्री! इससे ज्ञात होता है कि प्रत्येक का समय सर्वदा एक सा नहीं रहता, चाहे वह कितना ही महाप्रतापशाली क्यों न हो। नियति अहंकार को तोड़ देती है; किंवा अपने दैनिक कार्यों से विवेकशील मानवों को शिक्षा देती है।

चाणक्य- हाँ वत्स! ठीक यही सिद्धान्त मगध नरेश के विषय में उपयुक्त बैठता है। जीवन, संध्या की ढलती हुई परछाईं के सदृश है। आकाश को देखो! सूर्य की प्रखरता लुप्त होती जा रही है। वह प्रचण्ड अग्नि का गोला शनैः शनैः शीतल होता जा रहा है। अभी-अभी धरती के कोने-कोने में अँधेरा छा जायेगा। जानते हो न, इस रजनी के घोर अँधेरे के राज्य को भी कौन तोड़ सकता है? वह है सोलह कलाओं से पूर्ण सम्पूर्ण चन्द्रमा।

चन्द्रगुप्त– प्रकृति के क्रियाकलापों में अगणित रहस्य भरे पड़े हैं। चन्द्रमा का ही उदाहरण पर्याप्त है। पूर्णिमा के पश्चात् अमावस्या आती है जब चन्द्रमा का नभ प्रदेश में अस्तित्व भी शेष नहीं रह जाता।

चाणक्य– हाँ आयुष्मान्! जीवन का यही अन्त है।

चन्द्रगुप्त– आप निश्चिंत रहें गुरुवर! आपका शिष्य अपने राष्ट्र की उसी परम्परा का निर्वाह करेगा जो अनादिकाल से आर्यखण्ड में प्रवाहित हो रही है। यदि हम सुख में हँस सकते हैं तो दुःख वेदना में भी दूने उत्साह से हँसेंगे। **निर्मल आध्यात्मिक शीतल जल की पवित्र गंगा में जो अवगाहन कर लेता है, उसे सांसारिक प्रलोभन आकर्षित कर पथ– भ्रष्ट नहीं कर पाते। हर्ष–विषाद दोनों एक से ही प्रतिभासित होते हैं।**

चाणक्य– सच है चन्द्र! **जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया, वही धन्य है। आचरण हीन व्यक्ति का ज्ञान नितांत निरर्थक है।**

(सांध्यबेला हो गई है। गृहस्थ के भोजन का समय हो गया है। वृद्धा भोजन के अवसर पर किसी अतिथि की खोज में बाहर आती है। ताकि उसे भोजन कराकर सभी जन प्रसाद ग्रहण करें)

वृद्धा– सौभाग्य है अतिथि गण! चलें सांध्यबेला का भोजन ग्रहण कर हमें अनुग्रहीत करें।

चाणक्य– क्षमा करें माँ! हम बटोही हैं; कुछ क्षण विश्राम हेतु आपकी बगिया में रुक गए हैं। अभी हमें बहुत मार्ग पार करना है।

वृद्धा– आर्य! हमें अतिथि सत्कार से वंचित न करें। कृपया हम गृहस्थों के धर्म निर्वाह में रुकावट न डालें।

चाणक्य– ऐसी धृष्टता तो हम नहीं कर सकते माँ! संध्या हो रही है, दूर जाना है। रात्रि के प्रथम ही तनिक आगे चलकर किसी योग्य पांथशाला में रहकर प्रभात होने की प्रतीक्षा करेंगे। भोजन करने से अनावश्यक विलम्ब होने की संभावना है।

वृद्धा– हानि ही क्या है? रात्रि यहीं व्यतीत करें,भोर में स्नान भोजन कर पुनः अपने गंतव्य स्थान पर चल दें। अभ्यागतों का स्वागत कर हमें पुण्य संचय कर लेने में आपको आपत्ति न होना चाहिये।

चन्द्रगुप्त– हम अज्ञात कुलशील हैं माता!

वृद्धा– तब भी हमें कोई आपत्ति नहीं है, अतिथियों की सेवा करना हमारा कर्तव्य व शोभा है। कर्तव्य की अवहेलना कर हमें पाप पंक में न डुबोएँ। अतिथि कोई भी हो हम तो केवल आतिथ्य में अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं।

चाणक्य– धन्य हो माता! धन्य हो! जब तक आर्यखंड में तुम जैसी दानशीला, अन्नपूर्णा जन्म लेती रहेंगी तब तक भारत परमुखापेक्षी कदापि नहीं हो सकेगा। (चन्द्रगुप्त से) चलो वत्स! माता का आतिथ्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

वृद्धा– चलें आर्य! कुटिया में प्रवेश करें।

(सब कुटिया में पहुँचते हैं वृद्धा सबको आसन देती है और थालियों में भोजन परोसती है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, वृद्धा का पौत्र और पुत्र चारों भोजन हेतु विराजते हैं)

पुत्र– स्वागत है अतिथि गण! विराजें। (चाणक्य चंद्रगुप्त बैठ जाते हैं वृद्धा थाली में खीर परोसती है)

वृद्धा– भोजन प्रारम्भ करें सब। (क्षण के पश्चात्)

पौत्र– (हाथ हिलाकर चिल्लाता है)

वृद्धा– क्या हुआ वत्स?

पौत्र– दादी माँ! मैं जल गया खीर से, तुमने कैसी खीर बनाई है?

वृद्धा– पागल! खीर तो अच्छी बनी है, तू जल गया तो अपनी अज्ञानता के कारण, तुझे भोजन करना भी नहीं आता रे! चाणक्य जैसी

अज्ञानता कर व्यर्थ ही हाथ जला लिया।

(चाणक्य और चन्द्रगुप्त एक-दूसरे का मुख देखते हैं)

चाणक्य- मातुश्री! बालक के जलने के साथ चाणक्य की विलक्षण प्रशंसा जोड़कर आपने हमें कुतूहलपूर्ण कर दिया है, भला इस अद्भुत उपमा का क्या प्रयोजन?

वृद्धा- आपको ज्ञात नहीं अतिथि! चंद दिन पूर्व उस महामूढ़ चाणक्य ने अपने पृष्ठ भाग को बिना सुरक्षित किये अतुल बलशाली मगध नरेश की राजधानी पर सीधा आक्रमण कर दिया। मैं तो समझती थी कि चाणक्य महापण्डित धुरंधर विद्वान है पर इस अज्ञानता से मूर्ख प्रमाणित हो गया।

चाणक्य- चाणक्य ने सोचा होगा कि मगध नरेश महापद्मनन्द वृद्ध हो गए हैं, पुत्र विलासप्रिय हैं, अतः राजधानी पाटलीपुत्र पर आक्रमण करने से विशाल सिंहासन सरलता से प्राप्त हो जायेगा, इससे महान मगध के अन्य सभी करद-नरेश स्वयमेव आधीनता स्वीकार कर लेंगे।

वृद्धा- इतना विशाल राज्य सरलता पूर्वक हस्तगत नहीं होता आर्य! उचित तो यह था कि प्रथम पर्याप्त सैन्यबल एकत्रित करता, तत्पश्चात् सीमावर्ती लघु राज्यों को विजित करता तब कहीं पर्याप्त सेना द्वारा मगध को चुनौती दी जा सकती थी।

चाणक्य- यथार्थ है माँ! चाणक्य ने विचार मंथन के पूर्व ही शीघ्रता कर युद्ध का समारम्भ कर दिया, पराजय का यही कारण है।

वृद्धा- पराजय तो हुई ही पर उसे और उसके शिष्य चंद्रगुप्त दोनों को प्राण बचाना भी कठिन हो गया है, कौन जाने कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे बेचारे? चारों ओर राज्य के गुप्तचर घूम रहे हैं उनकी टोह में! जीवित या मृत पकड़ लाने का आदेश है सैनिकों को।

चन्द्रगुप्त– ज्ञात होता है शस्त्रधारियों को चकमा देकर भाग गए हैं। अभी तक शासन की ओर से कोई विज्ञप्ति प्रकाशित नहीं हुई।

वृद्धा– प्रभु! उनकी रक्षा करें किन्तु अविचार पूर्वक कार्य का उन्हें फल मिल गया, अब विवेकपूर्वक कार्य हो तो अवश्य सफल हो सकते हैं। मत्त गयंद को बाँधने के लिए क्षुद्र तृणों को एकत्रित कर बट लेना आवश्यक है, साथ ही लालच का पूर्व परित्याग करना होगा। आपने देखा न इस बालक को, किनारों की शीतल खीर न खाकर सर्वाधिक उष्ण मध्य भाग में ही हाथ डाल दिया, अब जलन की पीड़ा न हो तो क्या हो?

चंद्रगुप्त– आपकी सम्मति उचित है मातुश्री! यदि मेरी कभी आचार्य चाणक्य से भेंट हुई तो अवश्य तुम्हारी वाणी उन तक पहुँचा दूँगा।

वृद्धा– आयुष्मान्! कहाँ आचार्य चाणक्य, कहाँ मैं वृद्धा, क्या समानता है? ये विचार मेरे मस्तिष्क में अहिर्निशि चक्कर लगाते रहते हैं, उनकी बुद्धि पर मुझे करुणा आती है। सुना था चन्द्रगुप्त, चाणक्य इस राज्य के उन्मूलन में लगे हैं, प्रसन्नता हुई क्योंकि महाराज महापद्मनन्द वृद्ध हो गए हैं, उनके राज्य में बहुत सुख–समृद्धि देखी पर अब राज्य की बागडोर उनके पुत्रों के हाथ में आयेगी, वे सब अयोग्य हैं, तब ही से उनके नाम पर प्रजा पर अत्याचार होना प्रारम्भ हो गया है, भविष्य में न जाने क्या हो? अतः सुराज्य के स्वप्न देखा करती थी सो इस पराजय से वह आशा भी धूमिल सी हो गई है।

चाणक्य– माँ! 'दूर के ढोल सुहावने होते हैं।' अभी से क्या कहा जा सकता है कि चंद्रगुप्त सुराज्य स्थापित कर ही लेगा, राज्य पाकर वह उन्मत्त भी हो सकता है?

वृद्धा– आर्य! पूत के गुण पालने में दिखाई देने लगते हैं। जिस चन्द्रगुप्त ने विदेशी शत्रु अलक्षेन्द्र को भगाया, पर्वतीय नरेशों का संगठन

किया। क्यों? किन्हीं उच्च विचारों से प्रेरित होकर ही उसमें पवित्र भावनाओं का उदय हुआ है न? सत्य पर अडिग वह असाधारण मानव सन्मार्गी होगा। उसका खड्ग न्याय के लिए उठेगा। उसका उपयोग प्राणहरण के लिये नहीं अपितु प्राणरक्षा, मर्यादा के निर्वाहणार्थ होगा, ऐसा व्यक्ति होनहार, भाग्यशाली, महाप्रतापी अनिवार्यतः होना ही चाहिये।

चन्द्रगुप्त– आप बहुत आगे बढ़ गईं मातुश्री! फिर भी यदि आपकी बात किन्हीं अंशों में मान ली जाये तो भी यह उसकी सामर्थ्य नहीं, उसके गुरु आचार्य चाणक्य की महिमा है।

वृद्धा– नहीं वत्स! कम से कम मैं ऐसा नहीं मान पाती। दोनों की ही महिमा है, दोनों मिल कर ही पूर्ण हो पाये हैं। साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति आधा मनुष्य होता है यदि उसे सच्चा हमराही मिल जाये तो वह आधा नहीं रहता, दोनों एक–दूसरे के अभाव में अपूर्ण और बलहीन हैं, दोनों मिलकर एक और एक दो नहीं, एक पर एक ग्यारह हो जाते हैं। चाणक्य, चन्द्रगुप्त की ढाल बनकर रक्षा करते हैं, गुरु–शिष्य का यह अपूर्व स्नेह अद्वितीय है।

चाणक्य– हो सकता है आपका ही कथन सत्य हो पर इस बार गुरु ने शिष्य को अत्यन्त कष्टकारक संकट की स्थिति में डाल दिया, छोटा–सा शक्तिहीन दल ले मगधपति पर आक्रमण करने की विषम भूल कर बैठा।

वृद्धा– और क्या? अंधेरे में छलाँग लगवा दी फिर भी यदि वे इस युद्ध से शिक्षा ग्रहण करें तो अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, एक बार पुनः दूर–दर्शिता से विचार कर लघु राज्यों को विजित कर उन पर अपनी छाप अंकित कर दें तब फिर विजय ही विजय है।

पटाक्षेप

[दृश्य–बीसवाँ]

(पंचनद नरेश पौरवराज का अन्तःकक्ष)

(पौरवराज चिन्तामग्न हैं। कभी वे तल्प पर बैठ जाते हैं। कभी

उद्विग्न हो कक्ष के चक्कर लगाते हैं) (प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी- जय हो महाराज! आप से एक सज्जन भेंट करने के इच्छुक हैं, आने की अनुज्ञा चाहते हैं।

पौरवराज- कौन हैं? कहाँ से आये हैं?

प्रतिहारी- पूछने पर उन्होंने कुछ नहीं बताया। वे देव की सेवा में स्वयं उपस्थित होकर निवेदन करना चाहते हैं।

पौरवराज- कैसे हैं? अच्छा ले आओ पर....!

प्रतिहारी- भद्रपुरुष ही जँचते हैं, मुझे अपना कर्तव्य ज्ञात है महाराज! अच्छी तरह पूर्णतः छानबीन कर चुका हूँ।

पौरवराज- तब उन्हें ससम्मान ले आओ।

(प्रस्थान, पुनः चाणक्य को साथ में लेकर प्रवेश)

पौरवराज- (खड़े हो हँसकर अभिवादन करते हुये) ओह! आचार्य चाणक्य! पधारें महामन्! (हाथ जोड़कर) अभिवादन स्वीकार करें।

चाणक्य- स्वस्ति, स्वस्ति पौरवराज!

पौरवराज- (पास ही तल्प पर इंगित कर) विराजें देव! दर्शन कर कृतार्थ हुआ। बिना पूर्व सूचना के अनायास ही कैसे हमें दर्शन लाभ दिया?

चाणक्य- कुछ आवश्यक वार्ता हेतु हम चले आये पौरवराज! तुमसे एक बड़ी आशा और दृढ़विश्वास लेकर, अवश्य ही तुम उसे पूर्ण कर सकोगे।

पौरवराज- सेवक आज्ञा चाहता है, आदेश दें।

चाणक्य- बिना किसी आवर्त्तन-प्रवर्त्तन के सीधी और स्पष्ट बात करेंगे पौरवराज! तुमने महत्त्वाकांक्षी अलक्षेन्द्र को पाठ पढ़ाकर आंभिराज कृत आर्यखण्ड के भाल पर लगे कलंक को अधिकांश रूप में धो दिया है। उस महान गौरव से समूचा आर्यखण्ड तुम्हारी स्तुति कर रहा है, तुम ही उस विजय के अधिकारी हो, उत्तरापथ की लाज तुमने रख ली।

पौरवराज– (प्रसन्न मन) सब आप गुरुजनों का आशीर्वाद है आर्य! जो मैं क्षुद्र होकर भी देश के काम आ सका फिर भी आचार्य! आप मुझे लज्जित न करें। इस सत्य को कैसे भुलाया जा सकता है कि सारा श्रेय आपके प्रिय शिष्य कुमार चन्द्रगुप्त का ही है जिन्होंने विदेशियों के छक्के छुड़ा कर आर्यखण्ड को पराधीनता के पाश से मुक्त कर दिया।

चाणक्य– किन्तु उसे भी तुमसे ही प्रेरणा मिली है पौरवराज! इसे क्यों विस्मरण कर देते हो?

पौरवराज– मैं बार–बार लज्जित हूँ आचार्य! उस समय आपके दिये सहयुद्ध के निमंत्रण को अस्वीकार कर मैंने उचित नहीं किया पर मैं धर्म संकट के कारण विवश था, अलक्षेन्द्र से संधि कर उसके विरोध में अस्त्र उठाने पर प्रण टूटता था।

चाणक्य– वचन निर्वाह कर तुमने आर्य परम्परा निबाही है राजन्!

पौरवराज– किन्तु वचन निर्वाह का मूल्य चुकाना मुझे दुष्कर हो गया आर्य! जब मुझे नित्यप्रति अलक्षेन्द्र द्वारा किये गये नृशंस कृत्यों की सूचनाएँ मिलतीं तो मैं व्यग्र हो उठता था, बारम्बार पश्चाताप की अग्नि में झुलसता रहता। आचार्य! मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि अलक्षेन्द्र इतना क्रूर, अधम, पातकी होगा।

चाणक्य– राजन्! राज्य विस्तार और विजय की लालसा मनुष्य से क्या नहीं करा सकती? उद्दाम वासनायें जितने भी अनर्थ करें सब थोड़े हैं। तुमने सहसा उसका विश्वास कैसे कर लिया, मुझे यही आश्चर्य हो रहा है? क्योंकि उसकी अन्य राज्यों में की गई क्रूरता की कथायें वायु के साथ उड़ती हुई इस ओर भी आ चुकी थीं कदाचित् आंभिराज से प्रतिशोध लेने की ज्वाला तुम्हारे मन में सुलग रही थी।

पौरवराज– नहीं आचार्य! ऐसी कोई बात....

चाणक्य– (अनसुनी कर) निःसंदेह तुम संधि करते परंतु इस शर्त पर कि वह यहीं से लौट जाये, भारत भूमि को आगे बढ़ कर पदाक्रान्त न करे, उसे निश्चय ही विवश हो लौटना पड़ता, वह तुम जैसे महावीर से विरोध करने की मूर्खता न करता।

पौरवराज– आपका कथन ही उचित हो, यदि मैंने भूल की है तो चन्द्रगुप्त ने उसे खदेड़ कर उस महान भूल का परिमार्जन किया है। मैं शत्रुओं से आहत अपने उत्तरापथ से सहस्रों निवासियों के समक्ष नतशिर घोर अपराधी हूँ। आप ही बतलायें गुरुदेव! मैं दंडस्वरूप कौन-सा प्रायश्चित करूँ?

चाणक्य– **भूलों की अनुभूति कर उनका पुनरावर्त्तन न करना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है** राजन्! पश्चाताप रूपी अग्नि में तिल-तिल जल कर मनुष्य के पास विवेक न होता तो उद्दाम लालसाओं, भटकती हुई अनेक वासनाओं के निर्देशन पर नियंत्रण कौन कर सकता था? इसी विवेक के कारण संसार के सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव ही माना जाता है।

पौरवराज– प्रतिज्ञा करता हूँ आचार्य! कि कभी भी अब विदेशियों से इसप्रकार की सन्धि नहीं हो सकेगी।

चाणक्य– तुम्हारे दृढ़प्रण हेतु साधुवाद है तुम्हें पौरवराज! किन्तु प्रण निर्वाह निकट भविष्य की परिस्थितियों में असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

पौरवराज– वह कैसे गुरुदेव! सम्राट अलक्षेन्द्र अपनी महत्त्वा-कांक्षाओं, विश्व विजय की अभिलाषाओं को समेटे हुए इस दुनियाँ से कूच कर गया, अब भारत पर युद्ध के बादल नहीं छा सकते।

चाणक्य– यह न भूलो पौरवराज! कि अलक्षेन्द्र का महासेनाध्यक्ष शैलाक्ष अपने सम्राट से भी अधिक महत्त्वाकांक्षी है, वह अवश्य एक बार

भारत विजित करने के अर्थ भाग्य की परीक्षा करेगा, उसके लिये यह स्वर्णावसर है।

पौरवराज– नहीं आचार्य! यूनानी यहाँ से परास्त होकर गये हैं, अपने देश लौटने में उन्हें भीषण बाधाओं का सामना करना पड़ा है, दुर्दशाग्रस्त सैनिकों की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी घर पहुँचते–पहुँचते बहुतों को मृत्यु अपना ग्रास बना चुकी, अब वे पुनः यहाँ आक्रमण करने का दुस्साहस कदापि नहीं करेंगे।

चाणक्य– तुम्हारा अनुमान मिथ्या है पौरवराज! यहाँ के राज्य जीतकर उसने अपने क्षत्रप नियत कर दिये थे, ताकि यूनानी शासन सूत्र का संचालन सुचारु रूप से होता रहे।

पौरवराज– (बीच ही में) किन्तु अब उन्हीं में आपस में ठन गई। फिलिप्स की हत्या हो गई, क्रमशः पेइयन आदि अन्य क्षत्रप भी मार डाले गये। आर्य चन्द्रगुप्त ने भारतवर्ष को यूनानी शासन से सदा के लिए मुक्त कर दिया, उस प्रतापशाली वीर पुंगव की जितनी भी प्रशंसा की जाये थोड़ी है और अब अलक्षेन्द्र की मृत्यु से यूनान देश का मानो भाग्य ही अस्त हो गया है, उसका उत्तराधिकारी कोई नहीं है।

चाणक्य– भले ही अलक्षेन्द्र की संतान न हो परन्तु उसका उत्तराधिकार शैलाक्ष के हाथों में पूर्णतः सुरक्षित है, उसके समस्त अधिकारियों में महासेनाध्यक्ष शैलाक्ष ही प्रभावशाली पुरुष है। ये सभी मृत्यु उसके भाग्योदय में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होकर भविष्य में अनुकूल परिस्थिति का निर्माण ही करेंगी।

पौरवराज– यदि शैलाक्ष इस ओर मुख करेगा तो हम मुँह तोड़ उत्तर देंगे।

चाणक्य– राजनीति में केवल वीरता ग्रास नहीं है राजन्! शैलाक्ष

कम कूटनीतिज्ञ नहीं है, तुम क्या समझते हो कि वह अब मुँह की खाने आयेगा? ऐसा भोला नहीं है, इस बार वह दुगनी–चौगुनी सामरिक सामग्री व सैनिकों से सुसज्जित होकर आक्रमण करेगा, तब इन लघु राज्यों की क्या सामर्थ्य कि उससे लोहा ले सकें। पश्चिम भारत में तुम्हीं अकेले बचे रहते हो जो शत्रुओं को सीख दे सकते हो किन्तु तुम अकेले कब तक जूझोगे, परिणाम विपरीत भी हो सकता है।

पौरवराज– आर्य चन्द्रगुप्त की मित्रता हमें सहारा देगी आचार्य!

चाणक्य– यह तो पूर्व निश्चित है ही। चंद्रगुप्त ने अपना संपूर्ण जीवन ही आर्यखंड के उद्धार में लगा दिया है राजन्! किन्तु आज भी उसका निवास स्थान निश्चित नहीं हो पाया है, इसलिये अगली योजनाएँ विकास नहीं पा रहीं, उसका समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है, यदि तुम मानो तो हम तुम्हारे समक्ष एक नवीन प्रस्ताव प्रस्तुत करें।

पौरवराज– (शीघ्रता से) कहें प्रभु! आपके आदेशों का पालन कर धन्य हो जाऊँगा।

चाणक्य– एक प्रश्न है यदि उत्तरापथ से मगध राज्य को पृथक् कर दिया जाये तो तुम्हीं बतलाओ उसकी तुलना में और कौन सा राज्य बैठ सकता है?

पौरवराज– (दुखित हो, लम्बी साँस ले) वह तो ईर्ष्या की वस्तु है आचार्य! इस सत्य से हम पलट नहीं सकते कि वह अपने जोड़ का अद्वितीय है, उसके पास अटूट संपत्ति है, उस विशाल राज्य की सैनिक शक्ति तथा गज वाहिनी विराट है।

चाणक्य– स्मरण होगा कि मगध राज्य ने अलक्षेन्द्र के आक्रमण के कठिन अवसर पर भी सहयोग नहीं दिया, भविष्य में भी उससे आशा नहीं की जा सकती, वह अपने में ही मग्न है, न वह स्वयं किसी से आशा रखता

है, न किसी को विश्वास दे सकता है, हो सकता है शत्रु वहाँ तक पहुँचे ही नहीं और मगध सिंहासन सुरक्षित रहे किन्तु कोई कार्य असंभव नहीं है पौरवराज!

पौरवराज– यदि विदेशियों ने दुस्साहस किया तो भी मगध सहज में पराजित नहीं होगा।

चाणक्य– तो क्या तुम यह सोचते हो कि विदेशी मगध विजित करेंगे तो आकाश पथ से पवन रथ पर चढ़कर सीधे मगध पर ही उतरेंगे, अरे जायेंगे तो वे इसी पथ को रौंदते हुये, जहाँ अगणित लघु राज्य अपनी–अपनी सीमा में किसी प्रकार जीवित हैं, वे क्या बच पायेंगे। स्मरण रखो राजन्! जब प्रबल वेग से अन्धड़ चलता है अथवा दावाग्नि लगती है तो फूलों की कोमल अधखिली कलियाँ बच नहीं पातीं।

पौरवराज– (विनयपूर्वक) अपना अभिप्राय स्पष्ट करें गुरुदेव!

चाणक्य– पौरवराज! हमारा कोई स्वार्थ या निज का कल्याण नहीं है। हमारे हृदय में एक टीस है, एक प्यास है जो हमें पल–भर भी चैन नहीं लेने देती और वह आकुलता यह है कि विदेशी बर्बर म्लेच्छों से हमारी पवित्र भारत भूमि आक्रांत न हो, हमारी संस्कृति नष्ट न हो इसीलिये हमारा सारा प्रयत्न है। पश्चिम में तुम जाज्वल्यमान नक्षत्र की तरह चमक रहे हो, तुम जैसा योग्य इस ओर दूसरा नहीं है, यदि विदेशियों से सचमुच भारत की रक्षा करनी है तो तुम्हें और चन्द्रगुप्त को एक होना होगा, कंधे से कंधा मिला कर साथ–साथ बढ़ना होगा तभी हमारी आशायें फलीभूत हो सकती हैं और बिना मगध के हम विदेशियों से भी लोहा नहीं लेना उचित समझते क्योंकि लघु राज्य स्थायी रूप से विदेशियों को खदेड़ने में असफल ही रहेंगे, कृतकार्य होना है तो मगध विजय अभियान से ही अपने कार्य का प्रारम्भ किया जाये।

पौरवराज– (उत्सुकता पूर्वक) मगध विजय की अभिलाषा तो

बहुत दिनों से प्रबल है आचार्य! किन्तु...

चाणक्य- किन्तु क्या पौरवराज! उस अभिलाषा को साकार करो, यह स्वर्णावसर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम कर्मठ हो, **कर्मठ व्यक्ति समय की प्रतीक्षा कभी नहीं करता।**

पौरवराज- आपका कथन यथार्थ है गुरुवर! पर एक बात है...

चाणक्य- समझ गये राजन्! तुम्हारे मन में शंका की नागिन उमड़ रही है, यों तुम्हारी शंका निर्मूल भी नहीं है, उसका समाधान बड़ा सरल है। विजय प्राप्त कर आधा-आधा राज्य तुम दोनों बाँट लेना। पाश्चात्य भारत के तुम एवं प्राच्यभारत के चन्द्रगुप्त दोनों अर्धचक्री भारतेश्वर कहलायेंगे। दोनों ही आर्यखण्ड के दो सुदृढ़ आधार स्तम्भ होंगे। उत्तरापथ के लघु राज्य एक सूत्र में बंध जायेंगे। जानते हो पौरवराज! तुम दोनों सुगठित रूप से की हुई मित्रता के समक्ष कोई भी जटिल समस्या तुरंत हल हो सकेगी, अन्य शक्तियाँ सिर उठाने का दुस्साहस न कर सकेंगीं, बोलो स्वीकार है पौरवराज?

पौरवराज- (उतावली से) अस्वीकार कैसे कर सकता हूँ आचार्य श्री! प्रथम ही मैं आपसे वचनबद्ध हो चुका हूँ।

चाणक्य- विचार कर लो राजन्! अमात्य वर्ग से सम्मति ले लो। पुत्र मलयकेतु से भी परामर्श किया जा सकता है। तत्पश्चात् तुम अपने अन्तिम निर्णय से हमें अवगत करो ताकि भविष्य में मन संकल्प-विकल्पों से ऊब न उठे, संप्रति हमारा यह मात्र सुझाव ही समझो।

पौरवराज-आचार्यश्री! आपसे बढ़कर अन्य कौन हमारा शुभचिंतक हो सकता है? आप स्वयं विद्या, संस्कृति के केन्द्र हैं। सौभाग्य से आपकी प्रेरणा, सम्मति प्राप्त हुई है तो उसकी उपेक्षा करने की धृष्टता मैं नहीं कर सकता।

चाणक्य– मुझे प्रसन्नता है राजन्! कि तुमने समय की गति को भाँप लिया है, हमें विश्वास है कि उसी के अनुरूप तुम अपनी योजनाएँ गढ़ोगे।

पौरवराज– आपकी सम्मति और सहयोग से मैं भी अपनी मनोकामना पूर्ण कर सकूँगा। यह भी अच्छा रहा कि दोनों भारतेश्वर कहलायेंगे।

चाणक्य– हाँ! पर एक मंत्र और सुन लो, अभी इस बात को गुप्त रखना होगा, रहस्य को तत्काल उभार देने से कार्य बिगड़ने की सम्भावना है। यह अभी हम लोगों के बीच ही रहे। षट्कर्ण न होने पाये, प्रकट होने पर अन्य लघु राज्य भी अपनी–अपनी नई–नई शर्तें प्रस्तुत कर सकते हैं। उससे हमारी योजना विफल भी हो सकती है। लघु राज्यों को भी अपने विश्वास में लेना होगा किन्हीं प्रलोभनों से उन्हें आकृष्ट करना होगा ताकि हम सदल बल मगध को विजित कर सकें।

पौरवराज– यथार्थ कह रहे हैं आप! आपके आदेशानुसार ही चलूँगा।... क्षमा करें देव! एक और शंका शेष है, उसे भी निःशेष कर दें तो कृपा होगी।

चाणक्य– कहो, कहो निःसंकोच होकर कहो पौरवराज! मन का काँटा निकलना परमावश्यक है, तत्पश्चात् ही तुम लगन–पूर्वक सुचारु रूप से कार्य कर सकोगे।

पौरवराज– वह यह कि प्रथम तो मेरी बात असंभव ही है फिर मानव के मानस में निरंतर नवीन विचारधाराओं का उद्गम होता रहता है, कहीं आर्य चन्द्रगुप्त राज्य बँटवारे को मान्यता न दें तब?...

चाणक्य– (हँसकर) कैसी अनहोनी सी बातें कर रहे हो पौरवराज!

पौरवराज– नहीं देव! अनहोनी कुछ भी नहीं है। यद्यपि इसकी संभावना कम ही है फिर भी असंभव तो नहीं। काश! ऐसा हो जाये तो?

चाणक्य– यदि कोई वचन भंग करे तो उसे उसका फल चखाने हेतु तुम्हारी तलवार ही बहुत है पौरवराज! तुम वीर हो, मन छोटा न करो। **निर्भीक पौरुष न किसी से भीत होता है, न ही किसी की अपेक्षा रखता है।**

पौरवराज– (जोश में भरकर) सो तो है, मुझे अपनी चिरसंगिनी तलवार पर पूर्ण विश्वास है।

चाणक्य– तब तुम अपने वचन पर दृढ़ हो, अब किसी प्रकार का और संदेह तो नहीं रहा?

पौरवराज– नहीं आचार्य! बिल्कुल भी नहीं। आपके आदेश पालन में तत्पर हूँ। पुत्र मलयकेतु के कुशल निर्देशन में मेरा समस्त सैन्य परिकर सेवा में उपस्थित है। मैं अभी मलयकेतु को बुलाकर उसे अपनी निर्दिष्ट वार्ता से सूचित किये देता हूँ। मैं यहीं रहकर राज्य-व्यवस्था बनाये रखूँगा।

चाणक्य– शुभास्तु! हम तुम्हें शीघ्र ही नवीन योजनानुसार सूचनाएँ प्रेषित करेंगे। मगध के समर स्थल में तुम्हारी प्रतीक्षा रहेगी।

पौरवराज– हाँ, गुरुदेव! मुझे विश्वास है कि हम शीघ्र ही मगध विजय पर अपनी ध्वजा फहरा देंगे।

चाणक्य– अच्छा, अब विदा दो।

पौरवराज– रुकें देव! कुछ समय आतिथ्य स्वीकार करें।

चाणक्य– नहीं पौरवराज! अभी आतिथ्य के लिये हमें विवश न करें। कार्य महान है, चंचल समय की गति अतितीव्र है, हमें भी क्षिप्रता से अपनी वृहद् योजना बढ़ानी होगी, उत्तरापथ के सभी नरेशों से हमें त्वरित सम्पर्क साधना है।

पौरवराज– फिर भी मुहूर्त भर विश्राम करते तो मुझे प्रसन्नता होती आचार्य! आप अभी आये और अभी चले, सेवा का कुछ तो अवसर दें।

चाणक्य– खिन्न न हों राजन्! (हँसकर) सेवा की आपने? एक ही कही। हमने कब अपनी आजीविका अथवा स्वतःकी चिन्ता की है?

पौरवराज– यदि आचार्य गणों का मानस इन छोटी–छोटी चिन्ताओं से व्याप्त हो तो अनर्थ हो उठेगा। संस्कृति की बागडोर कौन थामेगा? हम लोग तो स्वार्थ में फँसे ऐहिक इच्छाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं और आप इसके विपरीत केवल मानव मात्र के कल्याण हेतु देश व धर्म के प्रति सदैव सजग और सावधान बने रहते हैं, आपकी ही निरंतर सजगता के कारण सबकी रक्षा होती रहती है। धन्य है आपको!

चाणक्य– यह विशेष प्रशंसा की बात नहीं है राजन्! क्षत्रिय क्षात्र–धर्म का निर्वाह करते हैं और हमारा तन–मन–ज्ञान सभी देशवासियों के कल्याण हेतु न्योछावर है। हमारी राष्ट्र परंपरा इसी क्रम से चली आ रही है एवं वह इतनी स्वच्छ और सरल है कि आचार्यों को निर्धनों की कुटिया से लेकर राज्य का कोई भी स्थल अगम्य नहीं है।

पौरवराज– ऐसी पवित्र भूमि पर जन्म लेना परम सौभाग्य है आचार्य!

चाणक्य– अच्छा, पौरवराज! अब हम चलें। एक बात ध्यान में रखना कि संशय को हृदय में तनिक भी स्थान न मिले अन्यथा यह एक ऐसा विष है जो हमारी मूल शक्ति के स्रोत को ही सुखा देता है।

पौरवराज– मेरी ओर से आप निश्चिंत रहें महामन्! पुनः कभी सेवा का अवसर प्रदान करें।

पटाक्षेप

[दृश्य-इक्कीसवाँ]

(चंद्रगुप्त मगध पर सामूहिक आक्रमण करता है। चंद्रगुप्त की विजय होती है और महापद्मनंद पराजित होते हैं। उन्हें राज्य से निष्कासित होने का आदेश दिया जाता है एवं जीवन निर्वाह के लिये रथ भर सामग्री आग्रह पूर्वक दी जाती है। उस समय नंदराज की सुपुत्री सुप्रभा एवं चंद्रगुप्त परस्पर देखते हैं और उनमें प्रीति का आदान-प्रदान होता है। यह देखकर महापद्मनंद और आचार्य चाणक्य दोनों को विवाह की स्वीकृति दे देते हैं। सुप्रभा जब चंद्रगुप्त के रथ में चढ़ती है तो अनायास रथ के चक्र के नौ आरे तड़ातड़ टूट जाते हैं। रथ से चंद्रगुप्त उसे उतरने का आदेश दे देते हैं। इसके पहले चाणक्य अपनी कुटिया में आ जाते हैं। सुप्रभा आदेश स्वीकार नहीं करती, अतः यह विवाद सुलझाने के लिये सब आचार्य चाणक्य की कुटिया में आकर बैठ जाते हैं। चाणक्य कुटिया के पार्श्व भाग में नवीन क्यारियों का निरीक्षण कर रहे हैं। संवाद मिलने पर वे आते हैं। महापद्मनंद, सुप्रभा, चन्द्रगुप्त, जयदेव व दो अंग रक्षक आते हैं। अंगरक्षकों को छोड़ सभी भीतर प्रवेश करते हैं)

पालक- (सबको देख) स्वागत है राजन्! अकस्मात् आगमन कैसा? विराजें (पृथ्वी से छः अंगुल ऊँचे बिछे काष्ठासनों पर बैठने का संकेत करता है, सब बैठ जाते हैं)

चंद्रगुप्त- पालक! आचार्यवर कहाँ हैं?

पालक- नवीन क्यारियों का निरीक्षण कर रहे हैं देव! मैं आपके आगमन की सूचना दिये देता हूँ।

चंद्रगुप्त- कहना आवश्यक कार्य है।

पालक- जो आज्ञा। (प्रस्थान)

महापद्मनंद- (सुप्रभा से) आयुष्मति! तुम अपनी हठ छोड़ अपनी माता के साथ रहो, दुर्भाग्य का उदय होने में विलंब नहीं लगता।

सुप्रभा– तात! अब माँश्री के साथ कैसे रह सकती हूँ जब कि मैं आर्य चंद्रगुप्त को पति रूप में वरण कर चुकी हूँ। वह भी आप सब गुरुजनों की अनुमति से और तो और स्वयं विद्वद्वर्य आचार्य चाणक्य भी सहमति व्यक्त कर चुके हैं। स्वयं आर्यपुत्र ने भी स्वीकारता दे दी थी। अब आप ही बतायें न्याय संगत क्या है? पति द्वारा परित्यक्ता पत्नी का स्थान कहाँ हो सकता है?

चंद्रगुप्त– राजकुमारी सुप्रभा! केवल अनुमति मात्र से ही पत्नी नहीं कहला सकती। अभी विधिवत् वैवाहिक गठबंधन ही नहीं हुआ। अभी चंद क्षणों पहिले परस्पर परिचय तक नहीं था।

सुप्रभा– सत्य है आर्यपुत्र! पर अब सम्बन्ध होने पर यह त्यागने का अभिनय कैसा?

चंद्रगुप्त– देवी! यह परिहास का समय नहीं है। गम्भीरता से विचार करो। सम्बन्ध की चर्चा होने पर रथ पर तुम्हारे चरण पड़ते ही तुरन्त नौ आरे टूट गये। फिर जीवन रूपी रथ हम किस प्रकार चला सकेंगे? एवं भविष्य में जीवन के सुखद चित्रों की कल्पना कैसे कर सकेंगे?

सुप्रभा– जीवन के सुख–दुःख से हमें कोई प्रयोजन नहीं आर्यपुत्र! पतिव्रता धर्म का निर्वाह करना ही हम कुलीन नारियों का परम कर्तव्य है। तन–मन–वचन से जिसे एक बार पति मान लिया वह अन्यथा नहीं हो सकता। पति उपेक्षा कर उसे पीड़ा अपमान और टीस की प्रत्यक्ष प्रतिमा ही क्यों न बना दे परन्तु त्याग की मूर्ति नारी अपने धर्म को छोड़ पथ से विचलित नहीं होगी।

चंद्रगुप्त– जब हमारा विवाह नहीं हुआ तो तुम्हारे प्रति हमारा कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

सुप्रभा– अमंगल समझकर कर्तव्य से भागना भयंकर भूल होगी

आर्यपुत्र! मन–वाणी–कर्म तीनों से किये गये कार्यों का फल एक ही होता है। मन–वाणी से हम दोनों ने एक–दूसरे को वरण कर लिया है। शेष क्रिया मात्र रूढ़ि है, लोक व्यवहार है। यदि कटु न लगे तो यह कहने में मुझे तनिक भी संकोच न होगा कि यह केवल दिखावा है।

(आचार्य चाणक्य का प्रवेश, सब खड़े होकर पुनः बैठते हैं)

चाणक्य– कौन सा दिखावा है कुमारी सुप्रभा!

सुप्रभा– आप ही न्याय करें महामन्! आप मुझे आर्य चंद्रगुप्त की परिणीता मानेंगे अथवा नहीं?

चाणक्य– क्यों, तुम्हें इनकी अर्द्धांगिनी बनना स्वीकार नहीं है।

सुप्रभा– देव कैसी विचित्र बातें कर रहे हैं ? भला नारियाँ किसी पुरुष को एक बार पति मान कर अस्वीकृत कैसे करेंगी? क्या उनके पवित्र पतिव्रत धर्म पर लांछन न आयेगा?

चाणक्य– उचित ही कह रही हो राजकन्या! तब तुम चाहती क्या हो?

सुप्रभा– मैं? मैं कुछ नहीं चाहती देव! मेरी अपनी अभिलाषा अब कुछ नहीं रही। मैं आर्य चंद्रगुप्त की हो चुकी हूँ। पूर्ण मन से आर्य के चरणों में स्वयं को समर्पित कर चुकी हूँ। किन्तु आचार्यश्री! आपके शिष्य दी हुई अनुमति से मुकर रहे हैं। यदि ये पत्नी को ग्रहण नहीं करना चाहते तो आज्ञा दें जहाँ मैं चली जाऊँ। पर पत्नी तो इनकी ही कहलाऊँगी। राम की आज्ञा से सीता ने भी वनवास सहा है।

चाणक्य– वत्स! क्या बात है? स्पष्ट कहो।

चंद्रगुप्त– धृष्टता क्षमा करें आचार्य श्री! वस्तुतः बात यह है कि आपकी आज्ञानुसार राजकुमारी सुप्रभा के रथ पर पैर रखते ही पहिये के नौ आरे अचानक ही टूट पड़े।

चाणक्य- आरे टूट पड़े, ओह!...

चंद्रगुप्त- हाँ देव! नौ आरे टूट पड़े। अब आप बतलाइये मैं इन्हें पत्नी कैसे स्वीकार कर सकता हूँ?

चाणक्य- स्वीकार तो पहले ही कर चुके हो वत्स! अब यह प्रश्न ही नहीं उठता।

चंद्रगुप्त- (उद्विग्नता से) आचार्यश्री!...

चाणक्य- हाँ वत्स! हम उचित ही कह रहे हैं। तुम हमारे एक छोटे से प्रश्न का उत्तर दो। कदाचित् उसी उत्तर में तुम्हारा हल भी निहित हो। क्या राजकुमारी ने बिना सबकी पूर्व अनुमति के तुम्हारे रथ पर पैर रखा था?

चंद्रगुप्त- (मौन)....

चाणक्य- मौन क्यों हो वत्स! हम तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में हैं। क्या राजकुमारी ने स्वयमेव स्वच्छंद हो पैर रखा था?

चंद्रगुप्त- नहीं आर्य! किन्तु...

चाणक्य- किन्तु, परन्तु छोड़ो। रथ पर आने की अनुमति किसलिये दी थी, पत्नी रूप में ग्रहण करने के लिये न?

चंद्रगुप्त- (लज्जित हो) हाँ...

चाणक्य- अर्थात् स्वीकारता देने के पश्चात् आरे टूटे? तब क्या अमंगल समझकर ही तुम पत्नी का परित्याग करोगे?

चंद्रगुप्त- गुरुदेव! आपने मेरी आँखें खोल दीं, सच ही मुझसे अपराध हुआ है, आपकी आज्ञा मुझे मान्य है।

चाणक्य- (प्रसन्नता से) अब तुमने पुरुषोचित वचन कहे वीर! मुझे प्रसन्नता है कि सिंह-सिंह ही है, गीदड़ नहीं।

चंद्रगुप्त- आपका कथन सत्य है आर्य! जीवन में अनेक दुर्घटनायें होती रहती हैं, इसप्रकार हम कब-कब किस-किस से सम्बन्ध तोड़ेंगे।

विपत्तियाँ भी जीवन की सदैव सहचारिणी रही हैं, इनसे भागना कायरता है। मैं कुमारी को वरण करता हूँ।

चाणक्य– तुम्हारा निर्णय शुभ है सौम्य!

सुप्रभा– मेरे व्रत का ध्यान रखकर आर्यपुत्र ने मेरी लाज रख ली है, मैं उपकृत हुई देव!

महापद्मनंद– मुझे आपत्ति है आचार्य! जब हमारा सौभाग्य सूर्य अस्त हो गया है, दुर्भाग्य हमारा अतिथि है, इसके पहले हमने दुःख का नाम भी नहीं जाना था। हमारे पुत्र सब विलासी निकले, वे राजकाज में योग्य नहीं थे, उनमें इतनी निपुणता कहाँ जो एक श्रेष्ठ नरेश में होना अनिवार्य है। कुमार चंद्रगुप्त सिंहासनासीन होने के सर्वथा उपयुक्त व्यक्ति हैं, हमारी हार्दिक शुभ कामना है कि चंद्रगुप्त का राज्य सागरांत पृथ्वी तक चतुर्दिक प्रसारित हो, युग–युग तक इनकी कीर्तिध्वजा फहराती रहे। हम नहीं चाहते कि दुर्भाग्य की मलिन छाया अन्य व्यक्ति पर भी पड़े, हम तो डूब रहे हैं, दूसरों को क्यों ले डूबें? अतएव क्षमा करें आचार्य! दूसरों को संकट में डालना अधर्म है। मैं अपनी पुत्री आर्य चंद्रगुप्त को नहीं दे सकता।

चाणक्य– (हँसते हुये) सुप्रभा आपकी पुत्री कहाँ रही नंदराज! वह तो चंद्रगुप्त की वाग्दत्ता पत्नी हो चुकी है। भारतेश्वर की पट्टरानी, उस पर आपका अधिकार कहाँ रहा?

महापद्मनंद– नहीं, नहीं आचार्य चाणक्य! शिष्टाचार त्यागिये, आर्य चंद्रगुप्त का सुख पूर्ण जीवन अब प्रारम्भ होने जा रहा है, सौभाग्य–रवि का प्रादुर्भाव हुआ है, उसे क्रमशः उन्नति की ओर अग्रसर होने दें, दुर्भाग्य–राहु की काली छाया उसे ग्रसने न पाये।

चाणक्य– उदित रवि क्षण–क्षण प्रचण्ड होता ही है नंदराज! उसे रोकने की सामर्थ्य भला किसमें है? संप्रति आप और मैं दोनों ही समान रूप

से चंद्रगुप्त की उन्नति के आकांक्षी हैं। विकल्प त्यागें और इस विवाह की स्वीकृति दें। निमित्त शास्त्र के अनुसर नौ आरों का टूटना अत्यन्त शुभ मंगलमय है। चंद्रगुप्त के वंशज नौ पीढ़ियों तक निष्कंटक इस सिंहासन का उपभोग कर सकेंगे।

महापद्मनंद- (आश्चर्यान्वित हो) सच आचार्य!

चाणक्य- हाँ नंदराज!

जयदेव- (हँसकर) आचार्यश्री! अब तक पहेलियाँ ही बुझाते रहे, यदि इससे पूर्व ही इस शुभ सत्य का संकेत कर दिया होता तो इस विवाद का तभी अंत हो गया होता।

चाणक्य- (मुस्कराकर) जयदेव! तब हमको ये उद्‌गार सुनाई कैसे पड़ते? (नंदराज से) अब आपको इस निर्णय में आपत्ति न होगी? अवश्य स्वीकृति देंगे।

महापद्मनंद- अवश्य, अवश्य हम सहर्ष अनुमति प्रदान करते हैं। सुखद रहस्य का उद्‌घाटन कर आपने उर-सरोजों को विकसित कर दिया है आचार्य!

सुप्रभा- आचार्यश्री ने समस्त नारी समाज को कलंक से उबार लिया है, चरणों में प्रणत हूँ महामन्! (प्रणाम करती है)

चाणक्य- कोटि कोटि आशीर्वाद है आयुष्मती चिरंजीव हो! तुम भाग्यशालिनी हो, तुम एक से समस्त नारी समाज सुशोभित है।

महापद्मनंद- अच्छा, अब विदा दें आचार्य! हमें राज्य का एक तृण भी अनावश्यक है। भौतिक सामग्री खूब बटोरी अब आध्यात्मिक पाथेय का प्रबंध करना अत्यावश्यक है।

चाणक्य- नंदराज विचार तो आपके अत्युत्तम हैं किन्तु आपको महारानी के हित में आवश्यक सामग्री तो ले ही जाना होगी।

चाणक्य– इस तरह मेरे ऊपर रोष न करें, जो होना था सो हो गया।

महापद्मनंद– नहीं आचार्य! हमारा किसी पर रोष नहीं, यह तो सर्वोपरि महान उपकार है कि आपके द्वारा हमारे अंतश्चक्षु खुल गये, वैभव का मोह हमारे वक्षस्थल को लौह शृंखला की तरह जकड़े हुये था, बुद्धि का दम्भ प्रखर त्रिशूल की तरह हमारी सरल मानवता एवं स्वच्छ हृदय को स्वार्थ की नोंक से छेदता रहा। अब तक हम उन व्रणों पर ऐहिक सुख–सामग्री का लेप ही करते रहे पर इससे उपचार न हो सका, हमने विवेक के आश्रय से उस स्वार्थ को दूर नहीं किया, जिसने हमें इतना दुखी पतनोन्मुख कर दिया, अब वह सुअवसर आ गया है। रही महारानी की बात सो वे स्वतन्त्र हैं। मैं तो संसार से ही पृथक् हो रहा हूँ। अकेला ही आया ओर अकेला ही जाऊँगा।

चंद्रगुप्त– तात! आप जहाँ भी रहना चाहेंगे वहाँ सर्व प्रकार की सुविधा उपलब्ध करना मेरा कर्तव्य होगा, आप हमारे लिये सदैव ही पूज्य हैं।

महापद्मनंद– **पराश्रय से बड़ी विपत्ति दुर्भाग्य के कोष में नहीं है वत्स!**

चंद्रगुप्त– मुझे पराया न समझें श्रीमान्! मैं...

महापद्मनंद– (बीच ही में) नहीं, नहीं वत्स! तुम हमारे दामाद हो गये। पराये नहीं, अपने आत्मीय हो परन्तु यह तो शरीर का अनादिकालीन बंधन है, तन भी तो अपना नहीं है किन्तु व्यामोह में फँसकर कभी हमने विचारने का उपक्रम नहीं किया, इससे बड़ी मूर्खता और क्या हो सकती है? तन–मन के दास हो हमने अपनी आत्मा का निजी प्रभुत्व ही भुला दिया पर अब हमें वैभव की अपेक्षा नहीं है।

चाणक्य- आपकी वृद्धावस्था को देखते हुये हमारी यही सम्मति है कि आप गृह में रह कर ही उदासीन वृत्ति से जीवन यापन करें।

महापद्मनंद- (मुस्कराते हुये) आचार्य चाणक्य आप महापंडित हैं। वृद्धावस्था की निर्बलता की ओट में हमें क्षणिक भौतिक सुखों की गृद्धता में न लपेटिये, सीमा से बाहर अपनी इन्द्रियों को वश में न रखना स्वयं पर घोर अत्याचार है। मानस पर नियन्त्रण करने वाला विवेक, ऐश्वर्य के नशे में धूम्र की तरह उड़ गया था। अब उसने आकर पुनः झकझोर कर सम्पूर्ण बुद्धि और मरी हुई चेतना को जीवित कर दिया है। परिग्रह की दासता अब सह्य नहीं, आप हमें बंधन में रखने का प्रयास न करें, अब हम स्वतन्त्र हो वन में विचरण करेंगे एवं शेष जीवन को आत्म-साधना करते हुये निःशेष करेंगे।

(सबके नेत्र सजल हो उठते हैं)

चाणक्य- उन्मुक्त मानव को रोक रखने की सामर्थ्य नहीं है नंदराज! आप निश्चिंत होकर वन विहार कर साधना की कठिन टाँकी से स्वयं को गढ़ें। जीवन का सार यही है।

सुप्रभा- पिताश्री... (गला भर आने से बोल नहीं फूटते)

महापद्मनंद- अधीर न बनो पुत्री! माता-पिता से पुत्री का बिछोह अवश्यम्भावी है।

सुप्रभा- (कठिनता से) किन्तु आप तो सर्वथा त्याग कर जा रहे हैं।

महापद्मनंद- आयुष्यमती! यह संबंध भी एक दिन टूटकर रहेगा। यहाँ कौन किसका है? सब एक ही पथ के पथिक हैं, आगे-पीछे सबको कूच करना है, जीवन है तो मृत्यु भी अनिवार्य है, यदि उसके आगमन के पूर्व ही हम संभल जायें तो सुखद है, वरन् हाय-हाय करते हुये यमराज के पास में बंधे हुये हमें यहाँ से चल देना होगा।

चंद्रगुप्त- किन्तु तात! आपने शीघ्र निर्णय ले लिया।

महापद्मनंद– शीघ्र नहीं, यह कहो कि बहुत विलंब कर लिया है। यही क्या कम सौभाग्य है कि मृत्यु ने हमें वैभव की मूर्च्छितावस्था में अपना ग्रास नहीं बनाया। युग–युग से लगी निद्रा अब सहसा टूटी है तो जागते हुये बलात् आँखें मूँदकर निश्चेष्ट पड़े नहीं रह सकते वत्स!

चाणक्य– धन्य है नंदराज! आपने राजकीय जीवन में भी अहर्निशि दान देकर महान कीर्ति अर्जित कर तुष्टि प्राप्त की है।

महापद्मनंद– वह तुष्टि मिथ्या थी आचार्य! निरंतर जड़, चेतन को छल रहा था। उस दान में भी 'अहं' का दंभ था।

चाणक्य– निश्चय ही यह उच्च साधक के वचन हैं पर हम सब यह कैसे भुला सकते हैं कि आपने लक्ष–लक्ष याचकगणों को सन्तुष्ट किया है।

महापद्मनंद– हो सकता है आचार्य! पर अब तो सम्पूर्ण त्याग की कल्पना मात्र से हमारी रोमावली उल्लसित हो रही है, आनन्द हृदय में समा नहीं रहा, बाहर छलक–छलक पड़ रहा है। आज हम स्वयं को भारहीन अनुभव कर परम सुखी हैं आचार्य!

चाणक्य– सचमुच त्याग में अपूर्व आनंद छिपा है नंदराज! जो इसकी महिमा जान ले वह मानव धन्य है, वह पौरुष धन्य है। पालक! उद्घोषक से कह दो, सारे नगर में विद्युतगति से समाचार दो कि राजराजेश्वर नंदराज आज दीक्षा ले रहे हैं, मगध निवासी तुरन्त एकत्रित हो उन्हें समारोह पूर्वक विदाई दें।

पालक– जो आज्ञा स्वामिन्!

चंद्रगुप्त– शीघ्रता करो पालक!

पालक– हाँ राजन्!

महापद्मनंद– नहीं आचार्य चाणक्य! ये दैव–दुर्लभ एक क्षण भी हम खोना नहीं चाहते। बाह्य आयोजन व्यर्थ है, प्रदर्शन है, उसमें भी अहंकार को

अपना शीश ऊँचा करने का अवसर मिलता है, **सम्मान की मादकता में अपना सच्चा स्वरूप विस्मृत हो जाता है।**

चाणक्य- आर्य! आप मोह के धरातल से ऊँचे उठ रहे हैं, आपके लिये सब व्यर्थ है, पर हम मोही प्राणियों को स्वागत करके ही सन्तुष्ट हो लेने दें। काश! इस विशुद्धता से हमारा भी कुछ लाभ हो जावे।

महापद्मनंद- आप जानकर भी व्यर्थ की बात कह रहे हैं आचार्य! बस अब विदा दें। अभी तक प्रभुता के मद में हमने अनेकों अपराध किये, उन्हें आप सब क्षमा करें। हम भी अपने मन से समस्त कलुष को निकालकर अंतःकरण स्वच्छ बनाते हैं।

चंद्रगुप्त- आर्य! हम सबका नम्र अभिवादन स्वीकार करें। (चन्द्रगुप्त, सुप्रभा बारी-बारी से चरण स्पर्श करते हैं।)

नंदराज- कल्याण हो।

(सब सजल-नयनों से नंदराज को विदाई देते हैं। नंदराज मंद-मंद गति से मुस्कराते हुये चल देते हैं। नंदराज के ओझल होने पर चन्द्रगुप्त सहित सभी जाने लगते हैं)।

चन्द्रगुप्त- आज्ञा दें आचार्य!

चाणक्य- तुम रुको चन्द्रगुप्त! इन सब को जाने दो।

(सब नमस्कार कर चले जाते हैं। दोनों मंत्रणा हेतु पुनः बैठ जाते हैं)

चंद्रगुप्त- एक अभियान समाप्त हुआ। मगध विजय हो गई आचार्यश्री! अब राज्य का बँटवारा करना शेष है।

चाणक्य- (आश्चर्य पूर्वक) राज्य का बँटवारा कैसा? तुम्हारा तात्पर्य क्या है वत्स!

चन्द्रगुप्त- यही कि मलयकेतु को आधा राज्य दे दिया जाये।

चाणक्य- क्यों?

चन्द्रगुप्त- क्योंकि हम उससे वचनबद्ध हैं।

चाणक्य- उसे तुम कब वचन दे चुके वत्स?

चन्द्रगुप्त- मैंने नहीं दिया महामन्! मलयकेतु के पिता पौरवराज को आपने ही वचन दिया था।

चाणक्य- वचन हम दें और निभाओ तुम, यह कौन-सी रीति है?

चन्द्रगुप्त- (मुस्कराते हुये) आर्य के वचनों का पालन करना शिष्य का परम कर्तव्य है।

चाणक्य- हमने वचन पौरवराज को दिया था, न कि मलयकेतु को। पौरवराज का स्वर्गवास हो चुका, अतः वचन निर्वाह का प्रश्न स्वयमेव समाप्त हो जाता है।

चन्द्रगुप्त- पौरवराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी पुत्र मलयकेतु के साथ हम स्वयं सद्ध वचनबद्ध हो जाते हैं।

चाणक्य- वत्स! पात्र-अपात्र का ध्यान रखना भी आवश्यक है। वीरोचित गरिमा महिमा जो पौरवराज में थी, उसका मलयकेतु में सर्वथा अभाव है।

चन्द्रगुप्त- फिर भी...

चाणक्य- (दृढ़ता पूर्वक) नहीं चन्द्रगुप्त! हम मलयकेतु के साथ वचन निर्वाहने में असमर्थ हैं।

चन्द्रगुप्त- किन्तु यह उसके साथ विश्वासघात होगा आचार्यश्री!

चाणक्य- राज्य बताशों की भाँति पात्र-कुपात्र सभी को बाँटा नहीं जाता वत्स! हम समस्त भारतवर्ष को एक सूत्र में देखना चाहते हैं। निकट भविष्य में ही वह संकट उपस्थित होने वाला है, जिसकी भारतीयों को कल्पना भी नहीं है। बिना एक महान् देश बने हम आसन्न संकट से रक्षा नहीं कर सकेंगे।

चन्द्रगुप्त– क्या हम और मलयकेतु सम्मिलित होकर संकट से न जूझ पायेंगे?

चाणक्य– (निश्चित व दृढ़तर आवाज में) असंभव, चंद्रगुप्त यह सर्वथा असंभव है। राज्य में सर्वत्र षड्यंत्र की गंध आ रही है। मलयकेतु भी उसमें सम्मिलित है। नंदराज तो उदासीन हो निर्विकार हो गये हैं। किन्तु उनके स्वामीभक्त अमात्य राक्षस को गहन असंतोष है, वह नंदराज को एक बार पुनः मगध सिंहासन पर आसीन देखना चाहता है।

चंद्रगुप्त– किन्तु नंदराज तो तपोवन को प्रयाण कर गये वे अपनी निश्छलता, त्याग की पवित्रता पर लांछन न लगायेंगे। वन गमनोद्यत होने पर वे कितने शांत, सौम्य और भद्र प्रतीत हो रहे थे। मलिनता की रेखा भी नहीं दिखती थी। मुख पर विराग की रेखा स्पष्ट प्रतिभासित हो रही थी। यह वह विराग नहीं जहाँ अंतःकरण में मोह का संस्कार दुबक कर बैठ जाये, नैराश्य से ज्ञान पूर्वक जागा हुआ विराग अचल होता है।

चाणक्य– सही बात है वत्स! नंदराज की तपोवन से लौटने की आशा आकाश कुसुमवत् है। किसी भी मूल्य पर वे अपने त्याग का विक्रय नहीं कर सकते।

चंद्रगुप्त– उनका उत्तराधिकारी कोई है नहीं। फिर आर्य राक्षस किसके लिये षड्यंत्र करेंगे? यह बात भी निश्चित है कि वह स्वयं सिंहासन पर बैठने से रहे।

चाणक्य– तुम नहीं समझ सकते वत्स! **सरल ऋजु हृदय में वक्रता प्रवेश नहीं कर पाती।** आर्य राक्षस भली भाँति जानते हैं कि जिस पथ पर नंदराज चल पड़े हैं उससे कोई भी पथिक लौटता नहीं है। वे नंदराज के दृढ़तर संकल्प से अनभिज्ञ भी नहीं हैं परंतु उनके मन में निरंतर प्रतिशोध की

आग दहक रही है। वे कट्टर स्वामीभक्त हैं। स्वामी का अभाव सतत् खलता रहेगा। नंदराज को सिंहासन से उतारने में तुम्हीं निमित्त बने हो, अतः उनका सारा रोष तुम्हीं पर केन्द्रित है। तुम्हें वह समाप्त कर देने के प्रयत्न में है।

चंद्रगुप्त- मुझे समाप्त कर देने से उनका कौन सा कार्य सिद्ध होगा देव! हो सकता है आपको असत्य सूचना मिली हो।

चाणक्य- विश्वस्त सूत्रों से यह तथ्य ज्ञात हुआ है। तुम्हारे प्राण बहुमूल्य हैं सौम्य! अभी भारतीयों को तुमसे बहुत सेवा लेनी है। इन्हें तुच्छ न समझो।

चंद्रगुप्त- किन्तु देव! मृत्यु भी जीवन का एक अंग है जो शरीर की प्रतिक्रिया है। मृत्यु अनिवार्य है, जो अनिवार्य है उससे भीत होकर भागना कैसा?

चाणक्य- यथार्थ कह रहे हो चंद्रगुप्त! परन्तु मृत्यु स्वयं आये तो हँसकर वीरता पूर्वक उसका स्वागत करना चाहिये, बैठे बिठाये उसे व्यर्थ ही निमंत्रण देना कायरता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मलयकेतु को राज्य देने की अपेक्षा उचित यह होगा कि उसके राज्य को भी अपने राज्य में विलय कर लेना होगा।

चन्द्रगुप्त- (चौंककर) ओह! यह क्या आचार्यश्री! यह कैसा सिद्धांत? इससे घोर पातक और क्या होगा?

चाणक्य- चौंको नहीं वत्स! न अन्यथा ही विचारो। मलयकेतु है विलासी प्रवृत्ति का। जहाँ उसकी राज्य वृद्धि हुई कि वह स्वच्छंद हो उसी में आसक्ति पूर्वक लिप्त हो जायेगा। राज्यश्री कठिन परिश्रम से प्राप्त हुई है पर विनष्ट होते विलंब न लगेगा। इसकी रक्षा के साथ-साथ तुम्हें भी पग-पग पर अपनी सावधानी पूर्वक संभाल करना होगी यह बड़ा षड्यन्त्रकारी

संकटकारक अवसर है, समझो कठिन परीक्षा है।

चन्द्रगुप्त– (मुस्कराकर) परीक्षा में उत्तीर्ण होने की ही आशा है महामन्!

चाणक्य– तुम्हें अपने मन पर कठोर नियंत्रण रखना होगा। अनायास किन्हीं आकर्षणों में रत होने पर प्राणों का विसर्जन न होने पाये।

चन्द्रगुप्त– शक्ति भर प्रयत्न करूँगा आचार्यश्री!

चाणक्य– तुम अब अपने स्वामी नहीं रहे चंद्रगुप्त! तुम्हारा शरीर प्रजा की धरोहर है, लक्ष-लक्ष प्राणियों के जीवन का तुम्हारे ऊपर उत्तरदायित्व है, तुम्हें प्रजा के हित के लिये ही जीवन धारण करना है। समझे सम्राट चन्द्रगुप्त! इन्द्रियजयी संयमी बनो।

चन्द्रगुप्त– (मौन नतमस्तक है)

चाणक्य– कौन-सी विचारधारा में बह रहे हो वत्स!

चन्द्रगुप्त– (सावधान हो) कुछ नहीं आचार्यश्री! बस केवल यही चिन्ता है कि इतने महत्तर दायित्व का निर्वाह सुचारु रूप से कर सकूँ। राज्य जय कर लेना सरल है किन्तु उसको सुव्यवस्थित ढंग से चला लेना, आदर्श राज्य स्थापित करना और ही बात है पर आर्य! आप निश्चिंत रहें आपके स्वप्न को शिष्य सकार कर उसे मूर्त्तरूप देने की प्राणपण से चेष्टा करेगा।

चाणक्य– हमें तुमसे ऐसी ही आशा है वत्स!... चन्द्रगुप्त! इस समय हमारी स्थिति उलझनमय अति विषम है। आर्य राक्षस से सतत सतर्क, सजग रहना होगा। इस समय वे तुम्हारे प्राणों के ग्राहक हैं। द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे स्वामीभक्ति में अद्वितीय पुरुष हैं। अतः उनके जीवन की रक्षा करते हुये नीतिपूर्वक अपना बना लेना है, वे कुशल नीति विशारद हैं।

चन्द्रगुप्त– यह सच है कि अभी तक मगध का सिंहासन जो अजेय रहा वह सब आर्य राक्षस के सद्‌प्रयत्नों का ही फल है। वे राज्योन्नति में सदैव सचेष्ट रहे हैं, निःसंदेह हैं वे प्रतिभाशाली, बुद्धिमान व्यक्ति।

चाणक्य– यही कारण है कि हम उनके गुणों पर मुग्ध हैं। भारतीयों का राज्य अधिकांशतः योग्य सचिवों के कंधों पर आधारित रहता है, हमें ऐसा विश्वासी, सदा मंगलाकांक्षी सचिव खो नहीं देना है, येन–केन प्रकारेण उन्हें अपने पक्ष में कर लेना होगा।

चन्द्रगुप्त– कट्टर नंदभक्त होकर वे अपनी दासता क्यों स्वीकार करेंगे? जबकि मुझसे उनकी कट्टर शत्रुता हो गई है।

चाणक्य– यह भी एक रहस्य है सौम्य! **सज्जन व्यक्ति में प्रतिशोध जितने आवेश और आवेग से जागता है, उसी वेग से उसका अन्त भी हो जाता है।**

चंद्रगुप्त– आपका आशय समझ गया देव! सरिता की तीव्रगति से उमड़ती लहरों को पतवार से पीटा नहीं जाता वरन् उन पर शनैः शनैः विजय पाई जाती है।

चाणक्य– खूब समझे चन्द्रगुप्त! अब तुम जा सकते हो। (जोर से आवाज देकर) पालक!

पालक– आज्ञा गुरुदेव!

चाणक्य– सम्राट् के प्रस्थान की व्यवस्था करो।

पालक– चार अंगरक्षक प्रस्तुत हैं आचार्यश्री! (प्रस्थान)

चाणक्य– (जाते हुये चन्द्रगुप्त को रोककर) चन्द्रगुप्त! कल से तुम्हारी भोजन व्यवस्था विशेष व्यक्तियों द्वारा होगी, तुम सावधान रहना, अन्य किन्हीं व्यक्तियों के दिये हुए खाद्य पदार्थ भक्षण नहीं करना, शयन कक्ष

प्रतिदिन परिवर्तित करना होगा, आज यहीं शिविर में रात्रि व्यतीत करो। कल से सुगंग प्रासाद का अन्वेषण कर वहीं निवास करोगे।

चन्द्रगुप्त– आप मेरे प्रति कितने चिन्तित हैं गुरुदेव! साधारण जीवन अच्छा जिसमें मानव निश्चिन्त रहता है।

चाणक्य– वत्स! संघर्षमय जीवन ही श्रेष्ठतम है, जहाँ व्यक्ति ठोकरें खाता है, संभलता है, कठिनाइयों से अवगत होता है। दुःख संकटों से जूझने की क्षमता प्राप्त करता है, सच पूछो तो मानव जीवन संघर्ष की आँच से तपकर कुन्दन बन निखर उठता है। आदर्श सम्राट बनो वत्स! अच्छा जाओ सावधान!

चंद्रगुप्त– प्रणाम गुरुदेव!

चाणक्य– रात्रि मंगलमय हो।

(प्रस्थान)

पटाक्षेप

[दृश्य– बाईसवाँ]

(पाटिलीपुत्र में मलयकेतु का शिविर)

(मलयकेतु एवं अमात्य राक्षस का वार्तालाप)

राक्षस– श्रीमान्! नंदराज के चले जाने के पश्चात् मेरा जीवन नीरस हो गया है। चंद्रगुप्त उस सिंहासन पर बैठे जिस सिंहासन पर स्वामी नंदराज सुशोभित होते थे, मुझे तो असह्य हो गया है राजन्! मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि चंद्रगुप्त ही क्यों बैठे, आप क्यों नहीं? पर्वतेश्वरों में आप ही प्रमुख वीर हैं।

मलयकेतु– मुझे तो चंद्रगुप्त आधा राज्य देने का वचन पहले ही दे चुके हैं, बंटवारा होने के पश्चात् ही हम भविष्य के कार्यों का निर्धारण कर

सकेंगे। (राक्षस की मुद्रा ऐसी होती है जैसे किसी रहस्य का पता लग गया हो)

राक्षस– अच्छा तो चंद्रगुप्त ने आपको राज्य देने का वचन दिया था।... पर राजन्! राज्य इस तरह प्राप्त नहीं होते। मैं निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि यह असंभव है। आप अभी से सावधान हो जायें यह अवसर बार–बार नहीं आता। आप प्रयत्न करें, मगध सिंहासन आपका है।

मलयकेतु– पर मैं अकेला क्या कर सकता हूँ अमात्य! सारे पर्वतीय नरेश चन्द्रगुप्त के साथ हैं।

राक्षस– साथ हैं इसलिये कि वे निर्बल हैं, विरोध करने में असमर्थ हैं, अंतःकरण से वे सभी चंद्रगुप्त से घृणा व ईर्ष्या करते हैं।

मलयकेतु– कुछ भी हो चंद्रगुप्त का क्या बिगड़ता है, सब नरेशों की वैसी ही दयनीय स्थिति हो गई जैसे शशक[1] की हाथी के समक्ष हो जाती है।

राक्षस– मुझे आश्चर्य है मलयराज! कि आप सब अपने को इतना तुच्छ क्यों समझ रहे हैं? संगठन में वह बल है कि जिससे बड़े–बड़े कार्य क्षणमात्र में सिद्ध हो जाते हैं।

मलयकेतु– वायु विपरीत चल रही है अमात्य! परिस्थिति चंद्रगुप्त के अनुकूल हो गई है। उसका स्थान मगध में सुरक्षित हो गया है। प्रजा उसे सम्मान दे रही है, उसके साहस और वीरता की गाथा घर–घर गाई जाने लगी है, सर्वत्र उसका जय–जयकार निनाद हो रहा है।

राक्षस– महाराज! हवा पलटते विलंब नहीं लगती। क्षण–क्षण परिस्थितियों में परिवर्तन होते रहते हैं। पुरुष यदि साहस पूर्वक कार्य करने की ठान ले तो प्रतिकूलतायें स्वयमेव समाप्त हो जाती हैं।

---

1. खरगोश

मलयकेतु– आकस्मिक परिवर्तन असंभव है अमात्य! मगध सेना ने स्वेच्छा से उसे अपना सम्राट घोषित कर दिया है तब सारे उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। मगधवाहिनी विशाल है, सेना ही राज्य का बल है, यदि उसी का संबल न रहा तो फिर?

राक्षस– राजन्! आप साहस करें तो मैं अपने कथन को कार्य रूप में परिणत कर सकता हूँ।

मलयकेतु– मंत्रिवर! आप भी अकेले ही हैं। भला...

राक्षस– मेरे अकेलेपन से आप निश्चिंत रहें राजन्! मेरी योजनानुसार यदि आप चलें तो निश्चय ही आप संपूर्ण राज्य के स्वामी होंगे।

मलयकेतु– (उत्सुकता से) वह कैसे?

राक्षस– मैं चंद्रगुप्त को जड़मूल से उखाड़ फेकूँगा, धरा पर से उसका नाम निःशेष कर दूँगा। उसने राक्षस को छेड़कर उचित नहीं किया। आप का सैन्य परिकर बहुत है राजन्! साहस करें। इसके अतिरिक्त मैं कलिंगाधिपति से सहायता लूँगा, यदि आप दोनों मिल जाते हैं तो ये क्षुद्र पर्वतीय नरेश आपके विरुद्ध न हो सकेंगे।

मलयकेतु– ये बेचारे तो बलवान की हाँ में हाँ मिलाना जानते हैं, जिस ओर पलड़ा भारी देखा उसी ओर झुक गये, उनके अपने स्वतन्त्र विचार नहीं हैं।

राक्षस– धन, जन से निर्बल नरेशों पर आदिकाल से यही प्रतिक्रिया होती आई है। इसीलिये साहस कर आप चंद्रगुप्त का खुलकर विरोध करें ताकि आपकी धाक सर्वत्र बैठ जाये। मित्र कलिंग नरेश का भी सैन्य दल विशाल, अजेय है, यदि आप सब संगठित होकर मगध पर आक्रमण करते हैं, तो मगधवाहिनी की निश्चित पराजय होगी।

मलयकेतु– यह सत्य है अमात्य राक्षस किन्तु कलिंग नरेश ने विजय के पश्चात् हमें अंगूठा दिखा दिया जैसे कि चन्द्रगुप्त के लक्षण अभी दिख रहे हैं तो फिर हमारा क्या होगा?

राक्षस– ऐसा नहीं हो सकता राजन्! मैं आपके साथ में हूँ। ये महात्त्वाकांक्षा का दाँव है। दाँव सदा आशा का ही पक्ष देखता है, निराशा उसकी उपेक्षिता है।

मलयकेतु– विचारने में और करने में वृहत्तर अंतर है अमात्य!

राक्षस– कुल परिस्थितियों से हम पूर्णतः भिज्ञ हैं राजन्! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपसे ही मगध सिंहासन की शोभा वृद्धिंगत करूँगा, चन्द्रगुप्त को तो मैं प्रभु नंदराज के सिंहासन पर कदापि नहीं देख सकता।

मलयकेतु– हम आपकी सद्भावना के लिए सहर्ष धन्यवाद देते हैं अमात्य! किन्तु...

राक्षस– सशंकित न हों राजन्! यह निर्बलता का लक्षण है, आप शूरवीर हैं, मैं अन्यथा न होने दूँगा कलिंगाधिपति के स्वभाव से मैं पूर्णतः परिचित हूँ, वे सत्यनिष्ठ सज्जन व्यक्ति हैं, आप उनकी ओर से निश्चिन्त रहें। (दृढ़तापूर्वक) आर्य से निवेदन करूँगा कि एक बार अमात्य राक्षस को भी परख लें, उसकी भी शक्ति का परिचय प्राप्त करें, अभी भी मुझमें मगधवाहिनी को अपने आदेशों पर चलाने की शक्ति विद्यमान है।

मलयकेतु– आश्वस्त हुआ अमात्य! अपनी अगली योजना क्या होगी?

राक्षस– (धीरे से कोई सुन न ले) सर्व प्रथम चन्द्रगुप्त की हत्या। उस काँटे को निकालकर ही हम अग्रिम योजना पर विचार करेंगे। हमें देखना होगा कि चन्द्रगुप्त के निधन के

पश्चात् मगधवासियों पर क्या प्रतिक्रिया होती है? उनकी भावनाओं को परखना होगा। इसी बीच मैं कलिंग नरेश से भी संपर्क स्थापित कर लूँगा।

मलयकेतु– तब तक मुझे क्या करना होगा?

राक्षस– अभी आपको रचनात्मक कार्य कुछ भी नहीं करना है राजन्! केवल आंभिसार नरेश, चित्रवर्मा, पुष्कराक्ष आदि नरेशों के मनोभावों को गुप्त रीति से पढ़ लेना है, उसी के अनुसार हम कुछ कर सकेंगे। चन्द्रगुप्त से भी प्रगाढ़ मैत्री बनाये रखें ताकि वह आपसे निःशंक रहे। कूटनीतिज्ञ चाणक्य से अवश्य विशेष सावधान रहें। उनकी दृष्टि अति तीव्र पैनी है, उनसे प्रत्येक मूल्य पर अपनी रक्षा करनी होगी।

मलयकेतु– (भयभीत से हो) हाँ, वह चाणक्य! मुझे उससे सचमुच बड़ा भय लगता है। जहाँ पक्षी भी पर न मार सकें वहाँ उसके गुप्तचर पहुँच जाते हैं। अपनी इस भेंट का भी रहस्य गोपनीय रखना होगा।

राक्षस– सर्वथा राजन्! अन्यथा सारे कार्य पर पानी फिर जायेगा। चन्द्रगुप्त की सेवावृत्ति करने हेतु मेरे पास संवाद पर संवाद आ रहे हैं पर नंदराज के अतिरिक्त यदि यह अधम किसी को अपना मस्तक झुकायेगा तो वह होंगे नरेश मलयकेतु, चन्द्रगुप्त तो कदापि नहीं। राजन्! लता को वृक्ष का आश्रय तो चाहिये ही।

मलयकेतु– क्या आप यह पक्का निर्णय कर चुके हैं?

राक्षस– बिल्कुल (दृढ़तापूर्वक) राक्षस के ये वचन मेरुसदृश अडिग हैं राजन्! और राक्षस सब कुछ सहन कर सकता है पर अपने ऊपर अविश्वास नहीं। (आँखें सजल हो जाती हैं) राजन्! नंदराज ने मुझ पर विश्वास पूर्वक इतने विशाल राज्य का दायित्व सौंप दिया था। उन जैसा उदार हृदय दानी महाराज का अभाव मेरे हृदय में खटकता रहेगा। वे साक्षात् कल्पवृक्ष चिन्तामणि थे। प्रजा वत्सलता, न्याय–परायणता उनमें कूट–

कूटकर भरी थी।

मलयकेतु– तब आश्चर्य है अमात्य राक्षस! कि प्रजा उनसे कुछ ग्लानि सी क्यों करने लगी थी?

राक्षस– फूलों के साथ काँटे कहाँ नहीं होते आर्य! राजकुमारों में योग्यता नहीं थी। वे मूर्ख थे, विलासी थे और था उन्हें विशाल राज्य का सर्वनाशी अहंकार! यही दुर्गुण उन्हें ले डूबे। उन्हीं के कारण वंश तथा सौम्य स्वभावी नंदराज की उज्ज्वल कीर्ति में सदा के लिये अमिट कालिमा लग गई। (दुखित हो आह भरते हैं) पुत्रों को सद्‌गुणी बनाने के सभी प्रयत्न निष्फल हो गये।

मलयकेतु– सत्य है कि सभी ओर दुःख ही दुःख दिखलाई देता है। कोई व्यक्ति सुखी नहीं है। भला नंदराज को किस वस्तु का अभाव था, पर संतान का कष्टदायक क्लेश उनके अन्तर को शूलवत् ही रहा होगा।

राक्षस– क्यों नहीं? वे उन्हीं के कारण यदा-कदा उदास दिखाई देने लगते थे। कुछ भी हो, पर थे वे कर्मवीर! राज्य त्याग कर अब वे तपोवन का आश्रय ग्रहण कर चुके हैं। राजा रहे तो महान् और तपस्वी हुये तो महानता में और भी निखार आ गया, सर्वत्र आदर के पात्र हैं, धन्य है उन्हें!

मलयकेतु– अमात्य राक्षस! जैसे नंदराज महान थे वैसे ही उन्हें आप जैसे महान अमात्य भी मिले स्वामिभक्त, कुशलनीतिज्ञ।

राक्षस– मुझमें कोई विशेषता नहीं राजन्! मैं तो नंदराज का सेवक होना अपना सौभाग्य समझता हूँ। चन्द्रगुप्त ने मेरे स्वामी का सिंहासन छीना है, वह मेरा प्रतिद्वन्द्वी है, मेरे रक्त की अंतिम बूँद भी उससे प्रतिशोध लेगी, मैं उसे सिंहासन पर बैठने नहीं दूँगा।

मलयकेतु– फिर तुम मुझे उस पर बैठने की सम्मति कैसे दे रहे हो?

राक्षस– आपमें और चंद्रगुप्त में बहुत अन्तर है। आप मेरे शत्रु नहीं

मित्र हैं। मित्र के प्रति कर्तव्य का निर्वाह करना भी राक्षस जानता है आर्य! निश्चय ही नंदराज के पुत्रों को ही सिंहसानासीन कर मैं अपने धर्म का पालन कर कृतज्ञता ज्ञापन करता किन्तु सब उस कुटिल काल के ग्रास हो गये। उनके अभाव में सिंहासन की रक्षा, राज्य सुव्यवस्थित रखने के लिये मैं आप जैसे महावीर को निमंत्रित करता हूँ, आप सर्वथा योग्य हैं, मेरा आह्वानन स्वीकार कर मेरे स्वामी बनें।

मलयकेतु– और आप अमात्य!

राक्षस– मुझे स्वीकार है राजन्!

मलयकेतु– परम प्रसन्नता हुई। यद्यपि आत्म–प्रशंसा श्लाघनीय नहीं तथापि प्रसंगवश मैं भी कहना चाहूँगा कि मुझे आप कसौटी पर जितना भी कसेंगे खरा स्वर्ण ही पायेंगे।

राक्षस– आपकी पात्रता सर्वश्रेष्ठ है राजन्! एक बार और निवेदन है कि चाणक्य से सावधान रहें। पर्वतेश्वरों में आप ही प्रभावशाली नरेश हैं, आपके पिताश्री की तो समानता ही नहीं थी, दुर्दैव के कारण वे असमय में ही परलोक सिधार गये। यहीं मानव विवश है राजन्! अब अपने वंश की गरिमा को स्थिर रखने का भार आप पर आ पड़ा है।

मलयकेतु– हाँ अमात्य! तात के वज्र शोक का ज्वार हृदय में छिपाये हमने चन्द्रगुप्त की सहायता की है पर अब उसकी थाह ही नहीं मिलती।

राक्षस– राजन्! **स्वार्थवृत्ति जो दुष्कर्म न कराये सो थोड़े ही हैं, स्वार्थ के कारण मानव परस्पर जो प्रीति करता है, उस प्रीति में प्रतीति का तनिक भी अंश नहीं होता।**

मलयकेतु– हमारी आपकी मैत्री इससे सर्वथा भिन्न होगी।

राक्षस– अवश्यमेव, इसमें स्वार्थ की गंध नहीं होगी राजन्!

(नेपथ्य से उद्घोषक द्वारा घोषणा की जा रही है, दोनों व्यक्ति

चौकन्ने होकर सुनते हैं) (नेपथ्य से)

उद्घोषक– नगर जन सावधान होकर सुनें– राजराजेश्वर मगधाधिपति महाराज चन्द्रगुप्त द्वारा घोषणा की जा रही है कि कल संध्याकाल से तक्षशिलाधीश महाराज आंभिराज लुप्त हो गये हैं। अमात्य राक्षस का भी पता नहीं है। विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि आंभिराज को लुप्त करने में अमात्य राक्षस का षड्यन्त्रकारी हाथ है। अतएव मित्र आंभिराज की खोज करने में नगर जन सैनिकों की सहायता करें। आशा है तत्परता से हो रही खोज में हम आंभिराज सहित अमात्य राक्षस को भी पाने में सफल हो सकेंगे। जो व्यक्ति इन दोनों महानुभावों का पता बतलायेगा उसे एक सहस्र मुद्रायें पारितोषिक में दी जायेंगी।

मलयकेतु– आंभिराज क्या मारा गया?

राक्षस– कुछ कहा नहीं जा सकता। यहाँ पर कब क्या हो जाये? घोषणा से तो यही ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त स्वयं राजा बन बैठा और आंभिराज की हत्या हो चुकी है अथवा यह चाणक्य की चाल भी हो सकती है। मेरी खोज खबर में भी उनके चर घूम रहे हैं। (विचारणीय मुद्रा में तुरन्त दृढ़ प्रतिज्ञ हो) परन्तु कुछ भी हो राजन्! राक्षस देह त्याग कर सकता है, चन्द्रगुप्त का सेवक नहीं बन सकता।

मलयकेतु– आप दृढ़ प्रतिज्ञ हैं?

राक्षस– पूर्ण रूपेण।

मलयकेतु– हम भी परस्पर वचनबद्ध हुये अमात्य! एक–दूसरे की सहायता प्राण–पन से करेंगे।

राक्षस– अवश्यमेव! आज से हम दोनों एक–दूसरे के पूरक होंगे। अच्छा, अब आज्ञा दें राजन्! चाणक्य से सावधान रहें और हमारी भेंट गुप्त रहे।

मलयकेतु– एवमस्तु।

(राक्षस का शीघ्रता से प्रस्थान, तत्क्षण चाणक्य का प्रवेश)

(चाणक्य को देखते ही मलयकेतु की मुखाकृति निष्प्रभ हो जाती है। वह स्तंभित सा रह जाता है। चाणक्य भाँप जाते हैं)

चाणक्य– कुमार मलय! उदास व्यथित से कैसे दिख रहे हो? क्या हो गया तुम्हें?

मलयकेतु– (मन को स्थिर करने का प्रयत्न करते हुये) कुछ नहीं, कुछ नहीं आचार्य! आप यहाँ कैसे? (जैसे कुछ याद सी आती है) अरे! आप खड़े हैं, आसन पर विराजें।

चाणक्य– (बैठते हुये)हम बैठ जायेंगे कुमार! हमारी चिन्ता न करो, अपनी कहो। हमें तुम्हारा चित्त अस्थिर सा दिख रहा है। कोई असामयिक घटना घटी है अथवा अस्वस्थ हो?

मलयकेतु– ऐसी कोई बात नहीं है गुरुदेव! कुछ यों ही...

चाणक्य– वाक्य अधूरा छोड़ दिया कुमार, स्पष्टतः हृदय का उद्वेलन मुख पर उभर आया है। यदि रहस्यात्मक प्रसंग हो, तुम नहीं बतलाना चाहते या तुम्हारा अहित होने की संभावना हो तो हम अपनी उत्कण्ठा यहीं समाप्त करते हैं और यदि अस्वस्थ हो तो हम कुशल चिकित्सक से चिकित्सा करायें, हम तुम्हें ऐसा खिन्न निष्प्रभ नहीं देख सकते।

मलयकेतु– (बलात् मुस्कराकर) नहीं आचार्य! आप मेरी बिल्कुल भी चिन्ता न करें, मैं स्वस्थ हूँ।

चाणक्य– स्वस्थ ही रहें राजन्! हम तो तुम्हारा मुख देखकर व्यग्र हो उठे थे फिर भी हमारा अनुरोध है कि मन को अशान्त न बनने दें। जो भी कठिनाई हो आप हमें सूचित करें, हम यथाशक्य निवारण का प्रयत्न करेंगे।

मलयकेतु– मुझे कोई कष्ट नहीं है गुरुदेव! सानन्द हूँ।

चाणक्य– चन्द्रगुप्त की ओर से सेवकों को कठोर आदेश दे दिये गये हैं कि अतिथियों को सब प्रकार की सुविधा उपलब्ध हो फिर भी त्रुटि होना स्वाभाविक है। आप सब केवल सूचित करने का कष्ट करें।

मलयकेतु– नहीं आचार्य! आप हमारी ओर से पूर्णतः निश्चिन्त रहें, मुझ तुच्छ व्यक्ति के लिये बार–बार आने का कष्ट कर मुझे अधिक लज्जित न करें।

चाणक्य– इसमें लज्जा की क्या बात है? अतिथि–सत्कार हमारा परम कर्तव्य है कुमार! चन्द्रगुप्त की अभिलाषा है कि अति सौभाग्य से आतिथ्य का परम सुअवसर प्राप्त हुआ है, अतः अधिक से अधिक सेवा का अवसर प्रदान करें।

मलयकेतु– यहाँ सर्वसाधन सुलभ हैं, हम लोगों को किसी प्रकार का अभाव खटकता ही नहीं है।

चाणक्य– सर्व पर्वतेश्वरों में हम आप ही को प्रधानता देते हैं कुमार!

मलयकेतु– यह आपकी सहृदयता है गुरुदेव!

चाणक्य– हम तुमसे सम्मति लेने आये थे पर देख रहे हैं कि तुम उन्मने से हो।

मलयकेतु– (बीच ही में शीघ्रता से) नहीं आचार्य! मैं पूर्णतः स्वस्थ हूँ, आप अपना अभिप्राय स्पष्ट करें।

चाणक्य– चन्द्रगुप्त कौमुदी महोत्सव मनाने का आयोजन कर रहे हैं।

मलयकेतु– कब?

चाणक्य– बस अगली पूर्णिमा को, तुम्हारा क्या विचार है?

मलयकेतु- विचार तो उत्तम है आचार्य! परंतु इसके प्रथम उन्हें अपना वचन पूरा करना चाहिए।

चाणक्य- वचन! कैसा वचन?...

मलयकेतु- वही राज्य बँटवारे का।

चाणक्य- ओह! यह भी क्या कहने की बात है? वचन तो पूरा होगा ही! हम विस्मरित नहीं हुये हैं! तनिक धैर्य से काम लो! तुरन्त तुम्हें अर्धचक्री घोषित करने से कहीं अन्य पर्वतेश्वर विग्रह न कर उठें, प्रिय पौष्टिक पदार्थ की भी उष्णता जिह्वा को जला देती है, तनिक वातावरण में शीतलता आने दो, वायु प्रवाह अनुकूल होने पर स्वयमेव कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

मलयकेतु- उचित कह रहे हैं गुरुदेव! कौमुदी महोत्सव के आयोजन में हमारा पूर्ण योगदान रहेगा।

चाणक्य- अर्थात् आपकी सम्मति है?

मलयकेतु- पूर्ण रूपेण।

चाणक्य- अभी-अभी तुम्हारे शिविर में कौन आया था कुमार!

मलयकेतु- (अचानक चौंककर) को... को... कोई नहीं गुरुदेव! कोई चर होंगे।

चाणक्य- चर? किसके चर?

मलयकेतु- चर अर्थात् अनुचर।

चाणक्य- अनुचर! तब इसमें चौंकने का क्या कारण था?

मलयकेतु- कहाँ गुरुदेव! मैं...

चाणक्य- कुमार मलय! हम तुम्हें सावधान करते हैं कि अमात्य राक्षस पर्वतेश्वरों के प्राणों का ग्राहक बन बैठा है! अभी-अभी मार्ग में

चन्द्रगुप्त द्वारा की गई घोषणा सुनी तो हम अवाक् रह गये। कल रात्रि आंभिराज से अमात्य राक्षस ने भेंट की है और आज वे मिल नहीं रहे हैं। अवश्य इसमें कुछ रहस्य है राजन्! तुम भी अपने शिविर में किन्हीं अज्ञात व्यक्तियों को मत आने दो! तुम सब की सुरक्षा का ध्यान रखते हुये चन्द्रगुप्त ने अतिथियों के शिविरों में अज्ञात व्यक्तियों का आगमन प्रतिबंधित कर दिया है ताकि कोईअघट घटना न घट सके। बिना पूर्ण छानबीन के यहाँ पंछी भी पर नहीं मार सकेंगे, आगन्तुक के पास प्रवेशपत्र होना अनिवार्य है।

मलयकेतु– पर गुरुदेव! इससे तो हम लोग बन्दी बन जायेंगे।

चाणक्य– बंदी बनें तुम्हारे शत्रु कुमार! तुम अर्थ का अनर्थ कर बैठे। बड़े मुँह छोटी बात शोभा नहीं देती राजन्! ये विचार क्षुद्रों के लिये ही सुरक्षित रहने दो। अतिथि की सुरक्षा आतिथेय का ही एक अनिवार्य अंग है, तुम आश्वस्त रहो। अच्छा सब विश्राम करो, हम तुमसे पुनः शीघ्र ही मिलेंगे।

(प्रस्थान)

मलयकेतु– (स्वगत) आह! यह चाणक्य की चाल है अथवा राक्षस की।... मैं कुछ निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ? हो सकता है राक्षस की कुटिलता... नहीं नहीं... वह सरल है! उसने मुझे वचन दिया है मगध सिंहासन पर बैठाने का। उफ्! अब तो मैं बंदी हूँ चन्द्रगुप्त का। अब राक्षस से भेंट किस प्रकार होगी?... चाणक्य! राक्षस!... इनमें से किसको चुनूँ? किसको अपना समझूँ! मस्तिष्क में द्वन्द्व चल रहा है... द्वन्द्व... भयंकर द्वन्द्व...।

(विचार मग्न हो कक्ष में चक्कर लगाने लगते हैं)

पटाक्षेप

[दृश्य-तेईसवाँ]

(समय- रात्रि प्रथम प्रहर)

(चन्द्र की स्निग्ध चाँदनी बिखर रही है, चंद्रगुप्त चाणक्य मंत्रणारत हैं, दोनों सुखासन पर बैठे हैं, इसी समय प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी- देव! सेवा में एक नर्तकी पधारी है, वह अपनी कला दिखाने के लिये अत्यन्त लालायित है।

चन्द्रगुप्त- वह कहाँ से आई है? क्या नाम है उसका?

प्रतिहारी- वह नाम धाम कुछ नहीं बतलाती, कहती है मेरी कला ही सब बतला देगी।

चाणक्य- कुछ तो अपना परिचय दिया होगा?

प्रतिहारी- नहीं देव! कोई परिचय नहीं। उसका उद्देश्य श्रीमान् को केवल अपनी कला से मनोरंजन प्राप्त कराना है।

चाणक्य- देखने में कैसी है?

प्रतिहारी- अतीव सुन्दरी आचार्य देव!

चाणक्य- साथ में कौन है?

प्रतिहारी- एक दासी है।

चाणक्य- यहाँ उसे किसने भेजा है?

प्रतिहारी- कह रही है कौमुदी महोत्सव का समाचार सुनकर आई हूँ, प्रतियोगिता में भाग लेना चाहती हूँ।

चाणक्य- महोत्सव तो कल है।

प्रतिहारी- किन्तु उसका कहना है कि प्रतियोगिता में भाग लेने के प्रथम वह सम्राट को अपनी कला दिखला सकती है तत्पश्चात् ही वह सार्वजनिक रूप से सभा में नृत्य करेगी।

चाणक्य- ऐसी बात है! अच्छा, जाओ उसे रोको! और आदेश की

प्रतीक्षा करो।

प्रतिहारी- जी! (प्रस्थान)

चाणक्य- वत्स! नर्तकी का आना अपने आप में एक रहस्य है, तुम कक्ष से बाहर जाओ, विश्राम करो, हम नर्तकी की पूर्ण रूपेण छानबीन कर लें।

चन्द्रगुप्त- आचार्यश्री! आप मेरे पीछे तनिक-तनिक सी बातों में उद्विग्न हो जाते हैं, यह मेरे लिये लज्जाजनक है।

चाणक्य- सौम्य! **जब किसी पुरुष को राज्यश्री वरण करती है तब अनेक आपत्तियाँ भी वरण करने के लिये अग्रसर होती हैं,** इस प्राकृतिक नियम को कोई नहीं टाल सका है। दिवस के उज्ज्वल आलोक के पीछे निशीथिनी का अंजनवर्ण तिमिर भी लगा रहता है।

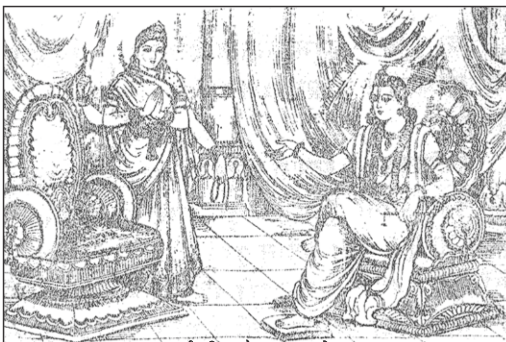
(नर्तकी और मलयकेतु)

चन्द्रगुप्त- क्षमा करें गुरुदेव! दिवस का अवसान और रात्रि का उदय दोनों अवश्यंभावी हैं, तब उनसे भय कैसा?

चाणक्य- भय नहीं भद्र! किन्तु घटा घिर आने के कारण असमय में ही दिवस का अन्त जान कर हम अपने कर्तव्यों किंवा समुचित कार्यकलापों से मुख मोड़ लें तो क्या यह अज्ञानता न होगी?

चन्द्रगुप्त- किन्तु प्रकृति के नियम तो स्वयं नियंत्रित हैं देव! उनमें शंका को स्थान कहाँ है?

चाणक्य- समुचित कथन है भद्र! जब मूक प्रकृति अपना कार्य कर रही है तब हम क्यों कर्तव्य से चूकें? अच्छा इस विवाद को यहीं समाप्त करो। आज तुम्हारे शयन की व्यवस्था अन्य प्रकोष्ठ में है, तुम्हारे शयन कक्ष

में आज रात्रि कुमार मलयकेतु विश्राम करेंगे।

चन्द्रगुप्त- ओह गुरुदेव! आप मुझे इस तरह छिपाना चाहते हैं जैसे कोई अमूल्य रत्नमंजूषा चोरी जाने के भय से सशंकित हो प्रतिदिन उसका स्थान परिवर्तन करता रहता हो।

चाणक्य- (सस्नेह) तुम नहीं समझ सकते सौम्य! अभी तुम्हें मानवीय प्रवृत्ति का अनुभव नहीं है, तुम सरल निश्छल हो, लोगों की प्रवंचना को समझ नहीं सकते, इसके लिये बुद्धि बल नहीं, अनुभव की आँखें चाहिये।

चन्द्रगुप्त- आपकी आज्ञा शिरोधार्य है महामन्! इतना ध्यान तो माँ भी अपने नन्हें से बालक का नहीं रखती होगी। (हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं)

चाणक्य- (शुभाशीर्वाद देते हुए) रात्रि मंगलमय हो वत्स! जाओ विश्राम करो। (चन्द्रगुप्त का प्रस्थान)

चाणक्य- (स्वगत, हृदय भर-सा आता है) तुम क्या जानो पुत्र कि तुम राष्ट्र की कितनी बहुमूल्य धरोहर हो! महान् पूज्य धरोहरें भी अपहरित कर दी जाती हैं! तुम्हारी कड़ी सुरक्षा अनिवार्य है। नर्तकी की परीक्षा लेनी होगी कहीं विषकन्या तो नहीं है। अमात्य राक्षस चन्द्रगुप्त को फूटी आँख भी नहीं देख पाता, वह नष्ट करने की युक्ति लगा रहा है, उसके प्रत्येक उपाय व्यर्थ करने होंगे । जब तक राक्षस वश में नहीं होता, चन्द्रगुप्त का अमात्य पद स्वीकार नहीं करता तब तक सम्राट का जीवन निश्चयतः संकट में है, केवल राक्षस का हृदय विजय करना है तत्पश्चात् ही चन्द्र निष्कंटक राज्य कर सकेगा। (जोर से पुकार कर) प्रतिहारी!

प्रतिहारी- (तुरन्त आकर) आज्ञा महामन्!

चाणक्य-नर्तकी है न?

प्रतिहारी– हाँ देव! वह प्रतीक्षागृह में आदेश की प्रतीक्षा कर रही है।

चाणक्य– उसे बैठने दो और शीघ्रातिशीघ्र कुमार मलयकेतु को अभी इसी क्षण बुलाने की व्यवस्था करो।

प्रतिहारी– जी, और कुछ?

चाणक्य– वे अकेले ही आयें। गुप्तद्वार से उन्हें अन्तर्कक्ष में लाना है।

प्रतिहारी– जैसी आज्ञा! (प्रस्थान)

(चाणक्य उद्विग्नता से कक्ष में टहलते हैं)

(मलयकेतु का प्रवेश)

मलयकेतु– आचार्य ने मुझे स्मरण किया है?

चाणक्य–(अचानक देखकर) ओह! आ गये कुमार!

मलयकेतु– आपका आदेश कैसे टाल सकता हूँ गुरुदेव! आज्ञा दें।

चाणक्य– आज्ञा नहीं, अनुरोध है मलयराज! तुम्हें ज्ञात ही है कल कौमुदी महोत्सव होना है! देश–देशांतर से प्रतिदिन ही अनेकों कलाकार अपनी–अपनी प्रतिभा दिखाने एकत्रित हो रहे हैं, इसी शृङ्खला में एक नर्तकी आई है, उसकी हठ है कि वह सर्वप्रथम निर्धारित समिति के सम्मुख नृत्य प्रस्तुत नहीं करेगी! केवल एक व्यक्ति हो और वह भी राजपुरुष, इसके निर्णय हेतु हम तुम्हें ही उपयुक्त समझते हैं! इसी कारण तुम्हारे विश्राम में बाधा दी, क्षमा करोगे।

मलयकेतु– (प्रसन्न हो) आपकी महानता है महामन्! जो आप मुझे ही प्रमुखता देते हैं।

चाणक्य– हम प्रमुखता नहीं देते कुमार! तुम्हारे गुण स्वयं प्रमुख बना देते हैं, हीरे की चमक ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है, नृत्य की श्रेष्ठता का निर्णय अन्य कौन व्यक्ति कर सकता है?

मलयकेतु– (गर्व से फूलकर) आपका आदेश मुझे मान्य है आचार्य!

चाणक्य- अच्छा तुम अन्तर्कक्ष में विराजो! हम नृत्य की समुचित व्यवस्था करवा दें। (प्रतिहारी को जोर से पुकारकर) प्रतिहारी!

प्रतिहारी- आज्ञा महामन्!

चाणक्य- नर्तकी से कहो वह अपनी कला प्रदर्शित करे, उसकी इच्छानुसार ही नृत्य की विशेष व्यवस्था की गई है। देखो! कक्ष का प्रकाश मधुर हो, तीव्रता आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करती है। (मलयकेतु से) यथार्थ है न कुमार ! (मलयकेतु मुस्कराते हैं) और सुनो सुरापात्र भी रखवा दो, नर्तकियों को सुरा अति प्रिय है।

प्रतिहारी- जी!

चाणक्य- (अन्तर्कक्ष में ले जाकर बैठाते हुये) तुम निश्चिंत हो बैठो कुमार! चंद समय पश्चात् ही नृत्य इस शांत प्रकोष्ठ को अपनी रिण-किण से मुखर बना देगा। स्मरण रखना कि तुम्हें उसकी श्रेष्ठता का निर्णय करना है।

मलयकेतु- यह भी क्या भूलने की बात है गुरुदेव! आप आश्वस्त हों। (चाणक्य का प्रस्थान)

(मलयकेतु हर्षमग्न हैं। एक दासी आकर जगमग करता हुआ सुरा कलश रख जाती है एवं कुछ दीपों को बुझा जाती है जिससे रजनी का वातावरण मधुमय हो उठता है। मलयकेतु नर्तकी की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं, तुरन्त ही नर्तकी का प्रवेश।)

नर्तकी- (अभिवादन करती हुई) देव! चरणों में दासी प्रणत है।

मलयकेतु- (सौन्दर्य से विस्मित हो) नर्तकी! तुम्हारा स्थान चरणों में नहीं, हृदय में है। दासी कहकर इस स्वर्गोपम अनिंद्य सौन्दर्य का अनादर मत करो।

नर्तकी- नहीं सम्राट! इस तुच्छ दासी का इस प्रकार उपहास न करें, हम लोगों का इतना सौभाग्य कहाँ?

मलयकेतु– सौभाग्य तो पाने वाला का है सुन्दरी! आओ इसी तल्प पर बैठो।

नर्तकी– (पास ही रखी पीठिका पर बैठकर) नहीं सम्राट! दासी का स्थान यहीं है, अनावश्यक आदर न दें! मैं क्षमा चाहती हूँ।

मलयकेतु– ओह! तुम्हारी वाणी अति विनम्र है सुन्दरी! मानों मुख से पुष्प झर रहे हों, यह मादक सौन्दर्य, स्निग्ध वाणी चातुर्य तुमने कहाँ पाया? कौन हो तुम? किस नगर की विभूति हो? धन्य है वह माँ, जो तुम्हें जन्म देकर अपनी कोख को पवित्र कर चुकी है।

नर्तकी– एक ही साँस में इतने प्रश्न? मुझे एक तुच्छ दासी ही समझें देव! यदि आपकी कृपा हुई, राजनर्तकी बन सकी तो धन्य हो जाऊँगी सम्राट!

मलयकेतु– अवश्य, अवश्य सुन्दरी! जिस राज्य में तुम जैसा रत्न होगा उसका महाभाग्य जागेगा। लोग ईर्ष्या करेंगे। आओ बैठो, हमारी शय्या को सुशोभित करो। (अनुनय पूर्वक) आओ...

नर्तकी– सम्राट होकर इतनी अधीरता!

मलयकेतु– सम्राट भी एक मानव है शुभे! वह मानव–हृदय की दुर्बलताओं से भी आक्रांत है, यदि स्वर्ग से इन्द्र उतर कर तुम्हें देखे तो वह भी अपनी शची को भूल जायेगा, सच कहता हूँ कामदेव की रति को भी तुमने अपने रूप से पराजित कर दिया है, अपूर्व है तुम्हारा लावण्य।

नर्तकी– बस, बस देव! मुझे लज्जित न करें, दासी को आज्ञा दें तो नृत्य प्रस्तुत करूँ?

मलयकेतु– हाँ, हाँ नृत्य देखने को आँखें लालायित हैं, कर्ण तुम्हारे गीत से तृप्त होंगे, किन्तु अभी नहीं, पहले मेरे मन को तृप्त करो रूपसी!

(नर्तकी एक भृकुटी कटाक्ष फेंककर विचित्र भाव–भंगिमा से थिरक

उठती है, मलयकेतु आनन्द विभोर हो उठते हैं, बीच–बीच में वे प्रशंसात्मक शब्द कहते रहते हैं)

गीत

भ्रमर मुदित मन आयो पियरवा,
सेज छोड़ ऊषा उठ आई।
बालक रवि को लिये खिलौना,
भ्रमर मुदित मन आयो पियरवा॥
भानु देख कलियाँ मुस्कानी,
कमल हँसन लागे रे पियरवा।
रूप गंध को लोभी भँवरा,
रस छक–छक कर पियत पियरवा॥
रवि पश्चिम में चलो प्रीति तज,
कमल–कमल कुम्हलाये पियरवा।
सुख के क्षण जाने न जात रे,
तृष्णा दर्शन देत पियरवा॥
रैन अँधेरी छाय गयो फिर,
कमल नयन मुँद गये पियरवा।
सोच करत मन उड़ नहीं पायो,
आशा पंख पसारे पियरवा॥
निशि गहरानी साँस रुकी तब,
तन तज चेतन उड़ो पियरवा।
रीति प्रीति की अजब निराली,
शलभ दीप पर जले पियरवा॥
भ्रमर मुदित मन आयो पियरवा!

मलयकेतु– (झूमते हुये) ऐसा सुन्दर नृत्य मैंने कभी नहीं देखा, कभी नहीं! ऐसा लगता था मानों कोई गंधर्व सुन्दरी ही नृत्य कर रही हो। (दोनों हाथ फैलाकर) आओ, आओ रूपसी! बस अब और अधिक न तड़पाओ इस उमड़ते काम ज्वर को शांत करो। मुझे एक पल भी चैन नहीं।

नर्तकी– (शरमाती, इठलाती सी) सम्राट! सुरा लाऊँ?

मलयकेतु– अवश्य सुन्दरी! तुम्हारे इन कोमल हाथों से मदिरा पीकर अपूर्व तृप्ति मिलेगी प्रिये! मन पर मादकता की परत पर परत चढ़ती जायेगी, सुरा और सुन्दरी दोनों का अद्भुत मेल! अलभ्य सुख।

नर्तकी– (सुरा पात्र से चषक में डालकर मलयकेतु को देते हुये) लें सम्राट! आज दासी कृतार्थ हुई।

मलयकेतु– (चषक लेकर पिलाने का अनुरोध करते हुये) लो पहले तुम पियो प्रिये!

नर्तकी– आप पियें देव! प्रसाद मैं पाऊँगी।

मलयकेतु– प्रथम तुम अपने अधरामृत से इसे पवित्र करो प्रिये! ये लाल-लाल बिंबाफल से ओष्ठ! ओह! कितने सुन्दर! रचयिता ने अपनी सुघर कूची से तुम्हें रचकर अपनी कला, अपनी तूलिका को सार्थक किया है। पियो प्रिये! पियो, मेरी रानी! तुम्हारा उच्छिष्ट ग्रहण करना ही महाप्रसाद होगा। (अपने हाथों से उसे पिलाकर शेष स्वयं पीता है)।

मलयकेतु– (एक-एक घूँट पीते हुये) अहा! कितना मधुर! कितना सुस्वादु! सार्थक हुआ मेरा जीवन! धन्य हुआ मेरा यहाँ आना, जीवन का सारा सुख जैसे आज ही यहाँ केन्द्रित हो आया है। सुन्दरी! तुम्हारे सान्निध्य को पाकर कृतार्थ हो गया।

नर्तकी– मैं भी सम्राट धन्य हो उठी हूँ।

मलयकेतु- (मूर्च्छना आने लगती है) सुन्दरी! मुझे क्या हो गया, मेरी आखें चकरा रही हैं, जी घबराने लगा है।

नर्तकी- कुछ नहीं सम्राट! आपको भ्रम हो गया है। हो सकता है कपिशा की मादकता का प्रभाव हो।

मलयकेतु- यही बात होगी प्रिये! रति के निकट भय कैसा? तुम्हारे सान्निध्य में यदि मृत्यु भी आयेगी तो हँसते-हँसते उसका भी आलिंगन कर लूँगा। (सिर चकराता है) ओह!... सुन्दरी! (उपधान पर सिर रखकर लेट जाता है)

नर्तकी- क्या हुआ सम्राट!

मलयकेतु- मितली आ रही है। माथा भारी हो गया है, (घबराकर आँखें मूँदकर) सब घूम रहा है प्रिये! सब घूम रहा है। धरती-आकाश दोनों एक हो रहे हैं, मुझे... मुझे कोई ऊपर से नीचे फेंक रहा है।

नर्तकी- (सिर दबाते हुये) आह सम्राट! मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है।

मलयकेतु- तुम्हारा स्पर्श कितना शीतल, कितना सुखद है सुन्दरी! पर आह... तुम्हारा उपभोग... न कर... सका, मुझे मरण... वेदना हो... (हिचकी) तुम्हारी... गोद में... (हिचकी) प्राण निक... हे प्र भु हे... आ ह...

(मलयकेतु का सिर एक ओर को लुढ़क जाता है, नर्तकी धीरे-धीरे उठकर खड़ी होती है)

नर्तकी- (स्वगत अँगड़ाई लेते हुये) आज बड़े भारी उत्तरदायित्व से उन्मुक्त हो गई। चन्द्रगुप्त! तुझे परलोक भेजकर मैं नंदराज के नमक से उऋण हुई हूँ। मूर्ख! भोग ले सम्राट के ऐश्वर्य को।

(अचानक चाणक्य आ जाते हैं, नर्तकी चकित हो जाती है)

चाणक्य- (गम्भीरता से) क्या कहा नर्तकी! अपने कहे हुये शब्दों को पुनः दुहराओ।

नर्तकी- (घबराकर) कुछ नहीं श्रीमान्! मैंने कुछ भी नहीं कहा।

चाणक्य- क्यों, अब कहने का साहस नहीं है?

नर्तकी- (अत्यन्त मृदुलता, विनम्रता पूर्वक) बात कुछ भी नहीं है श्रीमान्! मेरा कार्य समाप्त हो चुका, जाने की आज्ञा दें।

चाणक्य- (कठोरता पूर्वक) रुको नर्तकी! अभी तुमने अपना ऋण चुकाया है, अब हमें भी अपना कर्तव्य करने दो।

नर्तकी- श्रीमान्! कृपया मौन रहें, सम्राट निद्रा मग्न हैं।

चाणक्य- अजान धूर्त्त नर्तकी! आँखों में धूल झोंकना भी अमात्य राक्षस ने तुझे अच्छी तरह सिखा दिया है। उफ्! नीचता प्रेम से अपना खेल खेल गई, मलयकेतु के निर्जीव शव को निद्रा मग्न कह रही है।

नर्तकी- (विस्फारित नेत्रों से) मलयकेतु?

चाणक्य- हाँ मलयकेतु, मूर्ख कन्ये! जिसे तू चन्द्रगुप्त समझ रही थी वह सौभाग्य से मलयकेतु था, चन्द्रगुप्त से मृत्यु अभी बहुत दूर है।

नर्तकी- (भीत हो) पर... मैं... मैंने कुछ नहीं........ किया।

चाणक्य- प्रतिहारी!

प्रतिहारी- (तुरन्त प्रवेश कर) जो आज्ञा गुरुदेव!

चाणक्य- नर्तकी बंदी है, सब द्वारों पर आना-जाना प्रतिबंधित कर दो।

प्रतिहारी- जी! (प्रस्थान)

(चाणक्य ताली बजाते हैं तुरन्त चार सैनिक नंगी तलवार लिये

सैनिक ढंग से अभिवादन कर आदेश की प्रतीक्षा में खड़े हो जाते हैं)

सैनिक– आदेश महामन्!

चाणक्य– इस नर्तकी को सैनिक घेरे में ले जाकर कारागार में डाल दो। सावधान! यह स्मरण रखो कि यह सुन्दरी विषकन्या है ''विष रस भरा कनक घट जैसे'' विशेष सावधानी रखनी होगी। इसके वाणी विलास और विषैले सौन्दर्य से दूर रहना, इसके श्वासोच्छवास भी प्राण हरण करने में सक्षम हैं।

सैनिक– आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन होगा, आप आश्वस्त रहें महामन्!

नर्तकी– किन्तु मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। (रोने लगती है)

चाणक्य– आँखों के आँसुओं से पापों पर आवरण न हो सकेगा नर्तकी!... सैनिकों! ले जाओ इसे।

(सैनिकों का विषकन्या को घेर कर ले जाते हुये प्रस्थान)

चाणक्य– (स्वगत) अभागे मलयकेतु! विलासी की यही दुर्दशा होती है। मगध राज्य का सबसे बड़ा भयंकर अचूक अस्त्र स्वतः निरस्त्र हो गया। विष–कन्या बिना किसी परिश्रम के ऐसे बंदी हो गई जैसे ज्योति पर पतंगे स्वयमेव न्योछावर हो जाते हैं और राक्षस की यह एक और चाल भी विफल गई। काँटे से काँटा निकल गया। कहीं एक म्यान में दो खड्ग भी रह सकते हैं? चलो चन्द्रगुप्त का एक और प्रतिद्वंद्वी समाप्त हुआ। अमात्य राक्षस! चन्द्रगुप्त के प्रति तुम्हारे रोम–रोम में घृणा रम गई है, कहीं वह संस्कार बनकर स्थायित्व न ग्रहण कर ले, इसके पहले ही उसका अति शीघ्र उन्मूलन कर तुम्हें चन्द्रगुप्त के चरणों में झुकाना ही होगा और झुकोगे, झुकोगे...।

पटाक्षेप

[दृश्य-चौबीसवाँ]

(रात्रि का द्वितीय प्रहर, पाटिलीपुत्र का वन प्रान्त)

(राक्षस अपने विश्वस्त दो सैनिकों के साथ वन में विचरण कर रहा है। अंधकार गहरा है)

राक्षस- प्रजितसेन, तुरन्त ही कार्य होना चाहिये।

प्रजितसेन- हम दोनों प्रस्तुत हैं श्रीमान्!

राक्षस- आशा है तुम हमारी बात समझ गये होगे?

प्रजितसेन- अच्छी तरह महामात्य! चन्द्रगुप्त ज्यों ही आचार्य चाणक्य को सम्बोधित करेगा, हम उसी समय उसे समाप्त कर देंगे।

राक्षस- एक क्षण का भी विलम्ब घातक हो सकता है।

महीपाल- ऐसा भी हो सकता है महामात्य कि चन्द्रगुप्त ऐसी अन्धेरी रात्रि में यहाँ आये ही नहीं?

राक्षस- असम्भव है महीपाल! यह सर्वथा असंभव है। चन्द्रगुप्त साहसी है और आचार्य चाणक्य की आज्ञा भंग कर उनकी अवहेलना नहीं कर सकता। इसमें तनिक भी शंका नहीं कि ऐसे गुरु-शिष्य का पृथ्वी पर होना अपने आप में अति विलक्षण है। वह आयेगा और अवश्य आयेगा।

महीपाल- तब हम भी प्रस्तुत हैं उसे सदा के लिये संसार से विदा करने हेतु।

राक्षस- यह अन्तिम दाँव है, अब तो चंद्रगुप्त का जीवन प्रकृति को भी प्रिय नहीं है तब तो अनायास ही कार्य सिद्धि का सुयोग प्राप्त हुआ है।

प्रजितसेन– वह कैसा महामात्य?

राक्षस– आचार्य चाणक्य जैसे कुशल नीतिज्ञ की मुद्रा हाथ लग जाना, अनहोनी अकल्पनीय घटना है। प्रजितसेन! प्रकृति अनंत रहस्यात्मक है, कोई नहीं जानता कि कब क्या होने वाला है? भविष्य अलख है। चन्द्रगुप्त की हत्या के सारे प्रयत्न विफल हो चुके हैं, विषकन्या भी कारागृह में पहुँच चुकी है।

प्रजितसेन– आर्य चाणक्य की दृष्टि कितना सूक्ष्म निरीक्षण करती है किन्तु इस बार वे भी चूक गये, भाग्यशाली चन्द्रगुप्त बार–बार बच निकला है पर...।

राक्षस– अब उसका लंबा जीवन चन्द क्षणों में ही सीमित हो आया है! उसे बचाने वाला कोई नहीं। यह अँधेरी सुनसान रात्रि, चन्द्रगुप्त एक और हम अनेक, कैसी भी महान शक्ति हो चन्द्रगुप्त को जीवन दान करने में समर्थ नहीं, आज उसकी मृत्यु अनिवार्य है।

प्रजितसेन– हाँ महामात्य! कुछ ही क्षणों में उसका पार्थिव शरीर भू–लुण्ठित हो जायेगा और...

राक्षस– पार्थिव शरीर भू–लूण्ठित हो जायेगा और...

प्रजितसेन– किस चिन्ता में निमग्न हो गये श्रीमान्!

राक्षस– ओ...ह! अभी तुमने कहा न कि उनका पार्थिव शरीर भू–लुण्ठित हो जायेगा। मैं सोच रहा हूँ कि इसके अतिरिक्त कुछ और भी जीवित बचा रहेगा।

प्रजितसेन– कुछ भी तो नहीं श्रीमान्!

राक्षस– (समझाते हुये) शेष रहता है प्रजितसेन! वह है व्यक्ति का यशः शरीर। चन्द्रगुप्त के प्रति मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही है, जिसमें उसे जलना ही होगा, वह आग से खेला है, उसे प्रतिफल मिलना ही

चाहिये।

प्रजितसेन– क्यों नहीं? जिसने हमारे महाराजाधिराज को वंश विहीन कर वनवासी बना दिया, वह हमारा महाशत्रु है।

राक्षस– यद्यपि यह कटु सत्य गले से नीचे नहीं उतरता तथापि यह अनिवार्यतः मानना ही होगा कि सिंहासनारूढ़ होते ही वह जन–जन का स्नेह भाजन बन गया, उसका यशःशरीर बहुत समय तक जीवित रहेगा।

प्रजितसेन– हाँ महामात्य! उसने अपने नम्र न्यायप्रिय स्वभाव एवं निपुणता से प्रजा का हृदय जीत लिया है, प्रजा अपने प्रिय नरेश नंदराज को भूल गई है। चन्द्रगुप्त के शासन में पथिक भी राजपथ पर स्वर्ण मुद्राओं की पोटली सिरहाने रखकर रात्रि में निश्चिन्त हो सुख की नींद ले सकता है।

राक्षस– यह उसकी प्रारम्भिक चाल है प्रजितसेन! इसी प्रकार प्रजा को मुट्ठी में किया जाता है। (रोषपूर्ण स्वर में) पर वह कितना भी अच्छा क्यों न हो मेरा प्रतिद्वंद्वी है, उसने हमारे प्रिय नरेश को सिंहासन विहीन किया है, वह मेरा शत्रु है प्रजितसेन! चन्द्रगुप्त के आने का समय आ गया, रात्रि का द्वितीय प्रहर आरम्भ हो गया है, वह आता ही होगा, आओ हम लोग ओट में हो जायें।

(चन्द्रगुप्त के साथ चाणक्य का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त– आचार्यश्री! यहाँ हम लोग किस कार्य हेतु उपस्थित हुए हैं?

चाणक्य– वत्स! चन्द्रगुप्त की हत्या करवाना हमारा उद्देश्य है।

चन्द्रगुप्त– आपका आशय मैं नहीं समझ सका प्रभो!

चाणक्य– यह एक षड्यन्त्र है वत्स! अमात्य राक्षस के मन की दबी हुई प्रतिशोध की ज्वाला निकलेगी।

चन्द्रगुप्त– अभी आपका अभिप्राय स्पष्ट नहीं हुआ देव! यह एक अनबूझी प्रहेलिका सी लग रही है।

चाणक्य- सचमुच ऐसा ही है, प्रभु का स्मरण करो वत्स! कुछ ऐसा ही विलक्षण होने जा रहा है।

चन्द्रगुप्त- प्रभु कीर्तन तो सदैव, सर्वत्र, सर्वकाल ही गेय है आचार्यश्री! हम सांसारिक मोही प्राणियों को प्रभु का पवित्र नाम ही घोर अन्धकार में दीप ज्योति की भाँति पथ आलोकित करता है।

चाणक्य- समझो चन्द्र! ऐसा ही अन्धेरा है, देख रहे हो न यह वन प्रांत, कितना तममय नीरव है, केवल झींगुरों की आवाज ही कभी-कभी मुखरित हो उठती है, विजन में यह पवन भी घबराकर सांय-सांय कर रहा है। अमावस्या की श्यामल रजनी तम को और भी भयावह बना रही है, हाथ को हाथ नहीं सूझता। अन्तिम चेतावनी है वत्स! अनहोनी हेतु सावधान हो जाओ।

चन्द्रगुप्त- मैं सावधान हूँ आचार्यश्री! जिसके साथ देवतुल्य महान स्नेहीजन हों, जिनकी छत्रछाया में इस अनुचर ने अपने कई बसन्त व्यतीत किये हों उन आचार्यश्री के साथ रहकर भय कहाँ? (मुस्कराते हुये) भय भी भय खाकर भाग गया।

चाणक्य- समय पर सब की आँखें बदल जाती हैं चन्द्र! इस मिथ्या अभिमान में न रहो कि हम तुम्हारे हितैषी हैं।

चन्द्रगुप्त- आपकी दी हुई शिक्षा का ही प्रभाव है गुरुदेव! चन्द्रगुप्त निश्चल और निश्चिन्त है।

(चाणक्य चुटकी बजाते हैं। तुरन्त पाँच सैनिक आ जाते हैं)

प्रमुख सैनिक- आज्ञा श्रीमान्!

चाणक्य- भद्रशाल! तुम तीन को लेकर पुष्पगुप्त के सन्निकट पार्श्व में रहो। (एक सैनिक की ओर लक्ष्य कर) पुष्पगुप्त! तुम आगे बढ़कर आवाज देकर हमें संबोधित करो।

पुष्पगुप्त– जी!

चाणक्य– पर देखो! सावधान रहना, जीवन और मृत्यु का कठिन संघर्ष है।

पुष्पगुप्त– (दृढ़तापूर्वक) सैनिक संघर्ष के लिये सदैव तत्पर रहते हैं आचार्यश्री! मेरी ओर से आप आश्वस्त हों।

चाणक्य– तुम जा सकते हो, हमारे संकेत पर ही आवाज देना।

पुष्पगुप्त– जो आज्ञा। (प्रस्थान)

चाणक्य– भद्रशाल! तुम सब पुष्पगुप्त के इतने निकट रहो ताकि आये हुये अनायास संकट में तुम उसकी सुरक्षा में हाथ बँटा सको।

भद्रशाल– आप चिन्ता न करें महामात्य! यहाँ भी आप भद्रशाल का कौशल देखें।

चन्द्रगुप्त– हमें ही नहीं समस्त आर्यावर्त को तुम्हारे कौशल पर गौरव है सेनाध्यक्ष!

भद्रशाल– (विनम्र हो) मुझे भी भारतेश्वर की सेवा में हर्ष की ही अनुभूति होती है सम्राट! मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

चाणक्य– (भद्रशाल से) अग्निशलाका तैयार है न, तुरन्त प्रज्ज्वलित करनी होगी, कहीं अंधेरे में अपने हाथों अपने ही समाप्त न हो जावें।

भद्रशाल– आप पूर्णतः आश्वस्त रहें आचार्यश्री! हमें केवल समय की प्रतीक्षा है।

(सब ओट में हो जाते हैं, आचार्य चाणक्य पुष्पगुप्त को संकेत करते हैं, पुष्पगुप्त एकाकी बढ़कर जोर से पुकारता है।)

पुष्पगुप्त– (जोर से) आचार्यश्री! आचार्यवर (प्रजितसेन और महीपाल पुष्पगुप्त पर प्रहार करना चाहते हैं कि सेनाध्यक्ष भद्रशाल अपने

सैनिकों को लेकर उन दोनों को घेर लेते हैं, पुष्पगुप्त भी आहत होते–होते बच जाता है।)

भद्रशाल– सावधान! रक्त की एक बूँद भी न गिरने पाये अन्यथा कोई भी जीवित नहीं लौट सकेगा।

प्रजितसेन– (घबराकर भयभीत हो) कौन? महासेनाध्यक्ष! (दोनों शस्त्र त्याग आत्मसमर्पण कर देते हैं)।

राक्षस–(ओट से बाहर आ) चन्द्रगुप्त की हत्या हो चुकी प्रजितसेन? घोषणा कर दो कि...

(इतने में अग्निशलाका जला ली जाती है, प्रकाश में सब परस्पर देखते हैं।)

चाणक्य– (दूर से ही आते हुये) सम्राट् चन्द्रगुप्त की हत्या इतनी सरल नहीं है आर्य राक्षस! अभी तो उनके महान जीवन का अंकुर प्रस्फुटित ही हुआ है, विकसित हो पुष्पित पल्लवित भी होने दो।

भद्रशाल– (राक्षस से आश्चर्य पूर्वक) महामात्य आप!

राक्षस– आश्चर्य न करो भद्रशाल! जिस नंदवंश की सेवा में तुम्हारी पीढ़ियाँ निकल गईं, जिस नंदवंश की स्वामीभक्ति का तुम्हें अभिमान था उसी का पराभव तुम्हें प्रिय लग रहा है, पलक झपकते तुम महाराज पद्‌मनन्द को सर्वथा भूल चुके। जिनका आश्रय पा हम लोग धूल से उठकर आकाश पर पहुँच गये उनके प्रति कृतघ्नता तुम कर सके, मैं नहीं।

भद्रशाल– यह दोषारोपण नितांत मिथ्या है महामात्य! मूर्ति–विहीन मन्दिर की दीवारें नहीं पूजी जातीं आर्य! हमारे प्रभु सांसारिक भोगों से अत्यन्त विरक्त हो लालसाओं का परित्याग कर आत्म–साधना में लीन हो गये तो हमारे समक्ष श्रमण मार्ग के अतिरिक्त सम्राट की सेवा करें, ऐसा कोई अन्य मार्ग शेष न था, तिस पर भी नंदवंश की प्रिय पुत्री राजकुमारी सुप्रभा भी इस राज्य की साम्राज्ञी है। इसी कर्त्तव्य की पुकार को मैंने आत्मसात् किया है।

(चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त का प्रवेश)

चाणक्य– पंडित प्रवर आर्य राक्षस! अनायास आपके दर्शन पा हमें अत्यन्त प्रसन्नता है।

चन्द्रगुप्त–आर्य राक्षस! चन्द्रगुप्त मौर्य का अभिवादन स्वीकार करें।

राक्षस– (अनसुनी कर) भद्रशाल! मुझे बंदी बनाओ।

चाणक्य– हम बन्दी बनाने नहीं आये, हम स्वयं आपके हाथों बन्दी बनने आये हैं।

राक्षस– पराजित व्यक्ति का इससे अधिक और क्या तिरस्कार हो सकता है आर्य चाणक्य!

चाणक्य– यह तुम्हारी मिथ्या धारणा है आर्य! पराजित आप नहीं हम हैं।

चन्द्रगुप्त– एक ही पथ के पथिक होते हुये भी अभी तक हम आपको आमंत्रित न कर सके, इसका हमें दुःख है।

राक्षस– यह बस व्यर्थ की बातें हैं, **विजेता की दर्प भरी भेंट और अहंकार से भरा उपहास पराजितों की मृत्यु से भी अधिक यंत्रणा देने वाला होता है।**

चन्द्रगुप्त– (दृढ़ स्वर में शांति से) नहीं, ऐसी बात नहीं है आर्य! हमें आप जैसे विचक्षण महापंडित का आशीर्वाद पाने की आकांक्षा है। ऐसा मंगलमय आशीर्वाद दें कि राज्य में सर्वत्र शांति का प्रसार हो। अन्याय, अत्याचार का नाम भी कर्ण कुहारों में प्रवेश करने की धृष्टता न कर सके। अखंड मानवता जन–जन में व्याप्त हो। हम प्रजा के सेवक हैं। प्रभु! ऐसी सुबुद्धि दें कि हम सच्चे अर्थों में प्रजा के सेवक बन आपके मनोराज्य के सुव्यवस्थित सुख–शांति पूर्ण स्वप्न को साकार कर सकें।

राक्षस– (गद्‌गद् हो) सम्राट् चन्द्रगुप्त निमेष भर में आपने मेरा हृदय

विजित कर लिया, आप का व्यक्तित्व अद्वितीय है।

भद्रशाल– महामात्य! सम्राट की यह सरल निश्छल विनम्र वाणी में अद्‌भुत मोहकता है, स्वाभाविक ही है **जहाँ दंभ न हो, व्यंग्य न हो ऐसे अंतरंग से निःसृत शब्द क्यों न वशीकरण कर सकेंगे?**

राक्षस– सत्य कह रहे हो भद्रशाल! यही कारण है कि सम्पर्क में आने पर तुम इनके प्रेम प्रवाह में बह गये हो, बस लगभग ऐसी ही मनोदशा मेरी भी हो रही है। **प्रताप और ऐश्वर्य जब अपने स्वर्ण सिंहासन से उतरकर अपनी सक्षमता त्याग प्रतिशोधों के प्रति विनम्र हो उठे** तो कौन ऐसा क्रूर मानव होगा जो अपने दुष्कार्यों, दुर्भावनाओं से ग्लानियुक्त न हो उठे? मुझे क्षमा करें सम्राट! (पैरों पर झुकते हैं)।

चन्द्रगुप्त– (बीच ही में हाथ पकड़कर) यह क्या पंडितश्रेष्ठ! **यदि सरस्वती लक्ष्मी के चरणों में लोटने लगे तो महा अनर्थ हो जायेगा।**

चाणक्य– हाँ आर्य राक्षस! यह आपको शोभा नहीं देता।

राक्षस– आप भूल कर रहे हैं आर्य चाणक्य! सम्राट में लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का अनोखा अनुपमेय विचित्र समन्वय है।

चाणक्य– फिर भी आप वयोवृद्ध के साथ ज्ञान एवं अनुभववृद्ध भी हैं।

राक्षस– परन्तु **ज्ञान का उपयोग विवेक पूर्वक ही सार्थक है अन्यथा सारी कुशलता तत्क्षण नष्ट हो जाती है।** मैं अपनी हिंसक क्षुद्रवृत्ति के कारण कठिन दण्ड का पात्र हूँ, मुझे दण्ड दें।

चाणक्य– अपराधी को दण्ड देना राजनीति का अनिवार्य अङ्ग है आर्य!

राक्षस– धन्यवाद, मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

चाणक्य– (गम्भीर हो) सम्राट चन्द्रगुप्त! आर्य राक्षस को महामात्य का पद दिया जाये।

राक्षस– (अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो) यह क्या आर्य? यह कैसा दण्ड?

चाणक्य– (नाटकीय अभिनय करते हुये) अपराधी! तुम मौन रहो। तुम्हारी दण्ड व्यवस्था यही है, क्या तुम अपने वचन इतने शीघ्र विस्मृत कर देते हो?

राक्षस– नहीं, नहीं यह असम्भव है आचार्य! सर्वथा असम्भव है, वह पद आपसे ही सुशोभित होगा।

चाणक्य– उफ्! आप कैसे नीतिज्ञ हैं? कहीं अपराधी से पूछकर भी दण्ड दिया जाता है? दोषों को दृष्टिगत रख उपयुक्त दण्ड निर्धारित करना न्यायाधीशों का कार्य है, दोषी का नहीं। (गम्भीर गर्जना) आर्य राक्षस! समस्त आर्यावर्त से विशाल राज्य को तुम जैसे राजनीतिज्ञ, विद्वान, कर्तव्यनिष्ठ सचिव की आवश्यकता है। हम सम्राट से अनुरोध करेंगे कि आपको इसी दण्ड से दण्डित करने में विलम्ब न करें।

चन्द्रगुप्त– आज्ञा शिरोधार्य है महामन्! (गले से मुक्तामाल उतारकर राक्षस के गले में पहनाते हुये) आज से आपको मैं महामात्य के पद पर प्रतिष्ठित कर राज्य का संचालन सूत्र आपके कुशल हाथों में सौपता हूँ। माहामात्य आर्य राक्षस की जय हो।

सभी– (हर्षोन्मत्त हो) जय हो!

राक्षस– (हर्ष विषाद मिश्रित स्वर में) आपकी महानता के समक्ष मैं अत्यन्त लज्जित हूँ। **पराजित की सबसे बड़ी पराजय क्षमादान है** सम्राट! मुझे यह भार दुःसह प्रतीत हो रहा है। बन सके तो उचित दण्ड दीजिये। शासन की शोभा दण्डपालन से होती है, बस एक ही विकल्प है दण्ड...(हाथ जोड़कर) संतप्त मन को इसी से शांति मिल सकेगी।

चन्द्रगुप्त– (राक्षस के जुड़े हाथों को अपने हाथ में ले उन पर मस्तक झुका देता है)महामात्य! चन्द्रगुप्त पुनः प्रणाम कर आपसे यही आकांक्षा रखता है कि आर्यावर्त में सुशासन स्थापित करने व राज्य की श्रीवृद्धि में हमें अपना अपूर्व सहयोग प्रदान करें।

चाणक्य- हम तुम्हें इस पद हेतु निमंत्रित करते हैं आर्य! अब समस्त विकल्पों को छोड़, शांत और शीतल मन हो, संकल्परत हो जावें एवं आमंत्रण स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें।

राक्षस- (हर्ष विह्वल हो) अनुपम शालीनता! मैं कृतकृत्य हुआ आचार्य प्रवर! राजसी दर्प और सत्ता के गर्व से उन्मुक्त सुशासक की सेवा में रहकर मैं स्वयं को परम सौभाग्यशाली समझूँगा आचार्य! सचमुच सम्राट चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व ही अभिमानी यवनराज अलक्षेन्द्र की भरी सभा में स्वाभिमान पूर्वक मुँहतोड़ उत्तर दे सकता था। मैं आप दोनों से पुनः पुनः क्षमा याचना करता हूँ। सचिव पद स्वीकार कर अपने कर्त्तव्यों से समस्त कलुष धो दूँगा। प्रभु की व आप सबकी साक्षी पूर्वक मन-वाणी और कर्म से राज्य के प्रति निष्ठा बनाये रखने की शपथ ग्रहण करता हूँ।

चाणक्य- आपकी स्वीकारता से हमें हर्ष है पंडितवर! (चन्द्रगुप्त से) मेरा कार्य समाप्त हुआ वत्स! अब हम निश्चिन्त हो पुनः अपने अध्यापक के पद पर तक्षशिला लौट जायेंगे। प्रभु! तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करें।

चन्द्रगुप्त और राक्षस- (कुछ क्षण स्तब्ध हो दोनों एक साथ बोल उठते हैं) यह क्या कह रहे हैं आप?

चाणक्य- जो उचित है वत्स! हम हैं विद्यापीठ के सामान्य आचार्य। **अध्यापक के लिए राजनीति हेय है, हमारा कार्य तो केवल बालकों की बुद्धि पैनी कर उनको योग्यतानुसार कुशल नागरिक, शिक्षक, प्रशासक के रूप में गढ़कर देश को भेंट कर देना है।** राजसभा के योग्य सचिव प्राप्त हो गये। अब आप सब अपना-अपना कार्य करें।

राक्षस- नहीं, आर्य चाणक्य! यह नहीं हो सकता, आपका कथन स्पृहणीय होते हुये भी उचित नहीं है। जिस उद्देश्य पूर्ति हेतु आपने आचार्यपद की तिलाँजलि दी, उस ध्येय को पूर्णता तक पहुँचायें, युग की

यही माँग है। आप इतने महान निस्पृही हैं, यह मैं इसी क्षण जान सका हूँ, सच में आपका मूल्यांकन करने में मुझसे महान भूल हुई है, आपके मार्गदर्शन के अभाव में हम कृतकार्य न हो सकेंगे।

चंद्रगुप्त- हाँ धीमान्! आपके बिना राजसभा सूनी रहेगी, आर्य राक्षस महामात्य हैं और आप वरिष्ठ महामात्य पद पर अवस्थित हों, मेरी आप से विनम्र प्रार्थना है, आपको हम नहीं जाने देंगे, आपके जाने के पूर्व मैं ही किसी अज्ञात स्थान का चयन कर लूँगा।

चाणक्य- (हँसकर) अरे, अरे ऐसा न करना। नहीं तो मैं दूसरा चन्द्रगुप्त कहाँ ढूँढूँगा?

चन्द्रगुप्त- देव! आपके चरणों में सहस्रों चन्द्रगुप्त न्योछावर हैं।

राक्षस- वरिष्ठ विचक्षण बन्धु! आपके साथ ही मैं इस पद को स्वीकार करता हूँ। आप नगर का परित्याग नहीं कर सकते।

चाणक्य- (विवश हो) अच्छा, तुम्हारी हठ है तो चन्द दिन और रुकना ही होगा। पर सारा कार्य भार आप पर है, हम केवल मंत्रणा में सम्मिलित होंगे, प्रसन्न हैं न?

चन्द्रगुप्त- बस यही अभिलाषा है आचार्यश्री! रात गहरा रही है, खड़े-खड़े कितना समय निकल गया इसका भान ही न रहा। राजभवन की ओर प्रस्थान किया जाये एवं अविलंब महामात्य पद की घोषणा की जावे।

सब- सम्राट की जय हो! आचार्य चाणक्य की जय हो। (प्रस्थान)

पटाक्षेप

[दृश्य-पच्चीसवाँ]

यूनान देश में शैलाक्ष का प्रासाद

समय- संध्या काल

(हेलन श्रृङ्गार करने में व्यस्त है, वेश-भूषा भारतीय है, इतने में शैलाक्ष का प्रवेश)

हेलन– पिदर! आज आप बहुत प्रसन्न हैं, क्या रहस्य है?

शैलाक्ष– (प्रसन्नता पूर्वक) हाँ आयुष्मती! हम बहुत प्रसन्न हैं, सुनोगी तो तुम भी प्रसन्न होगी, हम सब अमरपुरी की यात्रार्थ चल रहे हैं।

हेलन– (आश्चर्यान्वित हो) अमरपुरी! यह कहाँ है पिदर! कोई नवीन देश है?

शैलाक्ष– नवीन ही समझो।

हेलन– अर्थात् प्राचीन है पर नवीन समझूँ, यही कह रहे हैं न आप?

शैलाक्ष– उफ्, तेरे तर्क से मैं पराजित हो जाता हूँ हेलन! प्रत्येक बात में तू तर्क लेकर उपस्थित हो जाती है।

हेलन– (मचलकर आग्रह भरे स्वर में) बतायें न पिदर! हम कहाँ चल रहे हैं? सचमुच मुझे यात्रा में बहुत आनन्द आता है।

शैलाक्ष– अरे! वहीं पगली भारत...

हेलन– (पुलकित हो) भारत! मेरे सुख स्वप्नों का देश! (आँखें मूँद हर्ष विभोर हो जाती है) पिदर! वह कितना सुन्दर सुहावना देश है, जी चाहता है उड़कर वहीं पहुँच जाऊँ।

शैलाक्ष– इसीलिए तो हमने यात्रा की योजना बनाई है।

हेलन– मेरे अच्छे पिदर! तो अब हम कब चल रहे हैं, हृदय पिंजड़े से आनन्द–विहग निकल कर उस देश पर पुलकित हो मँडराने लगा है।

शैलाक्ष– बस प्रातः सूर्योदय होते ही हम सेना सहित कूच कर देंगे।

हेलन– (उदास हो) सेना सहित! आपका प्रयोजन युद्ध से तो नहीं?

शैलाक्ष– राजसी यात्रायें निष्प्रयोजन नहीं हुआ करतीं पुत्री!

हेलन– तो क्या राजाओं की यात्रा का उद्देश्य केवल युद्ध ही हो सकता है, मनोरंजन नहीं?

शैलाक्ष– युद्ध और मनोरंजन में भेद ही क्या है? युद्ध से मनोरंजन ही तो होता है।

हेलन– कितनी घृणित बात है पिदर! कहाँ मनोरंजन और कहाँ युद्ध! दोनों में अत्यन्त भिन्नता है। युद्ध तो हत्या का एक दुर्व्यव्साय है। बुझी हुई विजय लालसा को पुनः प्रज्ज्वलित न करें पिदर!

शैलाक्ष– विजय लालसा का प्रदीप बुझा ही कहाँ है आयुष्मती! वह तो तभी से जल रहा है, अविराम अबाध गति से। उसी के आलोक में हम अपना पथ प्रशस्त कर सके हैं।

हेलन– आपकी परिभाषा बड़ी अटपटी है। युद्ध को आप मनोरंजन कहते हैं, लालसा के दीपक से आपका पथ प्रशस्त होता है। कहीं यह लालसा की चिंगारी भयंकर अग्निशिखा न बन जाये, जिसमें अपना–पराया सभी स्वाहा हो जाये पिदर! त्याग दें, युद्ध की भीषण लालसा का परित्याग कर दें एवं शांति से जीवन व्यतीत करें। **जब तक दीपक, दीपक रहता है, तब तक प्रकाश देता है, जब वह ज्वाला बन जाता है तो सब कुछ भस्म कर देता है।**

शैलाक्ष– यह समझ का फेर है हेलन! तुम नारी हो, नारी सुलभ कोमलता तेरे रोम–रोम में व्याप्त है। अपनी मदर के सदृश तूने अति सरल कारुण्य पाया है, पर इतनी दयालुता अच्छी नहीं होती बिटिया!

हेलन– तो क्या बाज की भाँति यत्र–तत्र झपट्टा मारते हुये छलना अच्छा होता है?

शैलाक्ष– बुरा क्या है? सब उसके प्रभुत्व को स्वीकार करते हैं, वह विहंगों का राजा कहलाता है।

हेलन– छिः ऐसे प्रभुत्व को, जहाँ एकाकी जीवन हो, जिससे सब भयभीत रहें। वह मानव ही क्या? जो परस्पर मिल–बैठकर सुख–दुःख की

चर्चा न कर सके, जो मात्र अपने स्वार्थ में ही रत रहे।

शैलाक्ष– तेरा कथन यथार्थ है आयुष्मती! विचार तो, युद्ध से कितने मनुष्यों की रोजी–रोटी का प्रश्न हल हो जायेगा, कितनों की बेकारी नष्ट हो जायेगी।

हेलन– और कितने दीपक बुझ जायेंगे, कितने असहाय वृद्धों की लाठी टूट जायेगी, कितनी माँगों के सिन्दूर सदा–सदा के लिये धुल जायेंगे, कितनी भगिनियाँ आठ–आठ आँसू बहाती रह जायेंगी? यह आप क्यों भूल जाते हैं पिदर! (दुखित हो) क्या आपकी आत्मा को परितोष[1] मिलेगा? शान्ति मिलेगी पिदर!

शैलाक्ष– राज्य–विस्तार इसी प्रकार होता है। राज्यवृद्धि कर हम उसमें शांति फैलायेंगे, अपनी प्रजा को न्याय नीति से तृप्त करेंगे, इससे अपने देश का गौरव बढ़ेगा।

हेलन– ओह! तब हत्या कर मनुष्यों के शवों पर गौरव की ईंट रखकर यश का कलुषित भवन निर्माण करेंगे।

शैलाक्ष– (क्रोधित हो) हेलन...!

हेलन– (ध्यान न देते हुये) भला यह तो बतलाइये पिदर! जिन्होंने हत्या का व्यवसाय नहीं अपनाया ऐसे महर्षि सुकरात, डिमास्थनीज, अफलातून, होमर, फिडियस, सैफ़ो, पेरीक्लिस आदि संतों से क्या यूनान का गौरव नष्ट हुआ है? उन्हें क्या विश्व–जन घृणित दृष्टि से देखते हैं?

शैलाक्ष– वाक्चातुर्य से तू मुझे बार–बार हराना चाहती है, तेरी शैशव की अल्हड़ता अभी भी ज्यों की त्यों है पागल! कुछ न हुआ तो संतों की सूची ही रट डाली।

हेलन– मुझे बातों के भुलावे में न डालें पिदर! अब मैं वह छोटी

---

1. सन्तोष, तृप्ति

बालिका नहीं रही कि गगन के चाँद के लिए मचलकर झुनझुने की मधुर आवाज में ही खो जाऊँ।

शैलाक्ष– (हँसकर) अच्छा! तो अब तू बड़ी हो गई है, मैं तो तुझे बालिका ही समझता था।

हेलन– पिदर! आपके समक्ष मैं बालिका हूँ और सदा रहूँगी भी पर बात ये है कि जब मानव कुल में जन्म हुआ है तो किंचित् बुद्धि विवेक भी हिस्से में आया है, उसका उपयोग कर हिताहित का ज्ञान न करूँ तो क्या कृपण की संचित निधि की भाँति व्यर्थ न होगा?

शैलाक्ष– किन्तु तुम सीमा से बाहर जा रही हो।

हेलन– नहीं पिदर! युद्ध! युद्ध! युद्ध! जब से मेरी बुद्धि कुछ सचेष्ट हुई है तब से मैं यही देखती आ रही हूँ, लूट, मार, हत्या! सच कहती हूँ पिदर! प्रभुत्व और जय की आकांक्षायें ही मानव को मानवता से पृथक् कर देती हैं। देशों को समुद्र, पर्वत जितना पृथक् नहीं कर सके उतना तो मनुष्यों के भीतर बैठे हुये विद्वेष और दंभ ने कर दिखाया। **मनुष्य को जब अहंकार रूपी विषैला नाग डस लेता है तब वह उसके प्रभाव में आकर प्रतिक्षण ऐंठता रहता है।**

शैलाक्ष– (क्रोधित हो) बस, बस हेलन! देख रहा हूँ तुम दिन पर दिन निरंकुश होती जा रही हो।

हेलन– सच बात कहना भी क्या अपराध की श्रेणी में आता है? आपको स्मरण होगा पिदर! जब सम्राट अलक्षेन्द्र से तक्षशिला में साधु दोलामस ने पूछा कि भारत विजय के पश्चात् तुम्हारा कार्यक्रम क्या है?

शैलाक्ष– तब सम्राट ने लम्बी सूची प्रस्तुत कर दी थी।

हेलन– साधु ने नहीं समझाया था कि तुम **इच्छाओं को जितना असंयमित रखोगे, उतनी ही लिप्सा बढ़ेगी, निरंतर चाह की दाह में**

संतप्त रहोगे, यदि तुम्हें सुख-शांति चाहिये तो लिप्सा को संतोष की सुधा पिलाओ, उसे नियन्त्रित करो, सुख तुम्हारे चरणों में लोटेगा, यही कारण है कि सम्राट अन्तिम समय में जन-जन को एक महत्वपूर्ण संदेश दे गये।

शैलाक्ष- संदेश।

हेलन- लो आप तो भूल ही गये, उन्होंने नहीं कहा था कि जब मेरी अर्थी निकले तो मेरे खाली हाथ बाहर निकाल देना और जितनी संपत्ति है वह सब श्मशान तक ले जाना ताकि दुनियाँ जान सके कि अलक्षेन्द्र की घोर अनीति से एकत्रित की निधि भी अन्तिम समय साथ न दे सकी। बालक आता है तो मुट्ठी बाँधकर पर उसे विवश हो खाली हाथ जाना पड़ता है।

शैलाक्ष- निराशा ही मृत्यु है हेलन! निराश व्यक्ति विरागता की बातें करने लगता है। जन्म और मृत्यु के बीच का समय ही अमूल्य है जब व्यक्ति अपनी अभिलाषाओं को साकार कर सकता है। दार्शनिक युग-युग से इन्हीं उपदेशों को दोहराते आ रहे हैं पर क्या आकांक्षायें रुक पाई हैं?

हेलन- मनुष्य के लिये कोई बात असम्भव नहीं है पिदर! वह सब कुछ कर सकता है यदि ठान ले। जो उपदेशक हुये हैं, वे भी हम जैसे ही थे, उन्होंने साधना की कठिन टाँकी से स्वयं को गढ़ा है, लक्ष्य पर पहुँचने के लिये लक्ष-लक्ष ठोकरें खाई हैं, तब कहीं उनका चमकता नाम दुनियाँ जान सकी है, अमूल्य समय का सदुपयोग भी यही है।

शैलाक्ष- सभी यह मार्ग अपना लें तो संसार की सारी व्यवस्था अव्यवस्थित हो जायेगी, ये सब वृद्धावस्था के लिये शेष रहने दो, श्रमण मार्ग हृदय की दुर्बलता है।

हेलन- आप यथार्थ नहीं कह रहे हैं पिदर! यह आत्मा की आंतरिक

वाणी नहीं। 'अहं' के दंभ में भूली भ्रमित आत्मा के बोल हैं, जो मिथ्या हैं, संकट में डालने वाले हैं।

शैलाक्ष– कर्मवीर संकट से नहीं डरते पुत्री!

हेलन– (सविनय) पिदर! आप एक बार गंभीरता से पुनः विचार करें। कहीं विजय वरण की अभिलाषा में पराजय हाथ न लगे? उस ओर से आ रहे संवादों से चन्द्रगुप्त की स्थिति अधिक सुदृढ़ ज्ञात होती है। सम्राट अलक्षेन्द्र के युग का भारत अब अधिक सतर्क हो गया, अखण्ड भारत पर चन्द्रगुप्त का एकछत्र प्रभुत्व स्थापित हो गया है।

शैलाक्ष– हेलन! सम्राट अलक्षेन्द्र का उत्तराधिकारी भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेला है, सब प्रकार की स्थिति का सामना करने में भुजायें सक्षम हैं आयुष्मती! तू क्या यह समझती है कि मैं इस महान उद्देश्य को एक नारी वह भी अपनी बालिका की वाचालता में आकर त्याग दूँगा? तुझे साथ में चलना हो तो चल वरन् भारत के गीत यहीं यूनान में ही गाती रहना, व्यर्थ की बातों में समय नष्ट हो गया। (शीघ्रता से प्रस्थान)

हेलन– (आह भरते हुये, स्वगत) उफ्! कहीं युद्ध की ज्वाला देश को ही नष्ट न कर दे। यूनान के प्रति भारतीयों में वह घृणा जागेगी जो मानव, मानव को सदा के लिये पृथक् कर देगी। उच्छेदक के रूप में इतिहास में मेरे प्यारे पिदर का नाम अमिट हो जायेगा, जो कलंक सदियों तक न मिट सकेगा।... (कक्ष का चक्कर लगाते हुये) किन्तु मैं यह सब न होने दूँगी, अपना संपूर्ण जीवन भीषण युद्ध की दरारों को पाटने में लगा दूँगी। पिदर युद्ध के सृजनकारी होंगे तो उन्हीं की पुत्री शांति का संदेश फैलाकर शांति स्थापना में सक्रिय होगी। देश पर कालिमा न लग सकेगी। विश्व विश्वास करेगा लोहुलुहान करने वाले काँटों के बीच सुरभि फैलाने वाली कोमल कलियाँ भी पला करती हैं। मैं जाऊँगी, भारत अवश्य जाऊँगी।

पटाक्षेप

[दृश्य-छब्बीसवाँ]

युद्धस्थल में चन्द्रगुप्त का शिविर

(सम्राट चन्द्रगुप्त, आचार्य चाणक्य, महामात्य राक्षस, सेनाध्यक्ष भद्रशाल, जयदेव आसंदियों पर बैठे वार्तालाप कर रहे हैं)

चन्द्रगुप्त– शैलाक्ष ने एक दिन के युद्ध में ही पराजय स्वीकार कर ली।

भद्रशाल– न जाने कितनी साधों को लेकर वह पुनः भारत विजय पर आया था आज उसका विजय अभियान विफल हो गया, समस्त साधें, आशायें धूल में लोट रही होंगी।

जयदेव– उसे ऐसा भी दुर्दिन देखना पड़ेगा, यह उसकी कल्पना से परे था।

चन्द्रगुप्त– सचमुच नाइकेटर शैलाक्ष का हृदय बहुत व्यथित होगा।

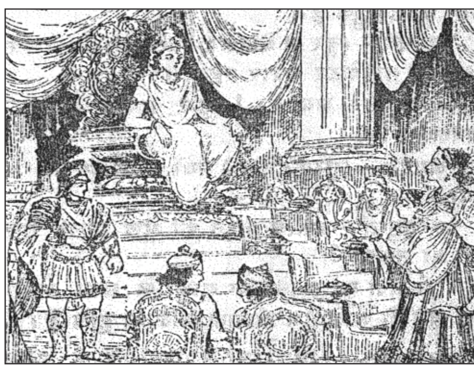

जयदेव– ये 'नाइकेटर' कौन बला है?

राक्षस– 'नाइकेटर' यूनान में विजेता को कहते हैं।

जयदेव– (उपहास करते हुये) ओह! तो ये बिना विजय के ही विजेता बन गये, अपने सम्राट अलक्षेन्द्र से भी कई डग आगे।

चाणक्य– **अभिमान का मस्तक सदैव नीचा होता है वत्स! अकड़ बेंत के वृक्ष की भाँति तनिक से वायुवेग से चरमराकर टूट जाती है।** बन्धु राक्षस! शैलाक्ष कब तक आ पायेंगे?

राक्षस– विलम्ब नहीं है आर्य! उन्होंने इसी समय आने का सन्देश

दिया था, आते ही होंगे।

चन्द्रगुप्त- आचार्यश्री! एवं मंत्रीश्वर! सन्धि प्रस्ताव यद्यपि पराजित शैलाक्ष की ओर से आया है तथापि हमारी संस्कृति के अनुसार हमें पूर्णतः संयमित, संतुलित ढंग से चर्चा करना होगी, विजेता की गम्भीर, मधुर वाणी ही वीरता की द्योतक है।

चाणक्य- यह सर्वथा भारतीय परम्परा के अनुकूल वचन हैं वत्स! **प्रभुता पाकर उच्छृंखल न होना ही अपने आप में विशेषता है।**

राक्षस- **प्रभुता, ऐश्वर्य, बल, बुद्धि के साथ विवेक व्यक्ति को पारस बना देता है** आचार्य! हमारे सम्राट इन गुणों से परिपूर्ण हैं।

चन्द्रगुप्त- पूर्ण कहाँ महामात्य! उस राह पर जाने का इच्छुक हूँ।

जयदेव- (दूर से देखकर किंचित् व्यंग्य से) लो, पराजित नाइकेटर पधार रहे हैं।

चन्द्रगुप्त- जयदेव! तुम अपनी आदत से विवश हो।

जयदेव- (मुस्कराकर) क्यों, क्या असत्य कहा गया है?

चन्द्रगुप्त- असत्य कहने की भूल भला तुमसे कैसे हो सकती है?

(शैलाक्ष का अपने एक साथी के साथ प्रवेश! सब खड़े हो जाते हैं, शैलाक्ष लज्जित होते हैं।)

चन्द्रगुप्त- (विनम्रता से) स्वागत है यूनानी वीरों! हमें आपसे मिलकर हार्दिक प्रसन्नता है।

(सब हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं)

शैलाक्ष- विजेता सम्राट चन्द्रगुप्त! हमें आपके विनम्र व्यवहार पर घोर आश्चर्य हो रहा है, हम अपनी भूल पर लज्जावंत हैं।

चन्द्रगुप्त– आसन ग्रहण करें महानुभाव! (सब बैठ जाते हैं) अतीत के क्षणों को भुला दें, समझें वह एक भयानक स्वप्न था, जिसका पटाक्षेप हो गया।

शैलाक्ष– स्वप्न समझ कर अपने कृत्य को झुठला देना सरल नहीं है सम्राट! सत्य पर आवरण डालना केवल मूर्खता ही होगी।

चाणक्य– भूल को भूल समझ लेना ही पर्याप्त है शैलाक्ष! यही मनुष्य की महानता है, बोलो! क्या चाहते हो?

शैलाक्ष– आचार्यवर! आप विजेता हैं और हम हैं पराजित व्यक्ति? विजित और विजेता की मनोदशा में आकाश और पाताल का अन्तर है। दोनों अत्यन्त भिन्न दो वस्तुएँ हैं। एक-दूसरे को समझना नितांत कठिन है, दोनों समानान्तर रेखाओं की भाँति एक बिन्दु पर मिल नहीं सकते। हमारी अभिलाषाएँ युद्ध की आग में जलकर नष्ट हो गई हैं। आप ही अपनी शर्तें रखें।

चाणक्य– नहीं शैलाक्ष! स्वयं को इतना नगण्य न गिनो, तुम वीर हो! वीरों का हम आदर करते हैं।

चन्द्रगुप्त– प्रतिद्वन्द्वता का अन्तिम निष्कर्ष विजित और विजेता के रूप में ही होता है, किन्तु यह युद्धस्थल नहीं, वीरों का परस्पर मिलन है, जिस प्रकार दो समानान्तर रेखायें अत्यन्त दूरी पर जाकर मिल जाती हैं, उसी प्रकार हम दोनों युद्ध को बहुत पीछे छोड़ शांति और मानवता के हित में एक ही बिन्दु पर मिलकर आ बैठे हैं। हमारी संधि वार्ता प्रारम्भ हो।

शैलाक्ष– मेरा युद्धोन्माद तो स्वप्नवत् ही प्रतीत हो रहा है जो मैं जागृत अवस्था में देख रहा हूँ, यह सचमुच अद्‌भुत अनुपम चमत्कार युक्त है, हम ही नहीं वरन् हमारा यूनान इसे कभी नहीं भुला सकेगा, हम आपके

चिरकृतज्ञ हैं सम्राट! हमें आदेश दें।

चन्द्रगुप्त– हमारा कोई आदेश नहीं महोदय! हमें न किसी की विजय सह्य है और न हम किसी की स्वतन्त्रता पर हाथ उठाते हैं, आक्रमण तुच्छ घृणित आकांक्षा है। हमारी केवल यह भावना है कि अखंड आर्यावर्त्त की भूमि कोई विदेशी रक्त से रँगने न आये, पुण्य सलिला सरितायें मानवों के रुधिर से लाल न हों, मानव मानव रहे, दानव न बने।

शैलाक्ष– ऐसा ही होगा सम्राट! भविष्य में हम भारत पर आक्रमण नहीं करेंगे।

राक्षस– साधु! साधु! आपके विचार सुन्दर ग्राह्य हैं।

चाणक्य– परन्तु इसका क्या प्रमाण कि कभी आक्रमण नहीं करोगे। तुम न करो पर तुम्हारे उत्तराधिकारी तो कर सकते हैं?

शैलाक्ष– हो सकता है आचार्यदेव! पर हम इसके लिये क्या कर सकते हैं? (दृढ़ता पूर्वक) हाँ, यह निश्चित है कि मेरे जीवित रहते कोई भी यूनानी युद्ध हेतु पैर नहीं रख सकेगा।

चाणक्य– यह क्या पर्याप्त होगा शैलाक्ष? यूनान आज महादेश आर्यावर्त से संधि कर रहा है, यह छोटे–मोटे नरेशों की नहीं अपितु शैलाक्ष की महावीर सम्राट चन्द्रगुप्त से संधि है।

शैलाक्ष– तब आप ही आदेश दें, सहर्ष अपने प्रस्ताव रखें।

राक्षस– नहीं, प्रस्ताव आप रखें श्रीमान्! भविष्य में इतिहास यह न कह सके कि भारतीय शरणागत निर्बल शत्रु से मनचाहे ढंग से अनुचित प्रस्ताव स्वीकार करवा लेते हैं, हम पराजित पक्ष से ही समस्या का उचित समाधान चाहते हैं।

शैलाक्ष– आपकी बातें अलौकिक हैं महामात्य! यहाँ की प्रत्येक बात मुझे विलक्षण प्रतीत होती है, आप सब मानव ही नहीं, शापभ्रष्ट देवता[1] हैं जो भूल से इस धरा पर जन्म लेने आ गये हैं।

चन्द्रगुप्त– यह आपका कोरा भ्रम है महानुभाव! जब मानव मन की समस्त दुर्बलताओं पर विजय पा लेता है तभी वह देवता कहलाने का अधिकारी होता है।

हम अभी उस पथ से कोसों दूर हैं, यदि हम लक्ष्य बिन्दु को समझ लें और उस दिशा की ओर अग्रसर हों तो वह सुन्दर समय भी आ सकता है जब हम अपने–पराये की संकुचित परिधि को तोड़ सर्वश्रेष्ठ मानव बन सकते हैं, संप्रति हम सब राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि दुर्भावनाओं से आक्रांत हैं।

शैलाक्ष– सचमुच यहाँ की संस्कृति अनोखी है, लगभग ऐसी ही बात मेरी पुत्री हेलन भी करती रहती है, पर मैं बालिका समझ उसकी बातें उपेक्षित करता रहता हूँ, उसे भारतीय संस्कृति एवं भारतवासियों से उत्कट प्रेम है, प्रकृति ने भूल कर दी है, उसे भारत में जन्म देना था।

चाणक्य– पर प्रकृति से भूल नहीं होती है, भूल मनुष्य ही करता है।

शैलाक्ष– आप उचित कह रहे हैं पर कभी–कभी वह भूल जाती है। जन्म दिया प्रकृति ने, भला मनुष्य क्या करे?

राक्षस– प्रकृति मनुष्यों को विचारने की ओर प्रेरित करती है। यदि समस्त कार्य प्रकृति ही कर दे तो मनुष्य के लिये करणीय शेष ही न रहे, वह निष्क्रिय हो जाये।

शैलाक्ष– (हर्ष से आँखें चमक उठती हैं) ओह! समझा प्रकृति की भूल हमें परिष्कृत करनी होगी। सम्राट! सेवा में एक निवेदन है, आशा ही

---

1. सज्जन व्यक्ति

नहीं मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप उसे स्वीकार कर अपनी अनुलंघनीय उदारता का परिचय देंगे।

चन्द्रगुप्त– उचित कार्य करना मानवीय गुण है महोदय! अपने हृदयोद्‌गार से हमें अवगत करायें।

शैलाक्ष– मैं भी चाहता हूँ सम्राट! कि यह संधि इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से अंकित हो चिरस्मरणीय रहे। मेरी कन्या हेलन जैसा कि मैंने प्रथम ही निवेदन किया कि वह पूर्णरूपेण भारतीय है, स्वभाव उसका मृदुल, करुणा पूरित है, आप उसे पत्नी रूप में अंगीकार करें, मैं कन्यादान के समय आर्यावर्त की सीमा के विजित प्रदेश अर्खेशिया, गदरोशिया, अरिया, परोपामिसदे, पामीर, कंबोज दहेज के रूप में दूँगा।

(चन्द्रगुप्त क्रमशः आचार्य चाणक्य व मन्त्रीश्वर राक्षस की ओर देखते हैं)

शैलाक्ष– आप सब आश्चर्य चकित कैसे हो गये? क्या मैं कुछ अनुचित कह गया हूँ?

चाणक्य– अनुचित नहीं, फिर भी यह असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

शैलाक्ष– कठिनाई तभी तक कठिनाई बनी रहती है जब तक उसे हल न किया जाये, आप इसे सरल भी बना सकते हैं आचार्यवर!

चाणक्य– सरल तभी हो सकता है जब तुम्हारी कन्या की अभिलाषा भी ज्ञात हो सके।

शैलाक्ष– यद्यपि इस विषय में मैंने उसकी अनुमति नहीं चाही है तथापि वह इस प्रस्ताव से प्रसन्न होगी, यहाँ के जन-जन, कण-कण से उसे परम स्नेह है।

चाणक्य– फिर भी तुम्हें उससे विचार–विमर्श कर लेना योग्य है।

शैलाक्ष– क्षमा करें आचार्य! मैं अपनी कन्या के स्वभाव से भली–भाँति परिचित हूँ। उसकी मदर उसे नन्हीं सी छोड़कर डबडबाई आँखों चल बसी थी, उस मातृवंचिता को मैंने मातृस्नेह का अभाव खटकने नहीं दिया। इसीलिये मैं सदैव उसे अपने साथ रख उसकी समस्त साधों की यथासंभव पूर्ति करता हूँ, बड़ी लाड़ली है मेरी प्यारी हेलन! मैं उसे यहीं बुलवाता हूँ, आप परीक्षा कर लें, खरा स्वर्ण कसौटी पर खरा ही उतरता है। (साथी से) परिप्लस! जाओ हेलन को अपने साथ ले आओ।

साथी– जी! (प्रस्थान)

शैलाक्ष– संधि में एक रहस्य है सम्राट! यदि कल शांति पुजारिन प्रिय हेलन ने श्वेत ध्वजा न फहराई होती तो हम सब एकसाथ मिलकर शांति से बैठे दिखलाई न पड़ते।

(सब आचर्श्य से ठगे से रह जाते हैं)

चन्द्रगुप्त– तो श्वेत ध्वजा हेलन ने फहराई है?

शैलाक्ष– हाँ सम्राट! यह उसी की तात्कालिक सूझ का परिणाम है कि अनेक सैनिकों के प्राण नष्ट होने से बच गये, वह मुझे सदैव युद्ध से विरत करती है पर कल उसका साहस देखकर मैं दंग रह गया हूँ, पहले मुझे उस पर बहुत क्रोध आया किन्तु परिस्थिति की गम्भीरता ने मुझे शांत कर दिया।

चाणक्य– तुम्हारी कन्या ने बहुत बड़े अनर्थ को रोक सीमा रेखा बना दी, सचमुच उसका साहस अद्वितीय है, ऐसी ही वीरांगनायें नारी समाज का नाम उज्ज्वल करती हैं।

शैलाक्ष– युद्ध रोकना वीरता कैसी? उस कार्य को श्रेष्ठ कह सकते हैं पर वीरता नहीं।

चाणक्य- **वीरता का माप शस्त्र नहीं, अपितु वह हृदय की सुन्दरता है, अनुपम साहस है।**

राक्षस- शस्त्र तो कायरता का द्योतक है अदम्य उत्साह आदि मानवीय गुणों की पूर्णता से वीरता आँकी जाती है, वीरता शस्त्रों पर आश्रित नहीं, स्वतन्त्र है।

शैलाक्ष- (सूक्ष्म विचारक की भाँति सिर हिला कर) अभी मुझे यहाँ से बहुत कुछ सीखना होगा।

(परिप्लस का हेलन के साथ प्रवेश)

वह भारतीय वेशभूषा में है, आते ही वह सबको मृदु स्वर में हाथ जोड़कर अभिवादन करती है और एक रिक्त आसंदी पर बैठ जाती है।

हेलन- (मुस्कराते हुये चंद्रगुप्त से) हमारे पूर्व अतिथि अब भारत सम्राट हो गये हैं, कृपया मेरी बधाई स्वीकार करें सम्राट! आज बहुत समय पश्चात् आप सबके दर्शन हुये हैं।

चन्द्रगुप्त- तुम्हारी शुभकामना के लिये धन्यवाद है हेलन! कहो कुशल तो हो?

हेलन- आपकी कृपा है सम्राट! हम जो आक्रांता बनकर आपके देश में आ गये हैं, उसके लिये क्षमा चाहती हूँ।

चाणक्य- अब तो युद्ध ही समाप्त हो गया, हम देख रहे हैं हेलन कि तुम वेशभूषा, भाषा सभी ओर से भारतीय रंग में रँग गई हो।

हेलन- (मुस्कराकर) और हृदय से भी आचार्यश्री!

चाणक्य- समझे, अन्तर-बाहर सब एक ही रंग है।

हेलन- दो रूप वाले व्यक्ति भयानक होते हैं आचार्य देव!

राक्षस– सच है कुमारी! गौमुखी व्याघ्र जितना भयंकर होता है, उतना सच्चा शेर नहीं।

चाणक्य– हम तुम्हारे अपूर्व साहस की प्रशंसा करते हैं हेलन! पर क्या तुमने युद्ध स्थल में अकारण ही श्वेत ध्वज दिखलाकर अपने पिता का अहित नहीं किया?

हेलन– अहित कैसा आचार्य देव!

चाणक्य– तीव्रगति से चलते हुये युद्ध को सहसा रोक देना क्या अपने ही पक्ष की असहायता का परिचायक नहीं है?

हेलन– (निःसंकोच हो) है किन्तु दूरदर्शिता से मानवता के हित में देखा जाये तो आगे होने वाली अधिकतम हानि से यह हानि नगण्य है। लाखों मानवों की हत्या को व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का विषय बना लेना कहाँ तक उचित है? क्या इससे भी भयंकर और कोई क्रूरता होगी? इतना होने पर भी मेरे आदरणीय पिदर के पक्ष में विजय आने के लिए प्रस्तुत नहीं थी, मैंने संधि वार्ता का वातावरण रचकर नारी के मातृत्व भाव की ही पुष्टि की है, यह व्यक्तिगत प्रश्न नहीं समष्टि का है आचार्य श्री! वात्सल्यमयी जगज्जननी नारी का दायित्व सर्वोपरि महान है, **अपने-पराये की संकुचित घृणित वृत्ति वात्सल्यता का कलंक है।**

शैलाक्ष– बस आचार्यश्री! इसमें यही अवगुण है, मुखरता इसके रोम-रोम में समाई है, तनिक छेड़ भर दो।

चाणक्य– हृदयोद्‌गार निकालने का वचन ही एकमात्र मार्ग है शैलाक्ष! (भद्रशाल की ओर संकेत कर) इन्हें पहिचानती हो हेलन!

हेलन– (किंचित् उदास हो) खूब अच्छी तरह। इन्होंने कल पिदर को चन्द क्षणों के लिये बंदी बना लिया था।

भद्रशाल– तब मेरे प्रति आपकी भावनायें अच्छी न होंगी?

हेलन– ऐसी बात नहीं है महासेनाध्यक्ष! उस समय आप अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर रहे थे। ममत्व से दुःख तो अवश्य हुआ परन्तु आपके प्रति दुर्भावनायें तब जन्म लेतीं जब आप हमारे देश पर आक्रमण करने आये होते, इसके विपरीत हम आपके अपराधी हैं, हमने आपके घर में बिना बुलाये आकर शांति भंग की है।

चन्द्रगुप्त– फिर भी बंदी बनाकर तुम्हारे पक्ष की अपेक्षा अपकार तो हुआ ही है।

हेलन– किन्हीं अंशों में यह सत्य है सम्राट! पर जिसके हृदय में विश्व मैत्री के द्वारा करुणा का उद्रेक हुआ हो उसे क्या अपकार का स्मरण कर्त्तव्य से विचलित कर सकेगा? (दृढ़तापूर्वक) सम्राट! दीपशिखा आँधी से बुझ सकती है पर कर्त्तव्य की लौ नक्षत्र सी सदैव चमकती रहती है। प्रत्येक अपने उपवन का माली है। हम उसमें चाहे जो बोयें, उगायें। मेरा मन विश्वप्रेम से ओत-प्रोत है, इसी कारण हृदय में निरन्तर शान्ति की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है।

राक्षस– ऐसे विचार जीवन में उतारने पर अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है राजकन्या!

हेलन– बाधायें कहाँ नहीं होतीं महामात्य! अच्छे-बुरे सभी कार्यों में बाधाओं के रोड़े अटकते हैं तब बुरे कार्यों से हाथ और मन दोनों मैले क्यों किये जायें? मन तो उज्ज्वल रहे। बाह्य बाधा बाह्य पदार्थों पर अवलंबित हैं पर आंतरिक बाधा के जन्मदाता तो स्वयं हम ही हैं। इसका निराकरण स्वयं हमें ही करना होगा, **बाधाओं से भीत हो कर्त्तव्य की उपेक्षा करना नितान्त अनुचित है।**

चाणक्य– तुम्हारी श्रद्धा शांति, अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित है?

हेलन– हाँ, आचार्य देव! हमारे सम्राट अलक्षेन्द्र की प्रार्थना पर यहीं से दिगम्बर साधु कोलोनस (कुछ याद सी करने की मुद्रा में) नहीं, नहीं साधु कल्याण जी हमारे देश गये थे, उन्होंने मुझे अहिंसा के विषय में बहुत बतलाया। वे कहते थे– हमारे भारत में 'अहिंसा परमो धर्मः' के महान प्रवर्तक महावीर स्वामी हुये हैं, उन्होंने सर्वत्र अहिंसा के द्वारा शांति फैलाई थी, उनके समक्ष शेर, बकरी एक घाट पर पानी पीते थे।

चन्द्रगुप्त– भगवान महावीर के चरित्र को जानती हो?

हेलन– भली भाँति सम्राट! उन्होंने ऊँच-नीच का जन्मगत भेद मिटाकर मानव की समानता का पोषण किया। नारी भी पुरुषों की तरह स्वतन्त्र है, वह भी आत्म-कल्याण के लिए धार्मिक क्षेत्र में निर्भय हो पदार्पण कर सकती है। प्रभु का सबसे महान सिद्धान्त यह है कि क्षुद्रातिक्षुद्र प्राणी भी हिंसा के योग्य नहीं, 'जियो और जीने दो' उनके समस्त उपदेशों का सार था। यथार्थतः उनका **धर्म प्राणियों की आंतरिक भावनाओं पर आधारित है। बाह्य क्रियायें भावना के अंक के बिना अनन्त शून्य की भाँति निस्सार हैं**। ये सोचती हूँ कि जिनकी इतनी भव्य सृजनशील मृदुल भावनायें थीं वे दिव्य पुरुष कैसे होंगे? (भाव विह्वल हो) उनकी कल्पना करते-करते मैं आत्मविस्मृत हो जाती हूँ।

चाणक्य– जैनदर्शन का रुचि पूर्वक अध्ययन किया है तुमने, तभी तुम्हारी भावनायें शांति की ओर विशेष रूप से झुक गई हैं।

हेलन– मैंने तो साधु से जैनधर्म की दीक्षा ले ली है। उन्होंने मुझे पुण्य यज्ञ, वृत्तलाभ, दृढ़-चर्या, उपयोगिता आदि अष्ट संस्कारों से संस्कृत किया था।

चन्द्रगुप्त- (प्रसन्नता व आश्चर्य पूर्वक) तुमने जैनधर्म स्वीकार कर लिया, यह तो अत्यन्त प्रसन्नता की बात है।

हेलन- साधु कल्याण जी के उपदेशों से अनेक नर-नारियों ने हिंसा करने का सर्वथा त्याग कर दिया। यहाँ तक कि मद्य, माँस, मधु तक को लोग छूते नहीं हैं। हिंसा के साथ ही झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि पापों का भी आंशिक रूप से त्याग कर गृहस्थाश्रम की सीमा बना ली है।

चाणक्य- (शान्त, गम्भीर हो) साधु जी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है जन जीवन पर! क्यों न हो जब साधक निश्छल भाव से आत्म-स्वरूप की साधना करता है तो जन-जीवन स्वयमेव आकृष्ट होता है।

हेलन- आचार्यश्री! सुख-शान्ति किस प्राणी को बुरा लगेगा? जहाँ तृप्ति मिलेगी वहीं आस्वादन हेतु वह दौड़ पड़ेगा।

चाणक्य- (विरक्ति के स्वर में) उचित कहती हो हेलन! सुख-शांति चाहिये तो निश्चित ही सांसारिक कार्यों से उन्मुख होना होगा। यहाँ केवल मृग मरीचिका ही है।

चन्द्रगुप्त- (चाणक्य की परिवर्तित भावना की अनुभूति कर) आचार्यवर! कृपया अपने विषय पर लौटें। समस्या का समाधान अनिवार्य है।

चाणक्य- (मंद हास्य पूर्वक) शंका न करो वत्स! अभी हमारे दीक्षित होने का सुयोग नहीं है।

राक्षस- (हेलन से) आचार्यश्री जानना चाहते हैं कि क्या आपको भारत में निवास करना प्रिय है?

हेलन- (विशेष प्रसन्न हो) अवश्य, अवश्य मंत्रीश्वर! इस स्वर्गपुरी में रहना भला किसे प्रियकर नहीं होगा? यहाँ का मनोरम वातावरण बड़ा ही

चित्ताकर्षक है। काश! मैं यहीं जन्म लेती...

शैलाक्ष- आचार्यवर! आशा है अब आप अवश्य आश्वस्त हुये होंगे?

चाणक्य- निःसंदेह शैलाक्ष! हम तुम्हारे प्रस्ताव से पूर्णतः सहमत हैं।

शैलाक्ष- मैं प्रसन्न हूँ आचार्यवर! इसी क्षण अपनी प्रिय हेलन को सदा के लिये सहर्ष सम्राट चन्द्रगुप्त को सौंपता हूँ। (दोनों का हाथ मिलाकर) सम्राट! इसे आप स्वीकार करें।

चन्द्रगुप्त- स्वीकार है महोदय!

शैलाक्ष- हेलन! आज से तुम सम्राट के सुख-दुःख में आजीवन जीवन-सहचरी रहोगी।

हेलन- (सलज्ज नतमस्तक हो) अपने दायित्व को निभा सकूँ, प्रभु मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें।

चाणक्य- शैलाक्ष! अब तुम हमारे समधी हो गये, चन्द्रगुप्त पर हमारा बालकवत् स्नेह रहा है।

शैलाक्ष- हर्ष से मेरा हृदय उछल रहा है आचार्यवर! ये दो राष्ट्रों का अपूर्व मिलन! (हर्षाश्रु छलक उठते हैं)

चाणक्य- यह स्नेह मिलन कल्पांतकाल तक अक्षुण्ण रहे, बस यही हार्दिक अभिलाषा है। (हेलन से) हेलन! आज से तुम आर्यावर्त की सागरांत पृथ्वी की महाराज्ञी के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। तुम विदुषी हो, अपने कर्त्तव्यों से भिज्ञ हो, आशा है तदनुकूल आचरण कर प्रजावत्सला बन सच्चे अर्थों में चन्द्रगुप्त की अर्द्धांगिनी बनो, यही मेरा शुभाशीर्वाद है। प्रकृति की भूल भी सुन्दर होती है शैलाक्ष! (सब मुस्कराते हैं)

(दम्पत्ति बारी-बारी से आचार्य चाणक्य व शैलाक्ष के चरण स्पर्श करते हैं। सभी जय-जयकार करते हैं)

पटाक्षेप

[दृश्य-सत्ताईसवाँ]

(सम्राट चन्द्रगुप्त की राजपरिषद लगी हुई है, महामात्य आचार्य चाणक्य, अमात्य राक्षस, सेनाध्यक्ष भद्रशाल, जयदेव आदि अन्य परिषदगण यथास्थान पीठिकाओं पर विराजमान हैं। उद्घोषक अपनी अभ्यस्त वाणी में तीव्र स्वर से सम्राट के आगमन की पूर्व सूचना देता है)

उद्घोषक- राज राजेश्वर अतुल बलशाली मौर्य तिलक सम्राट चन्द्रगुप्त पधार रहे हैं। (दोहराता है)

(सम्राट के सम्मान में समस्त जन आसन छोड़ खड़े हो उनके आगमन की प्रतीक्षा करते हैं, इतने में सम्राट आते हैं, सबके अभिवादन में वे अपने दोनों हाथ जोड़ कर विनम्र हो मस्तक झुका प्रत्युत्तर देते हैं, वे आचार्यश्री के झुककर चरण स्पर्श करते हैं। आचार्य आशीर्वाद देते हैं, चन्द्रगुप्त मध्य में रखे हुये सिंहासन पर और सब अपने स्थान पर बैठ जाते हैं)

चन्द्रगुप्त- अमात्य आर्य राक्षस! कल से पर्व प्रारंभ हो रहे हैं, अतः घोषणा करवा दें कि राज्य में सब प्रकार की हिंसा प्रतिबंधित है एवं कल से एक पक्ष तक अहोरात्रि दानशालायें खुली रहेंगी। कारागार से साधारण अपराधियों को तथा जिनके आचरण प्रशंसनीय हों ऐसे अन्य विशेष अपराधियों को बंधन मुक्त कर दिया जाये।

राक्षस- आज्ञा प्रसारित हो जायेगी श्रीमान्!

(इसी समय एक व्यक्ति का कुपित मुद्रा में प्रवेश)

आगन्तुक- (क्रोधावेश में) सम्राट न्याय चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त- (शांत किन्तु गंभीर स्वर में) न्याय ही मिलेगा भद्र! कहो, क्या बात है?

आगन्तुक- (रोष में) मैं अपना प्रतिवेदन करने के पूर्व आप से वचन चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त– कहो! तुम्हारी क्या अभिलाषा है?

भद्रशाल– उद्दंड मानव! राजसभा में आने के पूर्व तुम्हें सुजनों के साथ व्यवहार करने के लिए प्रशिक्षित होना चाहिये था।

आगन्तुक– जिसके हृदय में दुःख का अथाह सागर उमड़ रहा हो, जो क्रूर अत्याचार की व्यथा से व्यथित हो, अनाचार की बड़वानल सी तीव्र दाहक ज्वाला जल रही हो, क्या उस झुलसे पीड़ित मानव से भी सज्जन सद्व्यवहार की आशा रख सकते हैं?

चन्द्रगुप्त– कौन ऐसा दुस्साहसी व्यक्ति है जिसने अनैतिकता कर तुम्हारे मर्मस्थल को आघात पहुँचाया है, शांत हो अपनी बात कहो।

आगन्तुक– ओह! शांत कैसे हो सकता हूँ श्रीमान्! मैं परदेशी आपकी नगरी का नाम सुनकर दूर से आया था, आपके सुव्यवस्थित राज्य में निवास करने, किन्तु दूर के ढोल सुहावने होते हैं...।

भद्रशाल– उन्मत्त मत बनो युवक! राज्य को लांछित करना उचित नहीं, जिह्वा पर संयम रखो वरन्...

चन्द्रगुप्त– (बीच ही में) सेनाध्यक्ष! तुम भूल रहे हो यह युद्ध क्षेत्र नहीं बल्कि विचार विमर्श करने का, न्यायोचित निर्णय लेने का पवित्र सदन है।

भद्रशाल– (किंचित् लज्जित हो) क्षमा करें सम्राट! मैंने तो जीवन में 'शठं प्रति शाठ्यम्' की केवल एक ही कला सीखी है।

चन्द्रगुप्त– पर यह प्रपीड़ित दुःख के आवेग से क्षुभित व्यक्ति है अतएव करुणा का पात्र है। (आगन्तुक की ओर उन्मुख हो) कहो! निःसंकोच हो अपनी व्यथा कहो।

आगन्तुक– (किंचित् शांत हो) आपके शीतल वचनों से मेरा संताप किंचित् न्यून हुआ है, मुझे विश्वास हो चला है कि आप अवश्य न्याय करेंगे, पर...

राक्षस– यह पर कैसा? तुम अपनी बात शीघ्र कहो, बार-बार कृत्रिमता शोभा नहीं देती।

आगन्तुक– (पुनः रोष पूर्वक) कृत्रिमता कैसी? मंत्रीश्वर! मैं पुनः कहता हूँ कि अत्यन्त न्यायी सम्राट का न्याय अपराधी को देख कर लड़खड़ा जायेगा, हो सकता है कि मुझे निराश ही लौट जाना पड़े।

चन्द्रगुप्त– असंभव है भद्र! यह अविश्वास की सीमा रेखा कैसे बन गई?

आगन्तुक– क्योंकि अपराधी सम्राट का प्रिय पात्र है।

चन्द्रगुप्त– प्रियपात्र से तुम्हारा क्या आशय है? कुछ भी हो भद्र! हम तुम्हें विश्वास दिलाते हैं कि कैसा भी प्रिय क्यों न हो, बराबर न्याय होगा। हम तुम्हें अभय प्रदान करते हैं, अब तुम कह सकते हो।

आगन्तुक– महाराज! मुझे लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि मेरी सहोदरा भगिनी को एकांत में असहाय पा एक व्यक्ति ने उसके बहुत मना करने पर भी हठ पूर्वक रात्रि व्यतीत की है।

चन्द्रगुप्त– किस उद्देश्य से उसने रात्रि व्यतीत की?

आगन्तुक– महानुभाव! ऐसे बेतुके प्रश्न की मैंने कल्पना भी नहीं

की थी।

चन्द्रगुप्त– जब तक पूर्ण रूप से तथ्य प्रकाश में नहीं आता तब तक उस पर निर्णय देना अनुचित है परदेशी, साथ ही अस्वाभाविक भी है।

आगन्तुक– यह तो समझने की बात है राजन्! भला मैं क्या बतलाऊँ?

चन्द्रगुप्त– अच्छा, अपराधी के ही विषय में बतलाओ? उसका ही पता लगाया जाये।

आगन्तुक– पता लगाने का कष्ट न होगा महाराज! अपराधी निकट ही है।

चाणक्य– तब फिर बतलाने में इतना विलम्ब क्यों? अपराधी का यथाशीघ्र परिचय देकर सम्राट की उत्सुकता शांत करो।

चन्द्रगुप्त– यही उचित होगा भद्र! तब हमें यथार्थ निर्णय करने में सरलता होगी?

आगन्तुक– एक बार मैं पुनः आपसे वचन चाहता हूँ कि अपराधी को देखकर स्खलित न हो जायें।

चन्द्रगुप्त– हम प्रतिबद्ध हैं आगन्तुक! राजा प्रजा का स्वामी नहीं, सेवक है। प्रजा उसकी संतान है। स्वाभाविक है कि वह संतान का प्रेम पूर्वक संरक्षण करे।

राक्षस– विदेशी युवक! आर्य परंपरा में नरेश अपनी प्रजा के लिये ही जीता और मरता है, प्रजा का न्याय पूर्वक पालन उस शुभेच्छु की एकमात्र सर्वोपरि अभिलाषा रहती है, उसके हृदय में कर्त्तव्य की लौ निरंतर प्रज्ज्वलित बनी रहती है।

चाणक्य– (गम्भीर गर्जना करते हुये) उसमें भी ध्रुव नक्षत्र ही अडिग और जाज्वल्यमान है कि उसकी समता में विशाल आकाश के असंख्य नक्षत्र भी तुच्छ प्रतिभासित होते हैं। तुम तत्क्षण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख सकते हो, ममता की आँधी से दीप बुझते हैं परन्तु...

आगन्तुक– दुःख है सम्राट! जब रक्षक ही भक्षण करने लगें। नैतिकता के पुजारी ही अनैतिक अपराध करें तब आश्चर्य भी सीमा पार कर जाता है।

राक्षस– (ऊब कर) उफ्! अब और अधिक प्रहेलिकायें न बुझाओ परदेशी! अविलंब अपनी बात समाप्त करो, निश्चय ही तुम्हें प्रथम बार ऐसी अनुभूति हो रही है जहाँ निवेदक बिना कोई रुकावट के सरलता से महान् ऐश्वर्यवान सम्राट से आकर निवेदन कर सकता है।

आगन्तुक– यही सत्य तो मेरी वाणी को निकलने से रोक रहा है महानुभाव! वचन प्रयत्न करने पर भी निःसृत नहीं हो पा रहे। मैं जानता हूँ कि सम्राट के मानस को आघात अवश्य लगेगा और उसका भागी मैं हूँ, अस्तु हृदय वाणी को प्रस्तुत नहीं कर पा रहा।

चन्द्रगुप्त– (गुरु गम्भीर स्वर में) भावुकता और राजधर्म साथ-साथ नहीं चला करते युवक! प्रजा को उसके भाग्य पर या निरंकुश कर्मचारियों के हाथों सौंप उसके जीवन से हम नृशंस खिलवाड़ नहीं कर सकते।

आगन्तुक– साधारण जन की पहुँच ने ही आपको महान बना दिया है सम्राट! इसीलिए आप समस्त जनों के श्रद्धा के पात्र बन गये हैं।... (चारों ओर दृष्टि घुमाकर) सकल परिषद देखे कि आप सबके आदरणीय आचार्य चाणक्य ही अपराधी हैं।

(समस्त सभा स्तम्भित हो परस्पर एक-दूसरे का मुख निहारने लगते

हैं। चाणक्य नतमस्तक मौन हैं। कुछ अस्फुट स्वरों से सुनाई पड़ता है– आचार्य!... यह कैसे हो सकता है?... नहीं, नहीं यह मिथ्या है... असंभव है असंभव... लो ऐसे विवेकियों की जब यह दशा है तो साधारण-जन का क्या कहना?... कह नहीं सकते कब किसकी बुद्धि नष्ट हो जाये?...)

चन्द्रगुप्त– विचार पूर्वक उत्तर दो आगन्तुक! क्या तुम सत्य कह रहे हो? यह भी समझ लो कि मिथ्या आरोप लगाने वाला भी कठोर दंड से दंडित होगा?

आगन्तुक– (व्यंग्यात्मक मुस्कान पूर्वक) भले प्रकार समझ रहा हूँ श्रीमान्! मुझे जो कहना था वो कह चुका, अब आगे कुछ नहीं कहना है, निर्णय आपके हाथ है।

(चन्द्रगुप्त आचार्य चाणक्य की ओर देखते हैं, उस समय वे अपना आसन त्याग आगंतुक के समीप नतमस्तक मौन खड़े हो जाते हैं)

चन्द्रगुप्त– आचार्यश्री! क्या यह सत्य है?

चाणक्य– सत्य है सम्राट!

चन्द्रगुप्त– अर्थात् इस दोषारोपण को आप स्वीकार कर रहे हैं?

चाणक्य– हाँ सम्राट! मैं आपके समक्ष अपराधी के परिवेश में उपस्थित हूँ, कृपया अविलम्ब न्याय करें।

चन्द्रगुप्त– मुझे आपसे ऐसी आशा कदापि नहीं थी आचार्यश्री!

चाणक्य– किन्तु भूल मानव से ही होती आई है सम्राट! उस भूल को भूल न मानना इससे अधिक अमानवीयता और क्या हो सकती है?

चन्द्रगुप्त– फिर भी मैं आपसे पूछ सकता हूँ कि आप जैसे विचक्षण पुरुष इतना अनुचित कार्य क्यों कर सकें?

चाणक्य– बुद्धि विवेक को पीछे छोड़ जब आगे बढ़ जाती है तब ऐसे कार्य हो जाते हैं, बुद्धि विश्वसनीय जो नहीं है।

चन्द्रगुप्त– आँखों को तो विश्वास आ गया पर हृदय को अभी भी नहीं आता।

चाणक्य– अपराधों के प्रयोग तो होते रहते हैं सम्राट! पर उन्हें अपराध की संज्ञा तब दी जाती है जब उनका मुख स्पष्ट हो जाता है।

चंद्रगुप्त– क्या आपने यह विचार नहीं किया कि आप जैसे महान मानव की एक बार की भूल साधारण जन को अपराध करने के लिए प्रोत्साहित करेगी?

चाणक्य– मानता हूँ सम्राट! किन्तु भूल हो चुकी है, आप चाहें तो दंड देकर उसका परिमार्जन कर सकते हैं।

चन्द्रगुप्त– चाहें क्यों? राजधर्म अपराधी को दंडित अवश्य करेगा किन्तु दंड निर्धारण के पूर्व हम अपराधी से आद्योपांत विवरण जानना चाहते हैं।

चाणक्य– आपको जो ज्ञात हो चुका है वही पर्याप्त है सम्राट! अंधे को अपने मुख से अंधा कहने को बाध्य न करें।

चन्द्रगुप्त– यदि अपराधी को अपने कृत्य से ग्लानि हुई है तो उस पर पुनर्विचार भी किया जा सकेगा।

चाणक्य– क्षमा करें सम्राट!

(चन्द्रगुप्त विचारणीय मुद्रा में)

आगन्तुक– सम्राट! यदि दंडित करने में दुविधा हो तो मैं लौट जाऊँ? मैं आपका हृदय नहीं दुखाना चाहता।

चन्द्रगुप्त– (तुरन्त शीघ्रता से) दुविधा दण्डित करने में नहीं है विदेशी! वस्तुतः विचारणीय प्रश्न यह है कि अपराध का प्रत्यक्ष वर्णन हमारे सन्मुख नहीं है। पद या प्रतिष्ठा अपराधी का साथ नहीं दे सकती।... तुम अपनी भगिनी को घटना से अवगत कराने के लिये यहाँ ले आओ।

आगन्तुक– यह तो सर्वथा असंभव है सम्राट! और लज्जाजनक भी। मुझे न्याय नहीं चाहिये, मैं जा रहा हूँ। (जाने के लिये उद्यत होता है)

चन्द्रगुप्त– (कठोर आदेशात्मक स्वर में) रुको युवक!

आगन्तुक– (रुककर) अपराधी का अपराध की स्वीकारोक्ति के पश्चात् अवशेष ही क्या रह जाता है? इससे अधिक और कौन सा प्रमाण चाहते हैं आप?

चन्द्रगुप्त– (चारों ओर दृष्टि घुमाकर) प्रिय मित्रों! हमारे सम्मुख अति विषमता है। अपराधी हमारे आचार्यश्री हैं जो चंद क्षणों पूर्व राज्य के कीर्तिस्तम्भ थे परन्तु अब वे गहन अनैतिक दोष से दोषी हैं जो हम सबके लिये घोर कलंक है राजधर्म ऐसे दोषी को क्षमा प्रदान नहीं कर सकता। न्याय संगत तो यह था कि घटना की भली प्रकार छानबीन की जाती किन्तु वादी प्रतिवादी दोनों ही अपराध से सहमत हैं, अतएव छानबीन का कार्यक्रम स्थगित किया जाता है एवं संविधान के अनुसार अपराध व अपराधी की गुरु गंभीरता दृष्टिगत रखते हुये अपराधी को तत्काल राज्य निष्कासन का दण्ड दिया जाता है।

राक्षस– (उद्विग्न हो) सम्राट! विचार कर न्याय करें।

चन्द्रगुप्त– महामात्य! हम विवश हैं, राजधर्म कठोर होता है, इसमें केवल न्याय को ही स्थान है न्याय का गला नहीं घोंटा जा सकता। चंद्रगुप्त के हृदय में आदरणीय आचार्यश्री के प्रति अभी भी पूर्ववत् सम्माननीय स्थान है

और भविष्य में रहेगा। पर न्याय और धर्म पर अनेकों चंद्रगुप्त बलि होते ही रहेंगे।

चाणक्य- धन्य है सम्राट! न्याय वही जो निष्पक्ष होकर किया जाये, विचलित होने से राज धर्म में लांछन लगता है, हमें विश्वास है कि तुम न्याय पूर्वक अपनी प्रजा का पालन कर न्याय की पवित्रता बनाये रखोगे। सुखी रहो वत्स! अब हम जा रहे हैं।

चन्द्रगुप्त- (हृदय के आवेग को बलात् दबाते हुये सिंहासन से उठकर) आचार्यश्री! आपके उपदेश सदैव मेरा मार्गदर्शन करते रहेंगे एवं आपकी मुखाकृति की स्मृति मुझमें न्याय और दृढ़ता का निरंतर संचार करेगी। (निकट आकर चरण छूते हैं)

चाणक्य- सुखी रहो वत्स! सागरांत पृथ्वी तक तुम्हारा राज्य धन-धान्य से भरपूर रहे। समस्त प्रजा को हमारा आशीर्वाद है।

चंद्रगुप्त- कैसा आश्चर्य है जिन्होंने मुझे न्याय का पाठ पढ़ाया उन्हीं पर न्याय का दण्ड वज्र हो कर गिरा।

चाणक्य- (प्रसन्नता से) यही प्रसन्नता का कारण है। वत्स! मार्ग दो, सम्राट की आज्ञा का अविलंब पालन होने दो।

(चंद्रगुप्त मंदगति से शनैः-शनैः एक ओर हो जाते हैं, चाणक्य जाते हैं, चन्द्रगुप्त पुनः सिंहासन पर बैठते हैं, सभा भी यथावत् बैठ जाती है)

आगन्तुक- (प्रसन्न हो) भारतेश्वर की जैसी महिमा सुनी थी यथावत् पाया भी। न्याय के समक्ष अपराधी की समानता ने कीर्ति में चार चाँद लगा दिये हैं, अब जो रहस्य मन में छुपाये हुये हूँ उसको प्रकट कर देना चाहता हूँ।

(सबकी आँखें उत्सुकतावश उसकी ओर लग जाती हैं)

चन्द्रगुप्त– क्या रहस्य है विदेशी?

आगन्तुक– यह कि यह अपराध भी आचार्य चाणक्य की कूटनीति का एक अंश है।

चन्द्रगुप्त– इसका तात्पर्य?

आगन्तुक– सम्राट के न्याय की परीक्षा एवं आचार्य चाणक्य की राजकार्य से मुक्ति। वे सन्यस्त हो रहे हैं।

चन्द्रगुप्त– तब यह सब मिथ्या था?

आगन्तुक– सर्वथा मिथ्या था सम्राट! न मेरी कोई भगिनी है, न कोई अपराध हुआ है।

चंद्रगुप्त– अर्थात् आचार्यश्री ने हमें भ्रम में डाल ममता का पाश काट निकल गये, हम उन्हें रोकेंगे।

राक्षस– आप ही नहीं सम्राट! हम सब मिलकर उनका मार्ग अवरुद्ध कर लेंगे।

(सभाजन विस्मित हो एक–दूसरे से आचार्य की प्रशंसा कर रहे हैं, बोल अस्फुट हैं, अशांति सी छा जाती है, पुनः आगन्तुक की बात सुनने के लिये व्यग्र, पर शांत हो जाते हैं)

आगन्तुक– रुकें सम्राट! उन्हें रोकना व्यर्थ होगा, मैं यूनान से आपकी परिषद में राजदूत बना कर भेजा गया, मेरी सर्वप्रथम भेंट आचार्यश्री से हुई, आपका विशेष समय नष्ट न कर मैं संक्षेप में आपको बतला दूँ कि आचार्यवर राज्यकार्य से विरक्त हो चुके थे, वे अपना अन्तिम समय निश्चिन्त हो आत्म–कल्याण में लगाना चाहते थे, परन्तु आपकी श्रद्धा, प्रजा की ममता उन्हें बार–बार रोक लेती थी। अस्तु, आप सबकी भावनाओं पर उन्होंने अपने नाम पर अनैतिकता का आरोप लगा कठोर कशाघात[1] कर वे सहज ही यहाँ

---

1. चाबुक की मार

से मुक्त होने में सफल हो गये।

चन्द्रगुप्त– यह सत्य है कि वे सांसारिक कार्यों से विरक्त थे किन्तु हम सबके आग्रह से वे कीचड़ से निकल नहीं पाते थे, अभिलाषा तो उन्होंने कई बार प्रकट की थी, अपूर्व थी उनकी प्रवृत्ति।

राक्षस– प्रवृत्ति और निवृत्ति का अब अपूर्व समन्वय हो गया, विशाल राज्य के महामात्य होकर भी वे इसमें रत नहीं हुये। पंक में पंकज की भाँति निर्लिप्त रहे।

चंद्रगुप्त– यही कारण है कि उन्हें विरक्त होने का अभ्यास नहीं करना पड़ा। मानवता की महत्ता नश्वर के पीछे भटकने की नहीं अपितु निर्विकल्प साधना की है, जो यहाँ असाध्य थी।

आगन्तुक– उन्होंने मुझसे वचन ले लिया था यह सब गुप्त रखने को, उनकी उद्देश्य पूर्ति तक मैंने पूर्ण रूप से अभिनय किया तत्पश्चात् स्वाभाविक रूप में प्रकट होने के लिये मेरा मन बाध्य हो उठा। आप सबसे मैं क्षमा चाहता हूँ। मेरा नाम मेगास्थनीज है, यह है मेरा परिचय पत्र। (परिचय पत्र दिखाते हैं, अमात्य राक्षस पत्र लेकर देखते हैं)

राक्षस– स्वागत है यूनानी दूत!

आगन्तुक– धन्यवाद महामात्य!

चंद्रगुप्त– (दुखित हो) राजदूत! संप्रति हम आचार्यश्री के वियोग से व्याकुल हैं, विषाद ने हमें आ घेरा है, क्या कहें? अनोखी सूझ थी आचार्यश्री की। गगन के उन्मुक्त पक्षी को पिंजरे में कब तक बंद किया जा सकता है? समय पाकर वह उड़ गया, अद्भुत थी उनकी विरक्ति। समस्त जन चलें, रोकना तो असंभव है, उनका आशीर्वाद ही ले लें।

पटाक्षेप

[दृश्य-अट्ठाईसवाँ]

(सम्राट चन्द्रगुप्त शयनकक्ष में सो रहे हैं। कक्ष में दीपक का मंद-मंद प्रकाश फैल रहा है। उन्हें भयानक स्वप्न दिखायी देते हैं, वे चौंककर जाग उठते हैं। नेपथ्य में मधुर वाद्य बज रहे हैं, चारणजन प्रभाती गा रहे हैं, सम्राट लेटे ही लेटे संगीत का आनन्द ले रहे हैं, मुख पर कभी-कभी चिन्ता की रेखायें भी स्पष्ट हो रही हैं)

गीत

जागिये प्रभात काल, बीत गई रात रे।
तारक दल भाग गये, हो गया प्रभात रे॥
पक्षी गया नीड़ छोड़।
चले नेह डोर तोड़॥
देख मुक्त गगन उड़े, पुलक-पुलक गात रे।
जागिये प्रभात काल, बीत गई रात रे॥
ज्ञान भानु उदित भयो,
आतम मन मुदित भयो।
परम शांति तृप्ति मिली, मोहतम नशात रे।
जागिये प्रभात काल, बीत गई रात रे॥
राग-द्वेष दंभ त्याग।
वीतराग भक्ति लाग।
तोड़ दे विभाव परिधि, सहजानंद पात रे।
जागिये प्रभात काल, बीत गई रात रे॥

(शनैः शनैः संगीत ध्वनि मंद होती हुई समाप्त हो जाती है।)

चन्द्रगुप्त- (लेटे ही लेटे) उफ्! कितने भयानक स्वप्न थे। लगता है जैसे महा अनिष्ट होने वाला है।... (गुनगुनाते हैं) राग-द्वेष, दंभ त्याग, वीतराग भक्ति लाग, तोड़ दे विभाव परिधि, सहजानन्द पात रे। जागिये प्रभात

काल बीत गई रात रे ...(प्रसन्न हो) अहा! सचमुच आज रात बीत गई और जीवन का सुन्दर प्रभात हुआ है, अनादिकाल की गहरी निद्रा सहसा आज खुल गई है पर ये दुःस्वप्न... (विचारणीय मुद्रा में)

(साम्राज्ञी हेलन का प्रवेश)

हेलन- आर्यपुत्र! आज शय्या नहीं त्यागी, क्या अस्वस्थता जान पड़ रही है?

चन्द्रगुप्त- (अधलेटे ही हेलन को पर्यंक पर बैठने का स्थान दे देते हैं) हाँ शुभे! तन नहीं, मन अस्वस्थ जान पड़ रहा है।

हेलन- मन अस्वस्थ है? रात्रि में तो पूर्णतः आप प्रसन्न थे, अनायास क्या हो गया है?

चन्द्रगुप्त- बस ऐसा लग रहा है जैसे कुछ अनिष्ट होने वाला है।

हेलन- प्रभातकाल में कैसी अशुभ वाणी कह रहे हैं? बाल-रवि की वृद्धिंगत प्रखरता की भाँति आपका शुभोदय हो, आपने मन कभी ऐसा छोटा नहीं किया, शीघ्र ही इतना परिवर्तन कैसे?

चन्द्रगुप्त- कारण है प्रिये! आज मैंने अति विचित्र असुहावने सोलह स्वप्न देखे हैं।

हेलन- (उपेक्षा से) उह! स्वप्न का क्या? वे तो आते ही रहते हैं। स्वप्न स्वप्न हैं, उन्हें सत्य मानना उचित नहीं, केवल भ्रम है।

चन्द्रगुप्त- नहीं हेलन! ऐसी बात नहीं है, स्वप्न मानव की भावनाओं का प्रतिबिंब है, विशेष स्वप्न भविष्य के इष्ट-अनिष्ट की सूचना भी देते हैं।

हेलन- आपकी बात मान भी लें तो विशेष स्वप्न के लक्षण ही क्या हैं?

चन्द्रगुप्त- जो व्यक्ति तन-मन से स्वस्थ होता है उसे स्वप्न आते ही

नहीं हैं और आते हैं तो मन एवं समय पर अपना अमिट प्रभाव भी छोड़ जाते हैं।

हेलन– (साश्चर्य) क्या स्वप्न सत्य होते हैं?

चन्द्रगुप्त– अवश्य, पर वही स्वप्न जो निरोगी व्यक्ति को दिखते हैं। समाधान सरल है। मन के प्रतिबिंब पर रेखायें अंकित हो जाती हैं। मन पटल पर जितनी स्वच्छता होगी; उतनी ही सरलता से वे रेखायें उभरी हुई दिखेंगी वरना धुंधली होकर पुछ जायेंगी।

हेलन– भला मैं भी सुनूँ आपके वे दुःस्वप्न!

चंद्रगुप्त– अवश्य सुन सकती हो। प्रथम स्वप्न है– सूर्यास्त का देखना। समस्त जगती पर घोर अंधकार छा गया है। हाथ को हाथ नहीं सूझता, जानती हो इसका अर्थ क्या है? अब सद्ज्ञान रूपी भानु अस्त हो जायेगा।

हेलन– तो क्या ज्ञानी पुरुष होंगे ही नहीं?

चन्द्रगुप्त– कल्याणकारी ज्ञान की न्यूनता होगी, मानव समाज अधिकांशतः बहिर्मुखी प्रवृत्ति में लीन रहेगा, जो ज्ञानी होंगे वे भी अल्पज्ञान वाले होंगे।

हेलन– अर्थात् समय बुरा आ रहा है।

चंद्रगुप्त– समय क्या करे ? मनुष्य ही हीन वृत्ति वाला होता जा रहा है। द्वितीय स्वप्न है– चंद्रमंडल ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों उसमें अनंतानंत छिद्र हों।

हेलन– इससे आपने क्या अनुमान लगाया?

चंद्रगुप्त– यही कि वस्तु के यथावत् स्वभाव के जानने वालों की न्यूनता एवं उन्हीं में विभिन्न मतों का प्रादुर्भाव होगा। सत्य धर्म को भी उसके अनुयायी अपने अविवेक से दूषित करेंगे। सच्चाई सच्चाई न रह जायेगी...।

फिर देखा– अपवित्र स्थान में सुन्दर कमल खिल रहा है।

हेलन– तो इसमें क्या विशेषता है? कमल तो कर्दम में ही उत्पन्न होता है आर्य!

चंद्रगुप्त– कमल सरोवर में ही खिलते हैं शुभे! यत्र–तत्र पड़े कर्दम में नहीं, इससे ज्ञात होता है कि जिन्हें हम निम्न कुल कहते हैं, उन्हीं में आध्यात्मिकता का कमल विकसित होगा, वे ही अंतर्मुखी प्रवृत्ति वाले होंगे।

हेलन– और उच्चवर्ग के विचार कैसे होंगे?

चंद्रगुप्त– ये स्वप्न परस्पर गूँथे हुये हैं। अगले स्वप्नों से सब स्पष्ट समझ सकोगी। स्वर्ण पात्र में श्वान आनन्द से खीर खा रहा है। सजे हुये गजराज पर मर्कट आरोहण किये हुये है। अनुलंघनीय सागर भी अपनी मर्यादा त्याग अमर्यादित हो गया है।

हेलन–ओह! ये स्वप्न बुरे लग रहे, सचमुच प्रकृति का यह क्रूर उपहास है सम्राट!

चन्द्रगुप्त– और सुनो! छोटे–छोटे बालक विशाल रथ को खींच रहे हैं। ऊँट पर बैठा हुआ राजपुत्र धूल धूसरित हो रहा है।

हेलन– इन सबका क्या अर्थ हुआ आर्य!

चंद्रगुप्त– सब अमंगल की सूचना दे रहे हैं। श्वान के खीर खाने से स्पष्ट है कि हीन वृत्ति के मानव संपत्तिवान होंगे और उन्हें मानवों से अधिक श्वान प्रिय होंगे। सदाचारी व्यक्तियों का जीवन कष्टमय व्यतीत होगा।

हेलन– तो क्या सदाचारी होना अनुचित है।

चन्द्रगुप्त– नहीं प्रिये! सदाचारी होना कभी भी अनुचित नहीं हो सकता। कष्ट तो परीक्षा है, कष्टों से घबराकर कहीं सज्जन अपना स्वभाव नहीं छोड़ बैठते।

हेलन– सत्य है, स्वर्ण तब तक स्वर्ण की संज्ञा नहीं पाता जब तक वह घर्षण–कर्षण आदि संकटों से बाहर नहीं निकल आता। मर्कट का गजारोहण और अमर्यादित सागर क्या दर्शाता है?

चन्द्रगुप्त– यही कि हीनवृत्ति के मानव राज्य सम्पदा का मनमाने ढंग से उपभोग करेंगे। हस्तगत सत्ता का दुरुपयोग होगा, वे कर्त्तव्य–विमुख हो न्याय–अन्याय का विवेक न कर स्वच्छंद प्रवृत्ति के होंगे, क्षीर–नीर वृत्ति से दूर मर्यादाओं का अतिक्रमण कर जन–साधारण का विश्वास खो घृणा के पात्र हो बैठेंगे।

हेलन– इससे प्रजा का जीवन भी कष्टमय हो जायेगा राजन्!

चंद्रगुप्त– हाँ, सत्ताधारियों के अन्याय–अत्याचारों की चपेट में प्रजा जन निरंतर पिसते रहेंगे। अधिकारियों में उत्कोच[1] की भावना बलवती होगी, कोई भी क्षेत्र अछूता न रह सकेगा।

हेलन– सभी क्षेत्र कैसे दूषित बतला दिये आपने?

चंद्रगुप्त– हाँ हेलन! यथार्थ यही है। नरेश समस्त प्रजा का प्रतिनिधित्व करता है, प्रजा के सुख–दुःख का वह उत्तरदायी है। यह तो जानती ही हो कि निर्मल व मलिन जल वाली सभी सरितायें सागर के अगाध जल में विलीन हो जाती हैं, अब कल्पना करो, काश! सागर समस्त नदियों को उदरस्थ कर अमर्यादित होने लगे तो क्या होगा?

हेलन– यही कि जल राशि अमर्यादित हो समस्त थल भाग को आप्लावित कर प्राणियों का जीवन भी नष्ट कर देगी।

चंद्रगुप्त– तब स्वयं सिद्ध हो गया कि राजागण अन्यायमार्गी हो अमर्यादित हो जायेंगे।

---

1. रिश्वत

हेलन– एक शंका और है स्वामिन्! मान लें कि यदि व्यक्ति विशेष का राज्य न रह प्रजातन्त्र हो गया जैसा कि अभी चंद शताब्दियों पूर्व गणतन्त्र राज्य थे तब आपकी यह बात असत्य हो जायेगी।

चंद्रगुप्त– कहाँ हेलन! गणतंत्र होगा तो भी प्रतिनिधित्व व्यक्ति विशेष ही करेंगे, उन्हीं सत्ताधारियों में प्रजा के भाग्य की बागडोर रहेगी। वे ही मनचाहे ढंग से प्रजा को व्यथित करेंगे।

हेलन– (दुःख व आश्चर्य से) तो क्या पृथ्वी पर सज्जनों का अभाव हो जायेगा?

चंद्रगुप्त– ऐसा कभी नहीं होगा शुभे! पृथ्वी कभी अच्छाइयों से शून्य नहीं हुई, यह अवश्य है कि श्रेष्ठ व्यक्ति बिरले ही होंगे, तभी न एक स्वप्न ऐसा भी आया है कि सरोवर का मध्य भाग सूख कर थोड़े से स्थान में जल रह गया है, इससे सूचित होता है कि अन्यायीजनों द्वारा अच्छाइयाँ शुष्क होकर सज्जनों की सज्जनता भी दुष्प्राप्य मणि की भाँति प्राप्त होती रहेगी।

हेलन– विशाल रथ का बालकों द्वारा खींचा जाना क्या बतलाता है?

चंद्रगुप्त– स्पष्ट है शुभे! संयम रूपी विशाल रथ के वाहक अधिकांशतः बालबुद्धि ही होंगे, वृद्धगण संयम से विमुख हो जायेंगे।

हेलन– वृद्ध तो निर्बल हो जाते हैं, संयमित जीवन व्यतीत करना असंभव है?

चंद्रगुप्त– नहीं प्रिये! ऐसा नहीं है, यद्यपि वृद्धावस्था में शक्ति का ह्रास होता है तथापि उनकी श्रद्धा संयम से उठ नहीं जाती। न ही वे जीवन भर के आत्मानुशासन को बल के अभाव में समाप्त कर देते हैं। अपितु तन के व्यामोह में न फँस संयम की सुरक्षा में सतत् सावधान रहते हैं। पर अब ऐसा नहीं होगा।

हेलन– कितने विचित्र स्वप्न हैं आर्य! मुझे जाने कैसा लग रहा है?

और हाँ अभी आपने क्या कहा था? राजपुत्र ऊँट पर आरोहण कर धूल धूसरित हो गया?

चंद्रगुप्त– हाँ ऐसा ही है। सत्ताधारी व्यक्ति अहिंसा का पवित्र मार्ग त्याग हिंसक कार्यों से राज्य की श्रीवृद्धि करने में प्रयत्नशील रहेंगे। नृशंस हिंसा की नींव पर राज्य का विशाल प्रासाद निर्मित करने का असफल प्रयास करते रहेंगे।

हेलन– ऐसा राज्य कितने दिन टिक सकेगा?

चन्द्रगुप्त– इसीलिए उथल–पुथल होती रहेगी। सुख–चैन से न शासक वर्ग कार्य कर सकेगा, न प्रजा शांति से जीवन व्यतीत कर सकेगी।

हेलन– इनसे मानव समाज की उत्तरोत्तर अवनति की ही झलक मिल रही है।

चंद्रगुप्त– अभी और सुनो शुभे! धूलि में कांतियुक्त रत्नराशि भी देखी और देखा श्याम गजों का युद्ध। अवश्य ही तुम इसका परिणाम भी जानने को उत्सुक होगी, जो पतित योगियों के भविष्य पर प्रकाश डालता है।

हेलन– अवश्य सुनूँगी सम्राट। अभी तक तो गृहस्थों की चर्चा हुई। अब इन गृहस्थों के सन्मार्ग दर्शक, सदुपदेशदाता योगी साधकों का वर्णन कर ही दें।

चंद्रगुप्त– साधुओं को मनुष्य अपना उद्धारक मानता है। संयम और शान्ति का तेज जिनके मुख पर सदैव चमकता है, जिनके उपदेश श्रवण कर पतित भी पावन हो जाते हैं, ऐसे साधक मुनि भी परस्पर निंदा करने लगेंगे।

हेलन– जो साधक अपनी साधना से प्रशस्त मार्ग पर अग्रसर हो चुका है और आत्मतेज प्राप्त करने में संलग्न है, वही अपना साध्य भूल ईर्ष्या आदि में रत हो जाये यह अनहोनी सी प्रतीत होती है।

चंद्रगुप्त– अनहोनी तो है ही प्रिये! जन्म–जन्म के कुसंस्कार मानस

में कब जाग जायें, कह नहीं सकते। भविष्य के लक्षण शुभ नहीं हैं।

हेलन– क्षमा करें सम्राट! एक शंका है? गृहस्थ अनेक दुष्कार्य करता है फिर भी क्षम्य है और साधक का एक अवगुण भी अक्षम्य अपराध क्यों है?

चंद्रगुप्त– शंका उचित है देवी! गृहस्थ, गृहस्थी का रक्षक है। इसमें प्रमुखता बाह्य पदार्थों की है। यह प्रमुख कर्त्तव्य पालन उसका प्रथम धर्म है। हाँ! यदि वह बाह्य कार्यों को करता हुआ अंतरंग में निरासक्त हो आध्यात्मिक प्रवृत्ति की ओर प्रेरित रहता है तो वह भी किन्हीं अंशों में साधक है क्योंकि वह अपनी भूल को भूल समझ रहा है कभी न कभी वह उनसे अवश्य विमुख हो जायेगा।

हेलन– ऐसा कैसे हो सकता है कि दुष्कार्यों को करता हुआ भी वह उनसे विरत हो।

चंद्रगुप्त– एक छोटा सा उदाहरण ले लो। जिसप्रकार बंदीगृह का बंदी वहाँ के सारे नियमों को मानकर तदनुकूल आचरण करता है, क्या इतने पर भी वह उसे अपना घर मान लेता है?

हेलन– नहीं, अवधि पूर्ण होते ही बिना किसी मोह-ममता के वह वहाँ से तुरंत चल देता है।

चंद्रगुप्त– बस इसीप्रकार का विरत मानव क्षम्य है और जो गृहस्थ अनेक अपराध कर रहें हैं वे भी भूले साधकों की अपेक्षा क्षम्य हैं। क्योंकि वे गौमुखी व्याघ्र बन दूसरों से छल तो नहीं कर रहे। हेलन! श्वेत वस्त्र पर तनिक सा दाग उसकी धवलता को कलंकित करने के लिये पर्याप्त है। प्रशस्त मार्ग पर चलते हुये पथिक की लघुतम भूल भी चरित्र को दूषित कर लक्ष्य भ्रष्ट करने में समर्थ है। और ये पाषाण की तरणीवत् स्वयं पार पाते नहीं और अन्य अनुयायिओं को भी ले डूबते हैं।

हेलन– आपका कथन यथार्थ है देव! जितने ऊपर चढ़ते जायेंगे, उतने ही सम्हल–सम्हल साधकर चरण बढ़ाने होंगे। और तभी साधना सफल हो सकती है, वरन् संसार में फिसलने के मार्ग बहुत हैं। अच्छा श्याम गजों की लड़ाई का क्या अभिलक्षण है?

चन्द्रगुप्त– भविष्य में प्रकृति भी मानवों के विरुद्ध होती दिखेगी। मनुष्य प्रत्येक सामग्री के अभाव को भुला सकता है, पर क्षुधा–तृषा सहन की बहुत छोटी सीमा है।

हेलन– इनके बिना वह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता।

चंद्रगुप्त– हाँ, तो प्रकृति का आघात इन्हीं पर होगा। जलधर समय पर जल नहीं बरसायेंगे, अतिवृष्टि, अनावृष्टि से खाद्य समस्या विषम–विषमतर होती जायेगी।

हेलन– ऐसा हुआ तो मानव क्या पशु–पक्षी भी भूखे प्यासे तड़प जायेंगे। जब मनुष्य स्वयं दुःखी होगा तो स्वभावतः मूक पशुओं के कष्टों पर कौन ध्यान देता है? इसीलिये वह हिंसक वृत्ति धारण कर आवश्यकताओं की पूर्ति पशुओं की हिंसा करके करेगा। समय का दोष है।

चन्द्रगुप्त– समझी तो यथार्थ प्रिये! पर मूल में भूल रह गई।

हेलन– (उत्सुकतावश) सो कैसे?

चंद्रगुप्त– प्रकृति मानवों को हिंसा की ओर प्रेरित नहीं करती अपितु मानव अपने क्रूर स्वार्थी प्रतिरोधी विचारों के कारण प्राकृतिक वातावरण को ही दूषित कर देता है।

हेलन– (आह भरकर) हाँ, जब मानव अपनी सरल स्वच्छता त्याग अमर्यादित हो जायेगा तो उसका कुफल उसे भुगतना ही होगा।

चंद्रगुप्त–क्योंकि प्रकृति प्राणियों के आंतरिक भावों का प्रतिबिम्ब है। जैसा मुख होगा वैसा ही दर्पण में प्रतिबिंबित होगा।

हेलन– और क्या? जैसा बीज वैसा फल, बबूल बोकर आम तो मिलेंगे नहीं।

चंद्रगुप्त– अब एक अन्तिम सत्य और है प्रिये!

हेलन– सत्य या स्वप्न!

चंद्रगुप्त– सत्य स्वप्न बनकर साकार हो आया है। और यह व्यक्तिगत हमारा ही भविष्य सूचित कर रहा है।

हेलन– शीघ्र कहें सम्राट!

चंद्रगुप्त– द्वादश फणवाला अति कृष्ण विषैला विषधर देखा है। जिससे सूचित है कि अब उत्तरापथ में द्वादश वर्ष का घोर दुर्भिक्ष होगा, प्राणी–मात्र त्रस्त हो अत्यन्त दुःखी होगा। और जानती हो हेलन! मेरा शेष जीवन अशेष होने जा रहा है।

हेलन– (चंद्रगुप्त के मुख पर हाथ रखकर) अरे रे! आप कैसी अशुभ वाणी कह रहे हैं?

चंद्रगुप्त– यह ध्रुव सत्य है शुभे! शुभ–अशुभ बाह्य में कुछ भी नहीं है, सब अन्तर के भावों में ही निहित है।

हेलन– फिर भी व्यवहार में...

चंद्रगुप्त– व्यवहार मिथ्या है प्रिये! हमने यह निश्चय किया है कि अब आत्मकल्याण में लगना ही अभीष्ट है, अतः हम राज्य परित्याग कर रहे हैं।

हेलन– आपका विचार उज्ज्वल है, पर स्वप्न को सत्य मानकर किसी निर्णय पर पहुँच जाना उचित नहीं है।

चंद्रगुप्त– यह कथन अनुचित है देवी! स्वप्न का निमित्त पाकर ही हम सावधान हो जायें तो क्या बुरा? जबकि हमें बहुत पहले हो जाना चाहिये था। जीवन का क्या विश्वास? निकली साँस लौटती है या नहीं? जीवित रहने में आश्चर्य है, अपेक्षाकृत मरने के।

हेलन– वस्तुतः यही बात है। सुख प्राप्ति के लिये हमने अनेक–अनेक जन्म नष्ट कर दिये, न सुख मिला, न तृप्ति हुई।

चंद्रगुप्त– यही भूल है प्रिये! सुख और तृप्ति सब आत्मा में ही हैं, पर हम अज्ञानतावश बाह्य में खोजते हैं, जब हमें गृहवास में तृप्ति का अनुभव नहीं होता तो वनवास में ही कहाँ से होगा?

हेलन– तब फिर यह जो परंपरा चल रही है, वह व्यर्थ है?

चंद्रगुप्त– (स्नेह पूर्वक) ऐसा भी नहीं है शुभे! सुख–शान्ति की अनुभूति गृहवास में भी होती रहती है और उसमें अपूर्व आनन्द भी प्राप्त होता है। (बीच ही में)

हेलन– तब फिर यह पागल मस्तिष्क की ही उपज समझनी चाहिये जो मानव शान्ति खोजने वनों में भटका करते हैं।

चन्द्रगुप्त– अनर्थ हो जायेगा देवी!

हेलन– क्यों?

चंद्रगुप्त– घर में आत्मानुभूति की उपलब्धि तो होती है, पर उसके निरंतर उपभोग में अनेक बाधायें भी उपस्थित होती रहती हैं, इसके अतिरिक्त ज्ञान और संयम की पूर्णता जो कि आत्मा का सहज स्वभाव है वह पूर्णत्व भी प्राप्त नहीं होता। अन्य विकल्प पूर्णत्व प्राप्ति में व्यवधान हैं। अतएव कभी भी अपनी नहीं होने वाली नश्वर सामग्री को अविलंब क्यों न तिलांजलि दे दी जाये।

हेलन– यह यथार्थ है कि अपनी निधि ही अपनी रहेगी। पर आपके कहने का तात्पर्य यही हुआ कि यहाँ आत्म स्वतन्त्रता का अपहरण होता है इसलिये त्याग देना आवश्यक है, किन्तु एक शंका है कि अमंगल समझ कर इनसे दूर भागना क्या बुद्धिमत्ता है?

चंद्रगुप्त– प्रश्न तर्कसंगत है शुभे! अमंगल समझना ही पाप है। कहीं

कोई पदार्थ न मांगलिक है, न अमांगलिक, यदि अमंगल समझकर गृहवास छोड़ा तो कल्याण भी नहीं। अच्छा-बुरा यह सारा भ्रम विचारों का है हेलन! इन विकल्पों का उद्‍गम समाप्त हो जाना ही निर्मलता का आ जाना है।

हेलन- तब यों क्यों कहें कि विकल्पों को शांत करना ही श्रेयस्कर है।

चंद्रगुप्त- अवश्य, जीवनमुक्त इसी को कहते हैं। किन्तु स्वानुभूति अक्षुण्ण रहे, आत्मा शाश्वत स्वस्थ हो इसलिये पराश्रय छोड़ स्वतंत्र बनना ही होगा। आत्मा और अन्य द्रव्यों में उतना ही अंतर है, जितना पूर्व और पश्चिम में। आत्मोन्मुख आत्मा स्वभावतः पर द्रव्यों से पराङ्गमुख होगा, त्याग और ग्रहण का प्रश्न ही नहीं है।

हेलन- समझी तो पर...

चन्द्रगुप्त- अब शंका क्यों? जो आत्म-स्वभाव नहीं, उसमें लिप्त रहना कहाँ की बुद्धिमानी है?

हेलन- जानते हुये भी इतने दिनों तक अज्ञानता क्यों की?

चन्द्रगुप्त- वह अपने ही पुरुषार्थ की निर्बलता थी, बुद्धि विवेक को निरंतर छल रही थी। हम जाग कर भी निद्रित हो जाते थे, अब हमारा मंगल प्रभात हुआ प्रिये! अभीष्ट सिद्धि में लग जाना श्रेयस्कर है। सदा से अज्ञानवश भूल करते आये इसका यह अर्थ तो नहीं कि विवेक होने पर भी हम भूल से मुख न मोड़ें?

हेलन- तो सचमुच ही आप अपने निर्णय पर अडिग हैं।

चन्द्रगुप्त- (मुस्कराकर) कुछ संदेह है?

हेलन- (प्रसन्नता से) नहीं, मुझे प्रसन्नता है। अब शीघ्र ही युवराज कुमार बिन्दुसार का राज्याभिषेक कर उन्हें समस्त कार्यभार सौंप राज्य से मुक्ति पा लें तत्पश्चात् एकाग्र हो आत्मसाधना में रत हों।

चन्द्रगुप्त- ऐसा ही होगा देवी!

पटाक्षेप

[दृश्य-उनतीसवाँ]

(राजसभा सम्राट चन्द्रगुप्त के आगमन की प्रतीक्षा में है, विशेष आमंत्रित सज्जन व प्रजाजन भी आये हैं, महामात्य राक्षस, अभिन्न सखा जयदेव, सेनाध्यक्ष भद्रशाल इत्यादि अन्यान्य सभासद विराजमान हैं। सिंहासन के निकट तीन अन्य रत्नखचित पीठिकायें हैं, दाईं ओर युवराज बिन्दुसार के लिए व बाईं ओर क्रमशः साम्राज्ञी सुप्रभा व साम्राज्ञी हेलन के बैठने के लिये रखी हैं। जनरव से वातावरण मुखर है, प्रतिहारी अपनी चिर अभ्यस्त वाणी में सम्राट के आगमन की सूचना देता है, वह अपनी सूचना तीन बार सुनाता है और शनैः-शनैः कोलाहल मंद होता जाता है, सब द्वार की ओर उत्सुकता से निहारते हैं)

प्रतिहारी- राज राजेश्वर अतुल बलशाली श्रीमान् सम्राट चन्द्रगुप्त पधार रहे हैं। (तीन बार) सम्राट का प्रवेश, उनके सम्मान में सब खड़े हो जाते हैं। सम्राट चन्द्रगुप्त क्रमशः साम्राज्ञी सुप्रभा, साम्राज्ञी हेलन व कुमार बिन्दुसार व सभी प्रजाजन का अभिवादन स्वीकार करते हुये सभी अपने-अपने नियत स्थान पर बैठ जाते हैं।

चन्द्रगुप्त- महामात्य! व समस्त राजसभा को आज इसलिये आमंत्रित किया गया है कि अब हम राज्य-कार्य से मुक्त होकर कुमार बिन्दुसार को पदभार सौंप रहे हैं, आशा है आप सब बिन्दुसार को यथोचित सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

(सब अवाक् रह जाते हैं)

राक्षस- सम्राट! यद्यपि कुमार का राज्याभिषेक मंगल कार्य है तथापि ऐसी शीघ्रता क्यों? चंद समय आपकी छत्रछाया

में उन्हें और प्रशिक्षित होने दें।

चन्द्रगुप्त– महामात्य! अब आप कुमार बिन्दु के पितृतुल्य संरक्षक हैं, गुरु की भाँति आप ही उसे प्रशिक्षण दें।

बिन्दुसार– तात्! आपका कथन यथार्थ है एवं मंत्रीश्वर भी उचित संभाषण कर रहे हैं, आप अपने पद पर रहें मैं अभी यह महान भार ग्रहण हेतु कदापि प्रस्तुत नहीं, सहसा आपने यह कैसी असामयिक बात कह दी है।

चंद्रगुप्त– बिल्कुल भी नहीं वत्स! गहराई से विचार किया जाये तो बात अक्षरशः सत्य है। संतान के योग्य होने पर माता-पिता का पदमुक्त हो जाना नैतिक दृष्टि से अनिवार्य है, चिपटे रहना बुद्धिमानी नहीं, नई कोंपलों को परिपुष्ट होने के लिये पीले पातों का झड़ना अनिवार्य है।

राक्षस– प्रत्येक कार्य का समय नियत है राजन्! नियत समय में ही कार्य की शोभा है, आप अभी वृद्ध नहीं हैं, युवकोचित वीरता आपके मुख को अभी भी दीप्त कर रही है।

चन्द्रगुप्त– (मुस्कराकर) महामात्य! संप्रति हमें उस उक्ति की सुधि आ रही है कि कभी-कभी विद्वज्जन भी ममता के बहकावे में आकर सत्य को फूँक मार कर उड़ाने का असफल प्रयास करने लगते हैं।

राक्षस– वह कैसे सम्राट ?

चन्द्रगुप्त– आप विचारें– क्या प्राणियों के जन्म-मरण, संकट, दुःख, रोग आदि का समय नियत है? क्या ऐसी भी कोई शक्ति है जो इनको मर्यादा में बाँध सके, अथवा इनका तुरन्त प्रतिकार किया जा सके? निश्चय ही नहीं है, इसीलिए हम अधिकार, वैभव से निवृत्त हो कल्याण की दिशा में बढ़ साधना पथ अपनायेंगे।

बिन्दुसार– पिताश्री! आप अभी यह कर्णतिक्त निर्णय न करें, आप मात्र सिंहासन को सुशोभित करें, कार्यवाहक मैं रहूँगा।

चन्द्रगुप्त– वत्स! इससे क्या लाभ? जब कार्य तुम्हीं कर लोगे तो हम

अकारण अपने दुर्लभ क्षण व्यर्थ क्यों खोते रहें? अभी तक राज्य कार्य में उपयोग लगाया पर सब व्यर्थ ही रहा। बाह्य जगत में सुख-शांति को टटोलते रहे, अब अंतर्जगत का निरीक्षण करें। आत्म-शोधन से ही शाश्वत सुख की प्राप्ति हो सकती है।

जयदेव- भारतेश्वर! आपके राज्य में सर्वत्र प्रजा सुख-शान्ति का अनुभव करती है। हजारों वर्ष पूर्व की इतिहासोक्त रामराज्य की कल्पना साकार हो आई है।

चन्द्रगुप्त- बस इसी में जीवन की इति नहीं है जयदेव! सांसारिक कर्त्तव्यों का हमने अनेकों बार सुचारु रूप से निर्वाह किया है, खेद है कि स्वयं के प्रति हम ऐसे उदास रहे कि परिचय भी प्राप्त नहीं कर सके।

जयदेव- लो, आप तो तुरंत योगमार्ग पर उतर आये।

चन्द्रगुप्त- क्योंकि इसके अभाव में मानव जन्म अधूरा है। हमें कभी न कभी अपनी दिशा, अपना मार्ग, अपनी विचारधारा इस ओर मोड़नी ही होगी, इसके बिना प्राणीमात्र का कल्याण नहीं।

राक्षस- एक बार पुनः विचार करें सम्राट!

चन्द्रगुप्त- आत्म-मंथन करने के पश्चात् ही हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं महामात्य!

बिन्दुसार- तात्! चंद दिन आप निश्चिंत हो घर पर ही योग का अभ्यास करें तत्पश्चात् गृह परित्याग करें तो हमारे हित में हो।

चंद्रगुप्त- यह मिथ्या धारणा है वत्स! कोई किसी का हित-अहित नहीं करता, अणु-अणु का परिणमन त्रिकाल में यथाविधि स्वयमेव होता रहता है, हम सब केवल निमित्त मात्र हैं, सच पूछो तो हम अपने इसी 'अहं' के कारण व्यथित हैं। 'अहं' हमारे ज्योतिपुंज आत्मा पर घना कुहरा बनकर छा गया है जिससे हम उचित मार्गदर्शन नहीं कर पाते। 'अहं' को गलाने के लिये एकांत साधना की नितांत आवश्यकता है।

सुप्रभा– आर्यपुत्र! मेरा भी आपसे यही अनुरोध है कि आप कुमार को राज्यभार देकर घर पर ही साधना का शुभारंभ करें।

चन्द्रगुप्त– प्रसन्नता है शुभे! कि तुम सभी अंत में गृह–परित्याग ही श्रेष्ठ मान रही हो। एक–दूसरे से अत्यन्त भिन्न ये दोनों कार्य एक साथ कभी नहीं हो सके हैं। आत्म–साक्षात्कार के अभाव में प्राणी विपरीत प्रवाह में पड़े हैं। आंतरिक निवृत्ति होने पर क्यों न प्रवृत्ति अपना ली जाये। विलंब क्यों? शुभस्य शीघ्रम्।

सुप्रभा– विलंब इसलिये कि हम लोगों का मन अभी इतना सुदृढ़ नहीं है कि आपका वियोग सह सकें, हमें समय दें।

चन्द्रगुप्त– जब आँधी चलती है तो मृत्तिका के दीप बुझने लगते हैं, उनकी ज्योति यत्र–तत्र भटकने लगती है। यह ममता की आँधी है। विवेकशील मानव की विचारधारा अस्थिर हो भ्रांतियुक्त हो जाती है। वह तथ्य जानते हुये भी आँख मूँद कर अपने को बलात् बहलाने की चेष्टा करता है। जन्मांतरों से छले आ रहे ममता के कुसंस्कारों को तिलांजलि देनी ही होगी, विश्वमैत्री का आत्मगत स्वभाव जगाना होगा।

सुप्रभा– आपका कथन स्वीकार है सम्राट्! मेरा अल्प समय के लिये आग्रह है। कुमार बिन्दु का राज्य संचालन देख लें फिर मैं भी आपके साथ गृह त्याग कर दूँगी। पति के अभाव में पत्नी का जीवन शून्यवत् है।

चन्द्रगुप्त– महारानी! भूल रही हो, प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र है, स्वतंत्र ही उसका सुख है, निर्विकल्पता में ही सच्चा सुख प्राप्त होता है, पति के अभाव में यदि वन में जा बैठी तो वह व्यर्थ ही रहेगा।

सुप्रभा– व्यर्थ क्यों आर्य!

चन्द्रगुप्त– क्योंकि मूल में ही भूल हो गई। आत्म–स्वरूप की यथोचित पहचान न कर दूसरे का आश्रय ही देखा। आत्मा का स्वभाव तो तेजोपुंज, अनन्त ज्ञानमय, अनंत शक्तिस्वरूप, अखण्ड निर्विकार है।

जयदेव– आपसे विनम्र निवेदन है सम्राट! कि राजमाता का अनुरोध चंद दिनों के ही लिये मान लें।

चंद्रगुप्त– (स्नेहपूर्वक) जयदेव! क्या वीरों के वचन भी कभी फिरे हैं?

सुप्रभा– तब मैं यही समझूँ कि आपका हम लोगों से स्नेह ही नहीं है।

चन्द्रगुप्त– अन्यथा न समझो शुभे! प्राणियों के व्यावहारिक रिश्ते घिसते–मिटते रहेंगे। इनमें अपने और पराये की घृणित भावना निहित है। अब इसके ऊपर उठकर हमने विश्व–मैत्री का सर्वोच्च सिद्धांत अपनाया है, जिसमें सर्वप्राणी एक सदृश हैं। कर्मक्षेत्र की विजय नश्वर है, अब अपनी इच्छाओं के शाश्वत विजेता बनने की तीव्र उत्कंठा है। अहिंसा, क्षमा, सत्य निर्भयता आदि हमारे शस्त्र इन्द्रियजयी बनायेंगे। (सबसे) हमारे मंगल कार्य में आप सब सम्मत होकर प्रसन्नता से स्वीकारता दें।

हेलन– (मृदु स्वर से) सम्राट! आज तक मेरा आप से दाम्पत्य सम्बन्ध था, परन्तु अब मैं सहर्ष संबंध विच्छेद करती हूँ। आपकी भावी योजना के कारण मैं अपनी ओर से अनुमति प्रदान कर आपके पथ की पथिक बनने की आज्ञा चाहती हूँ। आप स्वतंत्र हैं।

सुप्रभा– (विस्फारित नेत्रों से) यह क्या भगिनी! पति चले और सदैव की सहयोगिनी तुम भी मुख मोड़ने लगी। (उद्विग्न हो) नहीं, नहीं तुम नहीं जा सकतीं, नहीं जा सकोगी, नहीं...

हेलन– जीजी! मत भुलाओ कि संसार में प्राणी अकेला ही आता जाता है, सहयोगी तो निज के विचार हैं। जितने दिनों का बाह्य सम्बन्ध था सो रहा, अब वियोग का समय आ गया है। यथार्थतः न संयोग है न वियोग।

सुप्रभा– इतनी कठोर न बनो प्यारी हेलन! सुदूर देश से आ स्नेह डोर बाँध, इतने दिनों की ममता क्या क्षण भर में तिनके की भाँति तोड़कर रख दोगी? ऐसी तो तुम कभी नहीं थीं।

हेलन- जीजी! यह तथ्य क्यों भुला रही हो कि हम सब पक्षियों के रैन बसेरे की भाँति एकत्रित होते हैं जो भोर होते ही अपने-अपने गंतव्य मार्ग पर चल देते हैं।

बिन्दुसार- छोटी माँ! तुमने मुझे अपने हाथों खिलाया है, मैंने पालने में तुम्हारी लोरियाँ सुन-सुनकर सुख की निद्रा ली है, जन्मदातृ माँ से भी अधिक तुमने मुझे पवित्र वात्सल्य प्रदान किया है, क्या अपने बालक पर से स्नेहांचल उठाकर तुम्हें तृप्ति मिल सकेगी?

हेलन- (अत्यन्त स्नेहासिक्त मधुर स्वर में बिंदुसार के निकट जा उसके सिर पर हाथ फेरते हुये) वत्स! जब बालक युवक हो जाता है तो वह माता-पिता के आश्रित न रह आश्रयदाता बन जाता है और तुम कर्त्तव्य से अनभिज्ञ भी नहीं हो, अब तुम बड़े हो गये हो मेरे लाल!

बिन्दुसार-कुछ भी हो, पर माता-पिता के सम्मुख बालक वृद्ध होकर भी बालक ही रहता है एवं वह उनसे सर्वदा स्नेह की अपेक्षा रखता है।

हेलन- सत्य है, यह सांसारिक परंपरा है। इस अपेक्षा से भी हम पूर्ण विश्वास से राज्य की बागडोर तुम्हें सौंप रहे हैं, तुम सर्वथा योग्य विचक्षण हो, अपना उत्तरदायित्व समझते हो, हमें पूर्ण अवकाश दो ताकि हम निर्द्वन्द हो आत्मसाधना कर सकें। संयोग-वियोग यहाँ की परिपाटी है। यदि तुम हमें अवकाश न दोगे तो अपने नियत समय पर आकर हमें काल लुटेरा लूट ही लेगा।

चन्द्रगुप्त- बस इसीप्रकार जन्म-जन्मांतरों से हम मिल-बिछुड़ कर सुख-दुःख मनाते रहे हैं। कुमार बिन्दुसार! (अपने सिर से मुकुट उतार कर कुमार को पहनाते हुये) लो यह मुकुट सँभालो, अपने कर्त्तव्य को कभी न भूलना, हम भविष्य के लिये कृतसंकल्प हैं, कोई भी शक्ति, कैसी भी ममता हमें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकती, हम अंतर्जीवन में बाह्य हस्तक्षेप सहन न कर पायेंगे, मानव जीवन में परिवर्तित करने का प्रयत्न करेंगे।

राक्षस– सम्राट! हम सबकी बात आपने अमान्य कर दी। सभी को मानसिक संताप है।

चन्द्रगुप्त– (प्रेमपूर्वक) महामात्य! हमारा ध्येय आप सबको व्यथित करना नहीं है। साधक के पथ में ममत्व कंटक ही नहीं, अपितु विशाल बाधा–स्वरूप है। स्पष्ट है कि हम सबको यह अवरोध दूर करना ही होगा।

राक्षस– (व्यथित स्वर में) तब यही उचित है सम्राट! आपका पथ प्रशस्त हो, आप आत्मा का सहज शाश्वत अपूर्व आनन्द उपलब्ध करें। कुमार बिन्दुसार का राज्याभिषेकोत्सव मना लिया जाये तत्पश्चात्...

चन्द्रगुप्त– (तुरन्त) उत्सव का कार्यक्रम निर्धारित कर लें। पर हमें अवकाश दें, निवृत्ति के पश्चात् प्रवृत्ति नहीं हो रही। (बिन्दुसार से) वत्स! शासन व्यवस्था को उज्ज्वल बनाना तुम्हारा प्रथम और परम कर्त्तव्य है। यह तभी होगा जब वासनाओं के विषैले विषधर हृदय में जन्म न लें। सरल स्वच्छता व अमित स्नेह की अखंड स्रोतस्विनी सदा प्रवाहित होती रहे। विलास राजमहलों का सर्वोच्च प्रलोभन है। मृदुल शय्या के सुख की प्रत्याशा में स्वतन्त्रता भी विसर्जित हो जाती है। अस्तु? अंतर्मन में कर्त्तव्य की ज्योति सदैव प्रज्ज्वलित रखना होगी।

बिन्दुसार– (सविनय हर्ष–विषाद मिश्रित गद्‌गद् स्वर से खड़े हो) पिताश्री! तथा युगल मातुश्री! आपकी शिक्षा, सत्संस्कारों से मैं अभिभूत हूँ, आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास से कहता हूँ कि राज्य संचालन सुचारु रूप से करूँगा। (समस्त सभा को सम्बोधित कर) मेरी समस्त क्रियायें प्रजा के हित में ही होंगी। मैं आत्मनिष्ठ हो आप सबकी साक्षी पूर्वक प्रण करता हूँ। काश! मैं अपने वचन पालन में सक्षम न हुआ तो तुरन्त राज–सिंहासन परित्याग कर दूँगा। आप सबको अधिकार होगा कि मेरे त्याग न करने पर बलपूर्वक पदच्युत कर सकते हैं। (चन्द्रगुप्त, सुप्रभा, हेलन के चरण स्पर्श कर बैठ

जाते हैं)

समस्त प्रजागण- (हर्ष से उल्लसित हो) साधु, साधु कुमार! सम्राट अमित्रघात बिन्दुसार की जय! सम्राट बिन्दुसार की जय! राजराजेश्वर सम्राट चंद्रगुप्त की जय! जय-जय (जनरव गूँजता है।)

राक्षस- वंश के अनुरूप आपके वचन हैं कुमार! आपका भविष्य उज्ज्वल हो।

चन्द्रगुप्त- अब हमें कुछ नहीं कहना है बिन्दु! अपने आपसे छल न होने पाये बस सावधानी से इतना ही ध्यान रखना।

बिन्दुसार- आप गुरुजनों का आशीर्वाद मेरा संबल होगा पिताश्री! आप निश्चिंत हो आधि-व्याधि-उपाधि रहित आत्मानंद का उपभोग करें।

सुप्रभा- (व्यथित मन) आप दोनों ही हमें छोड़कर जा रहे हैं, मेरी निवृत्ति के बिना प्रवृत्ति मात्र प्रदर्शन बनकर रह जायेगी।

हेलन- अवश्य! उससे कल्याण भी न होगा, जब तक विरागता अंतर से उठ मन पर पूरी उभर न आये तब तक आप शांतिपूर्वक राजमाता के कर्त्तव्यों का भलीभाँति पालन कर कुमार का मार्गदर्शन करती रहें जीजी!

चन्द्रगुप्त- पर यह सदैव स्मरण रखना भद्रे! कि सच्चे आनन्द का द्वार समाधि ही खोलती है। बाहर के धन-धान्य में सुख खोजते-खोजते हमने अनेकों जीवन गँवा दिये पर जिसे हमने स्वर्ण समझा वह मिट्टी ही निकला। हमने बाहर का राज्य जीता पर अपने अंतर का राज्य अनजीता ही रह गया। समाधि उस महाप्रभु की झलक दिखला कर शनैः शनैः परिचय प्राप्त कराती है जो भीतर बैठा है।

सुप्रभा- आपके वचन अमूल्य हैं आर्य! उन पर चलने का निरंतर प्रयास करूँगी।

चन्द्रगुप्त- (सबको संबोधित कर) समस्त प्रिय आत्मबंधुओ! आज तक हमने राजधर्म का कठोरता से निर्वाह कर आप सब का मन दुखाया

है और अंतर्द्वन्द्व में पड़कर अनेकों बार विकलता का भी खूब अनुभव किया है। व्यक्तिगत हमारा कोई द्वेष नहीं रहा। फिर भी हम महादोषी हैं। ज्ञात-अज्ञात रूप से पूर्वकृत अपराधों की हम विनम्र क्षमा याचना करते हैं और हम भी सबसे क्षमाभाव धारण करते हैं। आज से हमारी दृष्टि में शत्रु-मित्र सब समान हैं। शुभे हेलन! तुम भी गहराई से विचार कर लो, यह पथ अत्यन्त कठिन है, इस पर चलकर लौट नहीं सकोगी।

हेलन- अमृतपान कर विषपान की अज्ञानता भला कैसे हो सकेगी साधक से? लौटना कठिन, स्वरूप को पाना सरल है देव! पाना तो संसार का कठिन है जो आज तक कोई नहीं पा सका, क्योंकि वह पर है। पर को पा लेना असंभव है, उसी असंभव को हम सब संभव करने की भूल प्रतिक्षण करते आ रहे हैं। जो अपना है, वही पाया जा सकता है, यही मेरी दृढ़ धारणा बन गई है।

सुप्रभा- धन्य हो भगिनी! सत्य के दर्शन करना है, उसे पाना है तो हमें अपने पर ही लौटना होगा। अंतर्जगत सी शांति, तृप्ति और कहाँ है? बाहर तो केवल अशांति है, भटकन है और घोर असंतोष है, जो इस तथ्य को हृदयांकित कर लेता है वह सारी ममता मोह से पार अंतर्दर्शन में लीन हो जाता है। जाओ बहिन हेलन! जाओ अपने लक्ष्य का साधन करो। मैं पतित, तुम महान हो।

हेलन- ऐसा न कहो जीजी! हम सभी चिरकाल के पतित हैं। (सबसे) आप सब जन मेरी भूलों को भूल जायें। विश्वमैत्री मुझे परम आदरणीय है।

राक्षस- शेष कहना भी निःशेष हो गया साम्राज्ञी! अब क्या कहूँ?... आपकी साधना सफल हो।

पटाक्षेप

[दृश्य-तीसवाँ]

(नेपथ्य से) सकल जन सावधान होकर सुनें, आज सम्राट चन्द्रगुप्त अपने करकमलों से किमिच्छक दान देंगे। इच्छुक व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र राजमहल सुगंगप्रासाद के बाह्य उद्यान में एकत्रित हों। दान कार्य सूर्यास्त तक अविरामगति से चलता रहेगा। याचक गण शीघ्रता करें।

(उद्घोषक दो-तीन बार उपर्युक्त वाक्य बोलता हुआ आगे बढ़ जाता है। उसकी ध्वनि क्रमशः मंद-मंदतर होती जाती है)

चन्द्रगुप्त- अब उद्यान में चला जाये, व्यक्ति एकत्रित हो गये होंगे।

(सम्राट चन्द्रगुप्त सहित समस्त जन उद्यान में आ जाते हैं। चन्द्रगुप्त एक ऊँचे आसन पर बैठते हैं, शेष जन यथायोग्य पीठिका पर बैठ जाते हैं। निकट ही दान सामग्री से भरे विशालकाय पात्र रखे हैं। मानव समूह एकत्रित हैं, कोलाहल हो रहा है, सम्राट भर-भर अंजुलि वस्तुएँ लुटा रहे हैं, याचक प्रसन्नता पूर्वक लेते और चले जाते हैं। वृद्ध याचक याचिकायें आशीर्वाद भी देते हैं। ज्यों ही पात्र खाली होते हैं त्यों ही सेवकों के द्वारा पुनः भर दिये जाते हैं)

समस्त मानव समूह- (सम्राट के आते ही) सम्राट चन्द्रगुप्त की जय! सम्राट चन्द्रगुप्त की जय!... सम्राट की जय!....

(चन्द्रगुप्त बैठकर दान देना प्रारंभ कर देते हैं, कई याचकों के पश्चात् एक विचित्र याचिका आती है। सम्राट उसे अन्न देते हैं वह नहीं लेती, पश्चात् स्वर्ण मुद्रा देते हैं फिर भी वह नहीं लेती)

चन्द्रगुप्त- तब फिर क्या चाहिये देवी! अपनी अभिलाषा कहो।

नारी- क्या मेरी अभिलाषा पूर्ण हो सकेगी?

चन्द्रगुप्त- अवश्यमेव, यदि वह धर्मसंगत तथा मानव से संभव हो सके।

नारी– ऐसा ही है सम्राट! मैं नियति की सताई अकेली दुखियारी नारी हूँ, मेरा निजी अपना कहने को कोई नहीं है।

चन्द्रगुप्त– निःसंकोच अपनी बात कह सकती हो।

नारी– मैं आपको सहोदर बंधु के रूप में देखना चाहती हूँ क्या आप मेरे बंधु बनना स्वीकार करेंगे।

चन्द्रगुप्त– मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। पर इस मिथ्या कल्पना से क्या होगा देवी। प्रत्येक प्राणी अकेला है।

नारी– इन वाक्यों को बहुत बार सुना है सम्राट! पर तृप्ति नहीं हुई। आपको यदि बंधु कह सकी तो मुझे अनिर्वचनीय सुख प्राप्त होगा।

चन्द्रगुप्त–यह सुख, सुख नहीं, सुखाभास है देवी! मोह की छलना है।

नारी– मैं योग मार्ग पर नहीं हूँ सम्राट! मुझे बंधु चाहिये, बस और कुछ भी नहीं, यदि आपको स्वीकार हो तो मैं यह रक्षासूत्र कर कमलों में बाँध दूँ?

चन्द्रगुप्त– (दायाँ हाथ बढ़ाकर) लो रक्षासूत्र बाँधो भगिनी!

(नारी, ललाट पर मंगल तिलक लगा अक्षत लगाती है और रक्षासूत्र बाँधकर हाथ में श्रीफल देती है। चन्द्रगुप्त हाथ जोड़कर अभिवादन करते हैं। उपस्थित जन जय-जयकार कर उठते हैं)

नारी– (हर्षाश्रु छलक पड़ते हैं। विह्वल हो रुँधे कंठ से) सम्राट चन्द्रगुप्त से बंधु को पाकर आज मैं धन्य हो उठी। भैया! अब आप मुझे निःसहाय छोड़कर वन गमन न कर सकेंगे।

चन्द्रगुप्त– निःसहाय नहीं भगिनी! आजीवन तुम निश्चिन्त रह सको ऐसी सुचारु व्यवस्था हो जायेगी।

नारी– नहीं, मैं आपकी छत्रछाया में अपना शेष जीवन निःशेष करना

चाहती हूँ।

चन्द्रगुप्त– अभिलाषाएँ कभी पूरी नहीं हुई भगिनी! सच पूछो तो ये आकांक्षायें ही दुःख की जननी हैं। इनको पूरी करने की धुन में रहना अग्नि में ईंधन झोंककर उसे बुझाने का दुष्प्रयास है।

नारी– तब आपने जो मेरी रक्षा की शपथ ली है, उसका क्या हो? क्या मैं उसे निरी औपचारिकता ही समझूँ?

चन्द्रगुप्त– जो भी समझो, मिथ्या है और नहीं भी है।

नारी– ऐसे शब्द सम्राट को शोभा नहीं देते बन्धु!

चन्द्रगुप्त– जान–बूझकर तथ्य को कल्पना की ओट नहीं किया जा सकता। मिथ्या इसलिये कि मानव अपने निकटतम शरीर की ही रक्षा नहीं कर सकता तो अन्य की क्या कर सकेगा, किसे ज्ञात है कि आयु कब समाप्त हो रही है। सभी पदार्थ अणु–अणु स्वतन्त्र है। प्रत्येक प्राणी स्वरक्षित है, किन्तु सांसारिक कर्त्तव्यों के नाते पारस्परिक औपचारिकता चला करती है। वस्तुतः त्रिकाल में भी कोई किसी का रक्षक नहीं है। इन थोथी कल्पनाओं से हमें दूर हट जाना है। यदि आश्रय ही लेते रहें तो अन्योन्याश्रय कभी समाप्त ही नहीं होगा।

नारी– आह! मैं अंधेरे में थी बन्धु! तुमने मुझे ज्योति देकर बन्धुत्व की यथार्थता को तत्क्षण निभाया है। मेरे परमप्रिय भ्रात! अभी तक मैं आत्मवंचना में ही निरत थी।

चन्द्रगुप्त– अँधेरे की परतें तो स्वयं आत्मा ही खोलती है देवी! आत्मज्योति तो सदैव ही जला करती है, कभी बुझती नहीं। गुल झड़ाते ही वह निखर आती है। मन को सुस्थिर किया कि हमें उसकी उज्ज्वलता का प्रतिबोध होने लगता है।

नारी– ओह! तो मैं अभी कहीं खो गई थी।

चन्द्रगुप्त– खोई नहीं सो रही थीं। सोना ही अज्ञान है। ज्ञान कभी खोता नहीं। वह तो हमारी आत्मा है, आत्मा से भिन्न कोई ज्ञान नहीं है।

हेलन– इसी आत्मा की सुगंध जिसे तनिक भी आ जाती है वह उसी में लीन होने का प्रयास करता है। वैराग्य, त्याग, साधना सभी इसी प्रयास की अभिव्यक्तियाँ हैं।

चन्द्रगुप्त– संसार इन्हीं शब्दों को जानता है जबकि अनुभूति से कुछ और ही अकल्पनीय रहस्य खुलते हैं। साधक स्वतः के आनंद के साम्राज्य को पाने के लिये यहाँ के तुच्छ साम्राज्य से विमुख हो जाता है। क्षणिक तृप्ति को छोड़ वह अनंत तृप्ति से भर जाना चाहता है।

हेलन– निःसंदेह वह वाणी से बताया नहीं जा सकता।

नारी– अभी तक मैं मृत थी, आपके सत्संग से अब जीवन प्रारंभ कर सकूँगी बन्धु। प्रभु! यह क्षण धन्य है। (पुलकित होती है।) मैं भी संसार से तटस्थ हो आत्मसात होने का सुप्रयास करूँगी। (बैठ जाती है)

चन्द्रगुप्त– तुम्हारा निर्णय सुखद सुरुचिपूर्ण है भगिनी!

(एक दूसरी महिला रोती हुई आती है, उसके पीछे उसका चार वर्ष का बालक भी है जो आँचल पकड़े हुये रोता घिसटता सा चल रहा है)

हेलन– तुम्हें क्या चाहिये भगिनी! रोओ मत, इच्छित वस्तु मिलेगी।

बालक– माँ! तुप दाओ ना माँ! तुप दाओ। (पुनः रोने लगता है)

हेलन– रो क्यों रही हो बहिन? तुम्हें देखकर बालक भी रो रहा है, चुप हो जाओ। कहो, तुम्हें क्या कष्ट है?

महिला– आपने मुझे बहिन कहकर पुकारा? नहीं, नहीं मुझ अभागिन से बहिन न कहो साम्राज्ञी! कहाँ आप, कहाँ मैं?

(बालक सहमा सा कभी हेलन और कभी माँ को देखता है)

हेलन– हम सब एक ही मानव जाति के समान प्राणी हैं भगिनी! पागल न बनो! जैसे अनेक दीपकों की ज्योति में कोई अन्तर नहीं, वैसे ही मानव–मानव में कोई भेद नहीं है।

महिला– मैं आभिजात्य वंश की नहीं हूँ देवी! मेरी गणना आप सब के साथ नहीं हो सकती। मैं समाज का वह घृणित कोढ़ हूँ, जो निर्मल जल से धो पोंछने पर भी गलित स्रवित रंध्रों की भाँति क्षण भर भी स्वच्छ न रह सकता।

हेलन– मानव कुल पर ऐसा निकृष्ट लांछन न लगाओ। उच्च कुल के न होने पर ही कोई अधम नहीं हो सकता। **मनुष्य अपने कार्यों से उत्कृष्ट– निकृष्ट की श्रेणी पाता है**। यह भूल जाओ कि बालक उत्पन्न होते ही ऊँच या नीच है।

महिला– (अविश्वास के स्वर में) नहीं, यह असत्य है, कहीं आप मुझसे उपहास तो नहीं कर रहीं?

हेलन– ओह! उपहास क्यों? जिस अग्नि में आप ही झुलस रहा हो उस पर अंगारे डालना क्या मानवता होगी? उसे तो बहिन शीतल स्निग्ध लेप की आवश्यकता है।

महिला– यदि ऐसा होता तो कुलश्रेष्ठ मेरी यह दुर्दशा न करते, कदाचित् श्रीसंपन्नों को सब क्षम्य है।

हेलन– नहीं, अपराध किसी के भी क्षम्य नहीं होते। प्रकृति का विधान सबके लिये समान है, वह न्यायप्रिय है, धन का उत्कोच[1] नहीं लेती। धन कभी मानवता का माप नहीं बन सकता। धन का भंडार शोषण का प्रतीक है। धन–संचय कुकार्यों के बिना कभी नहीं हो पाया है।

महिला– तब मेरी यह दुर्दशा कैसे हो गई? और करने वाले आज भी सानंद जीवन यापन कर रहे हैं। उनका मस्तक अभी भी ऊँचा है। मुझे सब

1. रिश्वत्

दुत्कारते हैं। तभी तो कहती हूँ ये सब सिद्धांत मिथ्या हैं, पाखंड हैं।

हेलन– देर है, अंधेर नहीं। समयानुसार प्रत्येक क्रिया फलवती हुई है। उच्चकुल के या वैभव के दंभ में वे भले ही कुकर्म कर लें पर कोई शूल बोकर फूल नहीं उगा पाया है।

महिला– किन्तु मैं कहीं की न रही। मेरा उद्धार कैसे हो?

हेलन– किस–प्रकार का उद्धार चाहती हो? क्या जीविका हेतु द्रव्य अपेक्षित है?

महिला– (निराश हो) तुम भी नहीं समझीं, कैसे समझ सकोगी। कटुफल तो मैंने चखे हैं। मुझे उनका खूब अनुभव है।

हेलन– मुझे तुमसे पूरी–पूरी सहानुभूति है भगिनी! तुम्हारे मन पर वृहत्तर भार है, जिसे तुम कथन करने में सर्वथा असमर्थ हो। उस भार को यहाँ उतार दो, निर्मम हो पटक दो तब तुम शांति की साँस ले सकोगी।

महिला– तो सुनो साम्राज्ञी! जिसने मुझ विवश दासी की लाज लूटी है वह आज भी विपुल द्रव्य से उस अमूल्य लाज का मोल चुका देना चाहता है पर इससे क्या क्षति पूर्ति हो सकेगी? भला उन कंकड़ों का क्या करूँ? मेरा यह अभिशप्त जीवन! आह! घोर यंत्रणा है देवी! मृत्यु से भयंकर।

हेलन– यदि शांति की ही लालसा है तो जिनप्रभु के बताये पथ का अनुसरण करो, अवश्य ही तुष्टि मिलेगी। इस ऊँच–नीच की प्रवृत्ति वाले समुदाय से हट जाओ।

महिला– मुझ कलंकिनी का कहीं भी स्थान सुरक्षित नहीं है साम्राज्ञी! मैं मर भी नहीं सकती। यह बालक जो विशाल बाधा बन खड़ा है।

हेलन– आत्महत्या जैसा घृणित अपराध दूसरा नहीं है, धैर्य और सहिष्णुता से काम लो, बालक की चिंता छोड़ो, वयस्क होने तक राज्य

इसकी अभिभावक की भाँति रक्षा करेगा। समाज में तुम्हारे स्वाभिमान का हनन होता है तो स्वतन्त्र बनो, समाज से ऊपर उठो। प्रभु का द्वार सबके लिये उन्मुक्त है।

महिला- (प्रसन्नता से) सच! मेरे लिये भी?

हेलन- हाँ, हाँ, सबके लिये।

महिला- मार्गदर्शन के लिये शतशः धन्यवाद। मेरी उद्धारकर्त्री! तुम्हें शत्-शत् बार नमन। (बैठ जाना)

(एक अत्यन्त दरिद्र व्यक्ति आता है, उसके वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हैं। हाथ में एक छोटा सा पात्र)

चन्द्रगुप्त- (स्नेहासिक्त स्वर में) तुम्हें क्या दें बंधु!

याचक- बस मेरा यह पात्र भर दें सम्राट।

जयदेव- याचक। आज तुम ऐसे दाता के सम्मुख पात्र बढ़ा रहे हो जो तुम्हारी सभी आकांक्षायें तृप्त कर सकता है। किमिच्छक दान दिया जा रहा है, अवसर न चूको। जीवन भर का दारिद्र्य उसी प्रकार भाग जायेगा जिस प्रकार सूर्य किरणों के आते ही अमावस्या की काली रात्रि का तिमिर चुपचाप पलायन कर जाता है।

याचक- ओह! यह जानता हूँ महानुभाव! ऐसा वृहद् दान सुनकर ही मैं यहाँ आया हूँ। इतनी ही विनय है कि मेरा रिक्त पात्र भर दें।

(चन्द्रगुप्त उसमें अंजुलि भर-भर अन्न, सुवर्ण आदि डालते हैं पर पात्र रीता का रीता ही रहा, भरता नहीं है, वे आश्चर्य से भर उठते हैं, अन्य जन भी अवाक् से देखते रह जाते हैं)

चन्द्रगुप्त- तुम कौन हो बंधु!

याचक- सम्राट! मैं भी आप सब जैसा ही मानव हूँ। हाँ, इतना

अवश्य है कि आप श्रीसम्पन्न हैं और मैं नितांत श्रीहीन।

चन्द्रगुप्त– उफ्! तुम बहुत आगे बढ़ गये बंधु! हमारे पूछने का आशय केवल यही है कि यह कैसा रहस्यात्मक पात्र है जो विभिन्न प्रकार के धन–धान्य से भी नहीं भर पा रहा है।

याचक– यह अदृष्ट वस्तु का मूर्त्त रूप है सम्राट! यह पात्र तो सभी के पास है, इसमें अलौकिकता कुछ भी नहीं है।

चन्द्रगुप्त– अभी तुम्हारा कथन स्पष्ट नहीं हो पाया बन्धु!

याचक– बहुत छोटी सी बात है सम्राट! बुद्धि का सर्वाधिक उपयोग करने वाला संसार का सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानव है। यह पात्र उसी मानव के हृदय का बना है। हृदय की अनंत जिज्ञासायें हैं, आज मैं बड़ी आशा लेकर दान लेने आया था ताकि मेरी अनंत तृष्णा को तृप्ति मिल सके पर मेरा यह लघु पात्र भी न भर सका, रीता आया, रीता ही जाना होगा।

चन्द्रगुप्त– सच कह रहे हो बन्धु! **लालसा की अगम खाई अनंत सामग्री से भी नहीं भर सकती। इसे तो संतोष ही पाट सकता है।** सुख, शांति, तृप्ति ये सभी अदेय हैं। ये सब प्रत्येक आत्मा के स्वभाव में ही निहित हैं। नश्वर द्रव्य में ये कहाँ?

याचक– और मैं भी अब निराश नहीं, प्रसन्नता से भर गया हूँ सम्राट। यह दुराशा मिथ्या है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मुझे मिल गया। आपके ही समक्ष मैं इस पात्र को सदा सर्वदा के लिये तिलांजलि दे नमन करता हूँ। (पात्र फेंक देता है) एवं आपके ही साथ मैं भी जैन साधु की दीक्षा ले आत्मा की साधना करूँगा।

चन्द्रगुप्त– धन्य हो बन्धु! तुम्हारे प्रमाण ने अनेक तृषित व्यक्तियों को झकझोर कर जगा दिया होगा।

याचक– जिसे शाश्वत सुख की चाह है उसे अपनी दिशा मोड़नी ही

होगी। मैं भी आपका पदानुसरण करूँगा। आशा है आपको कोई आपत्ति न होगी।

चन्द्रगुप्त– आपत्ति क्यों? हमें प्रसन्नता होगी। समस्त जन समुदाय को आमंत्रित करते हैं। जिन्हें सांसारिक कष्टों से छुटकारा पाना हो वे मोह–ममता त्याग वीतराग की शरण में चलें। जिनमें उन्हें अपना ही प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होगा। निकट ही वीतरागता के अभ्यस्त वीर तपस्वी महाज्ञानी श्री आचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली हैं उन्हीं से दीक्षित हो उनकी छत्रछाया में रहकर आत्मानुशासन के पाठ का सतत् अभ्यास करेंगे।

(चन्द्रगुप्त– हेलन अपने–अपने आभूषण भी उतार कर दान में दे देते हैं। राजसी वैभव छोड़ अकिंचन की भाँति नंगे पैर बढ़ जाते हैं। जनरव शांत है। प्रजा स्तब्ध भाव से अपने प्रिय सम्राट, साम्राज्ञी को देखती रह जाती है। सबकी आँखों में आँसू तैर रहे हैं। आगे चन्द्रगुप्त हैं, उनके पीछे उनकी अनुगामिनी हेलन है। जयदेव भी अंगरखा उतार चन्द्रगुप्त के समान ही अधोवस्त्र और उत्तरीय ओढ़ पीछे–पीछे चल पड़ते हैं, नगर सीमा तक सभी पहुँचाने आते हैं। यहाँ चन्द्रगुप्त पीछे मुड़कर सबको संबोधित करते हैं)

चन्द्रगुप्त– (दोनों हाथ जोड़कर) अच्छा, अब अन्तिम विदा! नगर सीमा आ गई, आप सब लौट जायें। हम चलते हैं।

(एक बार पुनः बिन्दुसार माता–पिता के चरण स्पर्श करते हैं। हेलन सुप्रभा गले मिलती हैं। मन सबके भरे हैं। बोल नहीं निकल रहे। प्रजा व्यथित मन रुक जाती है। पर जयदेव आगे बढ़कर चन्द्रगुप्त के साथ हो लेते हैं)

चन्द्रगुप्त– (साश्चर्य) तुम कहाँ जयदेव?

जयदेव– (मुस्कराकर) जहाँ तुम सखे!

चन्द्रगुप्त– तब चलो प्रिय मित्र!

(पुनः तीनों हाथ जोड़कर प्रजाजन से विदा लेते हैं, सब हाथ जोड़

अभिवादन का प्रत्युत्तर देते हैं। दोनों महिलायें, याचकगण व अन्य व्यक्ति भी साथ हो लेते हैं। अकिंचन साधक अपनी यात्रा पर चल पड़ते हैं)

(सम्राट चन्द्रगुप्त दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपने गुरु आचार्य भद्रबाहु स्वामी की शरण में)

(अपने गुरु की चरण पादुका की साक्षी में सल्लेखना ग्रहण कर चन्द्रगुप्त दुर्द्धर तप करते हुए)

(सम्राट चन्द्रगुप्त एवं जयदेव आचार्य भद्रबाहु से दिगम्बरी दीक्षा लेकर यथाजात परम दिगम्बर बनकर आत्मसाधना करते हैं। हेलन आर्यिका जी से दीक्षा लेकर घोर तपस्या करती है। अन्त में चन्द्रगुप्त चन्द्रगिरि पर्वत पर सन्यास लेकर स्वर्गस्थ होते हैं)

पटाक्षेप